एक मानव-जाति, एक मानवता-धर्म तथा आत्माराम का बोध बाह्याचार में ढक गये हैं

शब्द-84

काजी तुम कौन कितेब बखानी 1

झंखत बकत रहहु निशि बासर, मति एकौ नहिं जानी 2
शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो, मैं न बदोंगा भाई 3
जो खुदाय तेरी सुन्नति करतु है, आपुहि कटि क्यों न आई 4
सुन्नति कराय तुरुक जो होना, औरत को क्या कहिये 5
अर्ध शरीरी नारि बखानी, ताते हिन्दू रहिये 6
पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना, मेहरी क्या पहिराया 7
वो जन्म की शूद्रिन परसे, तुम पाँड़े क्यों खाया 8
हिन्दू तुरुक कहाँ ते आया, किन्ह यह राह चलाया 9
दिल में खोजि देखु खोजादे, बिहिस्त कहाँ ते आया 10
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, जोर करतु हैं भाई 11
कबिरन ओट राम की पकरी, अन्त चले पछिताई 12

शब्दार्थ—कितेब=किताब, धर्मग्रन्थ। बखानी=व्याख्या, वर्णन, बड़ाई। झंखत=झींखना, दुखी होना, दिमाग पचाना। बकत=बकना, बकवास करना। मति=समझ, अभिप्राय, मतलब। शक्ति अनुमाने=ईश्वरीय शक्ति का अनुमान करके। सुन्नति=सुन्नत, खतना। बदोंगा=मानना। बिहिस्त=बिहिश्त, स्वर्ग। जोर=बल-प्रयोग, जबरदस्ती। कबिरन=भटके हुए लोग। ओट=सहारा। राम=ईश्वर।

भावार्थ—काजी साहब! तुम किस किताब की व्याख्या एवं बड़ाई करते रहते हो? 1 तुम किताबों में रात-दिन दिमाग पचाते तथा बकवास करते हो; परन्तु एक भी असली मतलब नहीं समझते हो 2 तुम ईश्वरीय शक्ति का अनुमान कर तथा उसकी दुहाई देकर बच्चों का खतना करते हो और उनकी पेशाब इन्द्रिय के आगे की खाल बेदर्दी से काट देते हो। परन्तु हे भाई! मैं इस काम को अच्छा नहीं मान सकता 3 यदि सचमुच खुदा तुम्हारी सुन्नत करना चाहता है तो उतनी खाल गर्भवास से ही कटकर बच्चे को पैदा होना चाहिए था 4 यदि खतना कराकर ही मुसलमान हुआ जाता है तो अपनी बीवी को क्या कहोगे? 5 उसका खतना तो हो नहीं सकता। पत्नी को पुरुष का आधा शरीर माना जाता है। इस तथ्य को देखते हुए तुम आधा हिन्दू ही बने रह गये। अथवा पत्नी जीवनपर्यन्त हिन्दू रहती ही है तब खतना न कराकर तुम भी हिन्दू

ही बने रह जाते 6 इसी प्रकार हे ब्राह्मण कहलाने वालो! यदि जनेऊ पहनकर ही ब्राह्मण हुआ जाता है तो तुमने अपनी श्रीमती को क्या पहनाया है? उसे तो तुमने वेद, गायत्री तथा जनेऊ—सबसे वंचित रखा है 7 जनेऊ-संस्कार से रहित होने से वह तो जन्म से ही शूद्रा बनी हुई है, फिर हे पंडित, उसका परोसा भोजन तुम क्यों खाते हो? 8 सभी मनुष्य तो एक समान हैं, ये हिन्दू-मुसलमान आदि रूपी विभाजक रेखाएं कहां से पैदा हो गयीं? ये गलत रास्ते किसने चला दिये? 9 हे खोजी इनसान! अपने दिल में खोजकर देख, ईश्वर तो तेरे दिल में बसा है, सातवें आसमान में कहां से स्वर्ग आ गया, जहां तू ईश्वर की कल्पना करता है? 10 कबीर साहेब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, हे भाई! ये हिन्दू और मुसलमान नामधारियों के अगुआ अपनी-अपनी मजहबी भावनाओं को लोगों पर जबरदस्ती लादते हैं। ये जड़मति लोग अपनी सांप्रदायिक बातें सिद्ध करने के लिए ईश्वर का सहारा लेते हैं, परन्तु इसके फल में इन्हें पछतावा ही हाथ लगेगा 11-12

व्याख्या—इसलाम मजहब के कानून-कायदे का निर्णय देने वाला काजी कहलाता है। कबीर साहेब काजी से प्रश्न करते हैं कि तुम अपनी किताबों की बड़ी बड़ाई करते हो। तुम कहते हो कि हमारी किताब और हमारे सारे कानून खुदाई हैं। जब तक संसार का प्रलय नहीं हो जाता तब तक इसलाम के ही कानून संसार में चलेंगे। तुम्हारी बातें बड़ी लम्बी-लम्बी रहती हैं, परन्तु तुम इतनी-सी बात नहीं समझ सकते हो कि यदि ईश्वर को यह पसंद होता कि पुरुष की पेशाब-इन्द्रिय के आगे की खाल नहीं रहनी चाहिए तो वह उसे वैसे ही बनाता। सारा शरीर खुदा बना सकता है तो क्या उतनी-सी खाल वह काट नहीं सकता है? उसकी अक्ल में यह बात नहीं आयी, जो तुम वह काम पैदा होने के बाद करके उसकी अक्ल की गलती का सुधार कर रहे हो!

"शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो, मैं न बदोंगा भाई।" साहेब कहते हैं कि तुम किसी ईश्वरीय शक्ति का अनुमान कर उसी की आड़ में अपने सारे कानून चलाते हो। तुम कहते हो यह सुन्नत करना भी खुदाई हुक्म है, परन्तु कबीर साहेब कहते हैं कि हे भाई! मैं इसे नहीं मान सकता। यदि ऐसा खुदा करना चाहता तो उसे ऐसा करने में कोई मुश्किल नहीं थी। जो इतने बड़े शरीर को बना सकता है, वह उसी के साथ सुन्नत भी कर सकता है। सुन्नत करने से ही आदमी मुसलमान होता है यह सच भी नहीं है। ऐसी स्थिति में मुसलमान कहलाने वालों के घरों की नारियां मुसलमान नहीं कहला सकतीं। किसी भी गृहस्थ-समाज का स्त्री आधा अंग है। इस दृष्टि से मुसलमानों में सदा ही आधे मुसलमान हैं और आधे हिन्दू हैं। पुरुष मुसलमान तथा उनकी नारियां हिन्दू हैं।

कबीर जब मुसलमानों को लताड़ रहे थे, पंडित बहुत प्रसन्न थे कि कबीर ने क्या खूब कहा ! कबीर ने पंडितों की तरफ निगाह फेरी और उन्हें भी आड़े हाथों लिया। उन्होंने कहा, हे पंडितो ! तुम्हारे ब्राह्मणत्व का चिह्न जनेऊ है। परन्तु यदि जनेऊ पहन करके ही कोई ब्राह्मण होता है तो तुम्हारी घरवाली को क्या कहा जाये ! तुमने अपने घर की नारियों को तो जनेऊ पहनाया नहीं, न उनका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, न उन्हें गायत्री मंत्र सुनाया गया और न उन्हें वेद पढ़ने का ही अधिकार दिया गया। उन्हें द्विजत्व संस्कार से एकदम अलग रखा गया। इसलिए तुम्हारे घर की नारियां जन्म से आज तक शूद्रा ही बनी हैं और मरते दम तक वे बेचारी शूद्रा ही रहेंगी। फिर उनका पकाया और परोसा भोजन तुम क्यों खाते हो? तथाकथित ब्राह्मण लोग शूद्रों को अछूत मानते हैं। शूद्र वही है जो यज्ञोपवीत संस्कार से रहित है। इस प्रकार ब्राह्मण के घर की नारियां भी संस्कारहीन शूद्रा ही हैं। आश्चर्य है कि ब्राह्मण नामधारी जीवनभर शूद्रा का ही परोसा भोजन करता है और दूसरे शूद्रों को अछूत कहता है। यह तो ऐसा ही हुआ "अपने मुख की वार्ता, सुनै न अपने कान।" ब्राह्मण कहे जाने वाला अपना ही सिद्धांत नहीं समझ पा रहा है। जब वह जीवनभर शूद्रा का परोसा खाता ही है तो दूसरे शूद्र कहे जाने वाले बेचारे क्यों अछूत बनाकर रखे जाते हैं !

"हिन्दू तुरुक कहाँ ते आया, किन्ह यह राह चलाया।" कबीर साहेब कहते हैं कि मानव की तो एक जाति है। इसमें द्वैत कहां से आ गया? कबीर साहेब के समय में हिन्दू-तुरुक का जोर था। इसलिए उन्होंने ये दोनों नाम लेकर उन्हें ललकारा। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वे अन्य मजहब वालों को नहीं कह रहे हैं। कबीर किसी को छोड़ने वाले नहीं हैं। जो भी एक मानवता में विभाजक रेखा खींचता हो, उनमें से किसी को भी कबीर क्षमा करने वाले नहीं हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि मानव एक जाति है तथा मानवता एक धर्म है। इनमें जितनी भेदपरक दीवारें खड़ी की जाती हैं, सब मानव की बनायी हैं। वेद से लेकर बाइबिल, कुरानादि सब किताबें मानव की बनायी हैं। सारे मजहब एवं संप्रदाय मानव के गढ़े हुए हैं और सारे सांप्रदायिक चिह्न मानव के बनाये हुए हैं। साहेब कहते हैं "किन्ह यह राह चलाया" इसलाम का रास्ता, ईसाइयत का रास्ता, हिन्दुत्व का रास्ता या अन्य हजारों रास्ते केवल मनुष्य के चलाये हैं। हां, अपनी गलत और सही सारी बातें समाज से मनवाने के लिए उन पर किसी आकाशीय ईश्वर की मोहर लगा ली है। मजहब वालों ने ईश्वर की अवधारणा का इतना दुरुपयोग किया है कि उसकी आड़ लेकर अपने मत की सारी बकवासों को मनुष्यों पर बलात थोपने का प्रयास किया है।

"दिल में खोजि देखु खोजादे, बिहिस्त कहाँ ते आया।" मत-मजहब वालों ने सातवें लोक या सातवें आकाश पर स्वर्ग की कल्पना कर रखी है, वहां पर उनमें तामझाम के साथ ईश्वर को बैठा रखा है। सभी ने यह ढिंढोरा पीट रखा है कि हमारे मजहब से चलकर उस स्वर्ग या ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है। साहेब कहते हैं कि ये बिहिश्त, स्वर्ग तथा ईश्वर कहां ये आ गये? ये ईश्वर और स्वर्ग तुम्हारी कल्पनाएं हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि अपने दिल में खोजो। तुम्हारे दिल के अन्दर की चेतना, दिल के अन्दर का नूर ईश्वर है, खुदा है। वह सब समय सबको प्राप्त है। वह किसी मत-मजहब की डिबिया में नहीं बंद है, किन्तु तुम्हारे दिल में बंद है। तुम किसी ईश्वरीय नामधारी मत-मजहब के मुहताज नहीं हो। किसी तथाकथित ईश्वरीय मोहर लगे हुए कार्ड से वह नहीं मिलेगा। वह तो तुम्हारे दिल की चीज है। वह तुम्हारी आत्मा है, तुम्हारा अपना स्वरूप है, उसके लिए सच्चे सद्गुरु के निर्देश की आवश्यकता है। तुम्हें बाहर से लौटकर दिल में झांकने की जरूरत है। यही बात स्वर्ग की है। स्वर्ग का टिकट भी किसी मजहबी मोहर से नहीं मिलता। स्वर्ग भी आकाश में नहीं है। वह भी तुम्हारे दिल के भीतर है। जिसके हृदय में पवित्रता और प्रेम की गंगा बहती है उसके हृदय में स्वर्ग है। इसके अलावा कहीं स्वर्ग नहीं है। यदि हमारे हृदय में राग-द्वेष की गन्दगी है, तो मानो यही नरक है। हमें चाहिए कि हम मन को साफ करें और मानव-मात्र के प्रति प्रेम तथा प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव रखें। जिसका दिल शुद्ध है, जिसमें प्राणिमात्र के प्रति करुणा और प्रेम है, वह मानो नित्य स्वर्ग में विद्यमान है।

"कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, जोर करतु हैं भाई। कबिरन ओट राम की पकरी, अन्त चले पछिताई।" साहेब कहते हैं कि हे संतो! ये मजहबी तथा संप्रदायी लोग अपने-अपने गलत-सही विचारों को ईश्वर-निर्देश एवं प्रभु-वचन का जामा पहनाकर लोगों पर जोर-जबरदस्ती से लादना चाहते हैं। हमारी किताब प्रभु-वचन एवं खुदाई है, हमारा मजहब ईश्वरीय है तथा हमारे महापुरुष ईश्वर के पुत्र, पैगम्बर या अवतार हैं; ये सारी बातें सत्यज्ञान एवं सत्यधर्म का गला घोंटने के लिए हैं। ये सारी बातें जोर देकर लोगों से मनवायी जाती हैं और उनकी बुद्धि में ताला लगा दिया जाता है जिससे वे स्वतंत्र सोच न सकें और उनके मजहब के पशु बने रहें। मजहब, महापुरुष तथा किताबों पर ईश्वरीय मोहर लगाकर उनमें अतिश्रद्धा करायी जाती है और यह अतिश्रद्धा हिंसा का रूप धारण कर आगे खड़ी होती है। अपनी पोथी, मजहब तथा महापुरुष पर ईश्वर का भूत उतारने वालों ने ही ईश्वर और धर्म के नाम पर इनसान का खून बहाया है। अतएव कबीर साहेब यहां अपने दिल के दर्द के

साथ कहते हैं कि "जोर करतु हैं भाई"। हे भाई ! ये ईश्वर के खतरनाक भक्त अपने तथाकथित ईश्वरीय मजहब के प्रचार के लिए जोर करते हैं। वे कहते हैं कि यदि हमारी किताब को प्रमाण न मानोगे; हमारे अवतार, पैगंबर एवं ईश्वर-पुत्र को अपना उद्धारक न मानोगे और हमारे सम्प्रदाय एवं मजहब को न कबूल करोगे तो तुम नास्तिक हो, अपवित्र हो या काफिर हो, तुम्हारा नरक होगा, तुम दोजख में जाओगे।

इस प्रकार ये जड़मति लोग राम की ओट पकड़कर, ईश्वर की आड़ लेकर जाति, धर्म और अध्यात्म सब में गड्डमड्ड करते हैं। ये मनुष्य की बुद्धि स्वतंत्र नहीं रहने देना चाहते। ये मानव की एक जाति के टुकड़े-टुकड़े करते हैं। ये धर्म को मानवीय गुण तक रहने न देकर उसे बाह्याचार में उलझा देते हैं। ये ईश्वर को मानव की आत्मा से काटकर अलग कर देते हैं। इसलिए इन्हें मानव की हत्या करने में दर्द नहीं लगता। परन्तु ऐसा काम करके मानव को अंत में पछताना पड़ता है। "कबिरन ओट राम की पकरी, अन्त चले पछिताई।"

यहां 'कबिरन' शब्द का प्रयोग उनके लिए है जो मतवाद में उलझे हैं। ग्यारहवीं पंक्ति में सद्गुरु ने अपने नाम की छाप लगा दी है—"कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो" कहकर। अतएव अब उसके नीचे बारहवीं पंक्ति में 'कबिरन' नाम देकर पुनः अपने नाम की छाप लगाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यहां 'कबिरन' भूले-भटके लोगों के अर्थ में ही है और प्रायः बीजक भर में ऐसी बात है। अभी आप आगे 86वें शब्द में देखेंगे कि पांच बार 'कबिरा' तथा 'कबीरा' सर्वनाम के अर्थ में कहकर तब सद्गुरु ने छठीं बार में अपने नाम की छाप लगायी है।

धर्म और ईश्वर के ठेकेदारों की सांप्रदायिक भावनाओं, संकीर्णताओं तथा अज्ञान से समाज जिस आग में जल रहा था, उसे देखकर कबीर साहेब का दिल पीड़ित था, इसलिए वे बारम्बार अपनी धारदार वाणियों से उस पर प्रहार करते थे। आज भी कबीर-जैसे सोचने वालों के दिल पीड़ित हैं। वे चाहते हैं कि मानव-मानव के बीच की सारी दीवारें भहराकर ध्वस्त हो जायें, आदमी चित्तपवित्रता का स्वर्गसुख भोगे और ईश्वर के लिए बाहर न भटककर अपने दिल-दरगाह के नूर में लीन हो।

देह-गेह तुम्हारे नहीं हैं

शब्द-85

भूला लोग कहैं घर मेरा 1
जा घर में तू भूला डोले, सो घर नाहीं तेरा 2

हाथी घोड़ा बैल बाहना, संग्रह कियो घनेरा 3
बस्ती मासे दियो खदेरा, जंगल कियो बसेरा 4
गाँठी बाँधि खर्च नहिं पठयो, बहुरि न कीयो फेरा 5
बीबी बाहर हरम महल में, बीच मियाँ का डेरा 6
नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझे, जन्म जन्म उरझेरा 7
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, यह पद का करहु निबेरा 8

शब्दार्थ—बाहना= वाहन, सवारी। घनेरा= बहुत। बीबी= विवाहिता पत्नी, सद्वृत्ति। बाहर= पांच विषय, जगत। हरम= अंतःपुर, स्त्रियों के रहने का घर, रखेल बनायी हुई बांदी, यहां अर्थ रखेल या वेश्या ही है, कुवृत्ति। मियाँ= जीव। डेरा= पड़ाव, आसन, स्थिति। नौ मन= पांच विषय तथा चतुष्टय अंतःकरण, अथवा पांच विषय, तीन गुण और मन। पद= प्रस्तुत शब्द, निजस्वरूप चेतन।

भावार्थ—वे लोग भूले हैं जो कहते हैं कि यह घर मेरा है 1 जिस घर के अहंकार में तुम भूले फिर रहे हो वह तुम्हारा नहीं है 2 तुमने हाथी, घोड़ा, बैल तथा अनेक सवारियां और माया की बहुत चीजें इकट्ठी कर रखी हैं 3 परन्तु ध्यान रखो, एक दिन तुम अपने माने हुए मकान एवं बस्ती में से खदेड़ दिये जाओगे और तुम्हारा निवास जंगल में होगा 4 जाते समय तुम्हारे घर वाले तुम्हारी गांठ में बांधकर तुम्हारे लिए कुछ खर्च नहीं भेज सकेंगे और न तुम ही कभी लौटकर कुछ ले जा सकोगे 5 तुमने जीवन भर तो वैसे ही अपने आप को छलने का काम किया है जैसे कोई अपनी विवाहिता पत्नी को घर में से निकालकर बाहर कर दे और बाहर से लाकर रखेल या वेश्या को रख ले और उसी में अपना आसन जमाये। तूने अपने हृदय से सद्वृत्ति को निकाल बाहर किया और अपने हृदय में कुवृत्ति टिकाये रखा तथा उसी में आनन्द माना 6 इसका फल यह हुआ कि नौ मन सूत उलझ गया। अर्थात पंच विषयों में मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंवृत्ति उलझ गये और ये जन्म-जन्मांतरों से उलझते ही रहे। इसे सुलझाने पर ध्यान कभी नहीं दिया गया 7 कबीर साहेब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, अबकी बार इनसे अपनी आत्मा का छुटकारा कर लो 8

व्याख्या—हम एक भूखंड खरीदते हैं। उसका अपने नाम से बैनामा कराते हैं। हम उस पर मिट्टी, ईंट, सीमेंट, लोहे, लकड़ी आदि से मकान खड़ा करते हैं और कहते हैं कि यह मकान मेरा है। व्यवहारतः यह सब ठीक है। इस शरीर के निर्वाह के लिए तथा शरीर के साथियों के लिए यह सब करना पड़ता है, करना चाहिए भी। परन्तु जरा इस पर भी ध्यान दो कि अंततः यह सब तुम्हारा नहीं है। जिस भूखंड पर मकान का ढांचा खड़ा है न वह तुम्हारा है और न

मकान का ढांचा तुम्हारा है। जिस जमीन का तुमने अपने माने हुए नाम पर बैनामा करवाया है, उस पर आज तक करोड़ों लोगों का कब्जा हो चुका है और उनसे छूट चुका है। जमीन का बैनामा कराने वाले कुछ दिनों में उसी जमीन में दफना दिये जाते हैं। जमीन का बैनामा कराते तथा जमीन पर कब्जा करते समय मानो जमीन हंसती है कि बेवकूफो, तुम मेरा बैनामा क्या कराओगे, मैं तुम्हारा बैनामा करा लूंगी। जमीन के करोड़ों मालिक बनकर आये और इसी जमीन में समा गये।

ध्यान रहे, जिस मकान को तुम अपना मानते हो उसमें हजारों चींटियां, कीड़े, मच्छर, छिपकिलियां तथा अन्य जानवर रहते हैं, जो उस पर अपना जन्मजात अधिकार मानते हैं। तुमने तो केवल मकान बनवाया है, परन्तु वे तो उस मकान में पैदा हुए हैं। जो तुम्हारे घर में पैदा होता है वह तुम्हारे घर का हकदार हो जाता है, फिर वे कीड़े-मकोड़े जो उसी घर में पैदा हुए हैं उस घर के हकदार क्यों नहीं ! अतएव जिसे तुम अपना घर मानते हो उसे हजारों-लाखों जीव-जन्तु अपना घर मानते हैं और सब थोड़े दिनों में उसी घर या जमीन में लीन हो जाते हैं।

ध्यान रखो, घर केवल कुछ दिन रहने की धर्मशाला है। घर बनाकर अहंकार नहीं करना, उसे अपना नहीं मानना। तुम्हें पता है कि दादा-बाबा अपने घर छोड़-छोड़कर चले गये हैं। तुम कब तक इस घर में रहने वाले हो ! "इस घर की यह रीति है, एक आवे एक जाय।" अतएव जो एकदम बदहवास है, वही कहता है कि यह घर मेरा है। जो सत्य को समझता है वह कभी नहीं मान सकता कि यह घर मेरा है। व्यवहार के लिए पूछने पर उसे भले कहना पड़े कि यह मेरा घर है, परन्तु वह अपने हृदय से उसे कभी अपना नहीं मान सकता। जो जाग रहा है वह इस संसार के एक तृण को भी अपना नहीं मान सकता। वो तो जो भूले हैं, नशा खाये हैं, वे मानते हैं कि यह घर मेरा है, यह परिवार मेरा है।

आदमी अपने जीवन में हाथी, घोड़े, बैल, सवारी बहुत इकट्ठा करता है। कबीर साहेब आज होते तो उन्हें सायकल, स्कूटर, मोपेड, कार, जीप, ट्रक आदि के भी नाम लेने पड़ते; परंतु वे सवारी कहकर मानो इन सबके लिए गुंजाइश कर दिये हैं। हम अपनी क्षमता के अनुसार माया की बहुत वस्तुएं इकट्ठी कर लेते हैं। उनसे केवल देहगुजर लें इतना ही नहीं रहता, किन्तु हम उनमें राग-भोग की दृष्टि रखते हैं, उनके अहंकार में इतराते घूमते हैं। हम अपने घर में कुछ लोहा-लक्कड़ आदि कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा कर लेते हैं और उसके नशे में चूर रहते हैं। हम चार लोगों के साथ बैठते हैं तब उसी के गीत गाते हैं, हमारे यह है, हमारे वह है।

कबीर साहेब कहते हैं कि भोले, तू इस मकान में से चार दिनों में खदेड़ दिया जायेगा और तेरा निवास तो जंगल में होगा। तू समझ कि यह मकान तेरा क्षणिक निवास है, स्थायी निवास तो जंगल है। एक पेड़ के नीचे एक महात्मा बैठे थे। उधर से एक बना-ठना बाबू घोड़े पर बैठा आ गया। उसने साधु से पूछा—"बस्ती किधर है?' महात्मा ने उसे श्मशान की तरफ इशारा कर दिया। वह श्मशान में पहुंचकर बहुत हैरान हुआ। लौटकर पुनः साधु के पास पहुंचा और उन्हें भला-बुरा कहा। महात्मा ने कहा—वही असली बस्ती है। जिसे लोग बस्ती कहते हैं, मैं उसे श्मशान कहता हूं और जिसे लोग श्मशान कहते हैं, मैं उसे बस्ती कहता हूं। जहां लोग मरते हों उसे श्मशान कहना चाहिए तथा जहां लोग एक बार बसकर कभी न उजड़े उसे बस्ती कहना चाहिए। जिसे तुम लोग बस्ती कहते हो वहीं तो लोग मरते हैं। जिसे तुम लोग श्मशान कहते हो क्या वहां आज तक कोई मरा है? वहां तो लोग आकर बसते हैं, और जो वहां एक बार बस गया, फिर वहां से कभी नहीं उजड़ता। इसलिए लोगों की दृष्टि में जो बस्ती है, वह मेरी दृष्टि में श्मशान है और जो लोगों की दृष्टि में श्मशान है वह मेरी दृष्टि में बस्ती है। वह घोड़ा-सवार बाबू संत की बातों से दंग रह गया। उसने पहले उस साधु को बेवकूफ समझ लिया था, परन्तु अब वह उसके सामने स्वयं बेवकूफ बन गया। मोहलिप्त संसार कहता है कि इन महात्माओं की खोपड़ी उलटी होती है। 'राजा योगी अगिन जल इनकी उलटी रीति' यह उदाहरण देता है। परन्तु साधु की खोपड़ी सीधी होती है, क्योंकि वे मोह से परे हैं। उलटी खोपड़ी तो मोहग्रस्त लोगों की होती है। वे जो अपना नहीं है उसे अपना माने बैठे रहते हैं।

ध्यान रहे, चाहे तुम जितना माया का संग्रह कर लो, सब कुछ यहीं छोड़कर अकेला जाना पड़ेगा। एक दिन तुम इस घर से निकाले जाओगे। एक रियासतदार की मौत जब करीब आयी, वे अपने महल से निकालकर अयोध्या ले जाये जाने लगे कि मौत वहीं हो तो अच्छा है। जब वे अपने माने हुए विशाल तथा भव्य भवन से निकालकर कार में लिटाये गये, तब एक बार भवन की तरफ देखकर कहे "अब 'चन्द्रभवन' सदा के लिए छूट रहा है।" उन्होंने उस भवन को स्वयं बनवाया था और उसका नाम रखा था 'चन्द्रभवन'। उनकी ही नहीं, सबकी यही दशा है। चाहे झोपड़ी हो या भवन, सबका निवास उसके लिए चन्द्रभवन है और वह सबका छूटता है।

जब आदमी मर जाता है, तब उसे लोग श्मशान में ले जाकर जला या गाड़ देते हैं या पानी में फेंक देते हैं। पारसी लोग लाश को सूनसान में छोड़ देते हैं, और उसे पशु-पक्षी खा लेते हैं। मरे हुए आदमी के लिए घर वाले गांठी

बांधकर कुछ भेज नहीं पाते। भेजने का कोई साधन नहीं है। उसके पास कोई बीमा, पार्सल या मनीआर्डर नहीं जा सकता। यह भी संभव नहीं कि गया हुआ आदमी पुनः लौटकर अपने माने हुए घर से कुछ ले जा सके। अतएव जो आदमी अपने जीवन में सत्कर्म नहीं कर लेता, वह धोखा खाता है। जीवन में सत्कर्म करने वाला मानो अपनी गांठ में बांधकर अपने साथ ले जाता है। जो सत्कर्म नहीं करता, वह अपना यह जीवन तथा अगला जीवन भी दुखों से भरता है।

मानो एक मियां जी हों। उन्होंने अपनी समझदार तथा श्रद्धालु विवाहिता पत्नी को घर से निकालकर बाहर कर दिया हो और वेश्या को लाकर अपने घर में टिका लिया हो और वे चाहें कि मुझे सुख मिले तो यह उनकी नासमझी है। भूला जीव ऐसा ही करता है। वह अपने हृदय से शील, क्षमा, विचार, संतोष, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सद्वृत्तियों को निकालकर बाहर कर देता है और राग-द्वेष, विषय-वासना, तृष्णा, अविवेक आदि लाकर बसा लेता है। इस जीव-मियां ने सद्गुणों का तिरस्कार कर दुर्गुणों में ही अपना डेरा जमा रखा है। जो व्यक्ति दुर्मति एवं दुर्गुणों में जीता है, उसे कहां चैन मिल सकता है! धन तो लोगों के पास कम-बेश होता है। पेट-परदा सबका चलता है। जीवन में सच्चा सुख वही पाता है जिसके मन में अच्छे विचार हैं और जीवन में सद्गुण तथा सदाचार हैं। इनके बिना करोड़पति नहीं, विश्वपति भी हो तो दुखों में पड़ा बिलबिलाता रहेगा। सुख का स्रोत बाहर नहीं है, किन्तु भीतर है। चित्त की स्वच्छता सुख का स्रोत है। इसके बिना सुख कहीं नहीं है।

थोड़ा-सा सूत उलझ जाये तो उसे सुलझाने में बड़ा परिश्रम लगता है, परन्तु यदि नौ मन सूत उलझ जाये तो क्या दशा होगी? ये शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध में मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार उलझ गये हैं। मन पांचों विषयों का निरंतर स्मरण करता है, चित्त उन्हीं का अनुसंधान करता है, बुद्धि उन्हीं में सुख निश्चय करती है तथा अहंकार उन्हीं में जमकर क्रिया करता है। जीव अपने चतुष्टय अंतःकरण से पांचों विषयों में निरन्तर डूबा रहता है, यही नौ मन सूत का उलझना है। इसको थोड़ा दूसरे ढंग से भी समझ सकते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध इन पांचों विषयों तथा रज, सत, तम इन तीनों गुणों में मन का उलझे रहना मानो नौ मन सूत का उलझ जाना है। दोनों तरीकों से अभिप्राय एक है मन का विषयों में उलझ जाना। कबीर साहेब अपनी सारी बातें प्रायः रूपकों एवं अलंकारों में कहते हैं। यहां भी उन्होंने नौ मन उलझे हुए सूत की प्रतीकात्मक भाषा में मन का विषयों और तीनों गुणों में उलझने की बात बतायी है। हमारा मन पांचों विषयों तथा तीनों गुणों में क्यों उलझा है? क्योंकि हमने

अपनी सद्वृत्ति को बाहर कर दिया है और दुर्वृत्ति को भीतर लाकर टिका लिया है। सद्गुरु कहते हैं कि तुम्हारा मन पांचों विषयों तथा तीनों गुणों में उलझ गया है और जन्म-जन्म से उलझता आ रहा है। तुम इसे आज भी नहीं सुलझाना चाहते हो तो यह कब सुलझेगा ! यह समझ लो कि मन का पूर्णतया सुलझाव ही जीवन की परम उपलब्धि एवं सर्वोच्च स्थिति है।

इसलिए सद्गुरु अंतिम पंक्ति में कहते हैं कि इस पद का निबेरा करो। यहां पद में 'श्लेष' है। पद का अर्थ यह शब्द है तथा पद का अर्थ आत्मस्वरूप है। हम इस शब्द में आये हुए विचारों को समझें और उन्हें समझकर अपनी आत्मा को सबसे छुड़ावें। निबेरा या निबेड़ा के अर्थ हैं—छुटकारा, त्राण, बचाव, एक में मिली वस्तुओं के पृथक होने या किये जाने का काम या भाव, सुलझाव, निबटारा, निर्णय, दूरीकरण, हटाव, पूर्ति, पूरा करना। हमारा मन संसार के विषयों में फंसा है। राग या द्वेष में पड़े रहना मन का फंसना है। इसी से सारे भय, चिन्ता, शोक-मोह एवं उपद्रव हैं।

हमें यह सोचना चाहिए कि हम अपने मन को संसार में उलझाकर क्या पाते हैं। हम जिनके प्रलोभन में पड़कर अपने मन को संसार में उलझाते हैं, वे सब एक दिन छूट जाते हैं, किन्तु हमारा मन उलझकर जीवनभर अशांत रहता है और जन्मांतर में भी दुखों का कारण बनता है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि "यह पद का करो निबेरा"। अपने चेतनस्वरूप को सबसे अलग समझकर मन को सारे विषयों तथा सांसारिक चीजों से हटा लो। देह, गेह, परिवार, प्राणी, पदार्थ, पद, प्रतिष्ठा सब नाशवान एवं छूटने वाले हैं। इनकी अहंता-ममता छोड़ो ये सब तुम्हारे नहीं हैं। तुम्हारा केवल तुम्हारी आत्मा है। आत्माराम बनो।

तुम्हारा प्राप्तव्य तुम्हारी हृदय-गुहा में ही विद्यमान है

शब्द-86

कबिरा तेरो घर कन्दला में, यह जग रहत भुलाना 1
गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल महल दिवाना 2
सकल ब्रह्म मों हंस कबीरा, कागन चोंच पसारा 3
मन्मथ कर्म धरे सब देही, नाद बिन्द बिस्तारा 4
सकल कबीरा बोले बानी, पानी में घर छाया 5
अनन्त लूट होत घट भीतर, घट का मर्म न पाया 6
कामिनी रूपी सकल कबीरा, मृगा चरिन्दा होई 7

. निबेड़ा—बृहत् हिन्दी कोश।

बड़ बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके, पकरि सके नहिं कोई 8
ब्रह्मा बरुण कुबेर पुरन्दर, पीपा औ प्रहलादा 9
हरणाकुश नख वोद्र बिदारा, तिन्ह को काल न राखा 10
गोरख ऐसो दत्त दिगम्बर, नामदेव जयदेव दासा 11
तिनकी खबर कहत नहिं कोई, उन्ह कहाँ कियो है बासा 12
चौपर खेल होत घट भीतर, जन्म का पासा डारा 13
दम दम की कोइ खबरि न जाने, कोइ कै न सके निरुवारा 14
चारि दृग महि मण्डल रच्यो है, रूम शाम बिच डिल्ली 15
तेहि ऊपर कछु अजब तमाशा, मारो है यम किल्ली 16
सकल अवतार जाके महि मंडल, अनन्त खड़ा कर जोरे 17
अद्बुद अगम औगाह रच्यो है, ई सब शोभा तेरे 18
सकल कबीरा बोले बीरा, अजहूँ हो हुशियारा 19
कहहिं कबीर गुरु सिकली दर्पण, हरदम करहिं पुकारा 20

शब्दार्थ—कबिरा= मनुष्य जीव। घर= निवास। कन्दला= कंदरा, गुफा। अमहल= बेघर वाले साधु-संन्यासी। महल= घर वाले गृहस्थ। मों= में। कबीरा= जीव। मन्मथ= काम, काम-वासना। नाद= शब्द, प्राण। बिन्द= वीर्य। सकल कबीरा= सब जीव। घट= हृदय। कामिनी रूपी मृगा चरिन्दा= कामिनी रूपी चरने वाला पशु, तात्पर्य में काम-पशु। पुरन्दर= इन्द्र। दत्त= दत्तात्रेय। चौपर= चौसर। पासा= चौसर के खेल में फेंका जाने वाला वह चौपहला लंबोतर हड्डी या लकड़ी का बड़ा टुकड़ा जिस पर बिंदिया बनी होती हैं। दम-दम= क्षण-क्षण। चारि दृग= चार दिशाएं—नाभि, हृदय, कंठ तथा त्रिकुटी। महि मण्डल= पृथ्वी मंडल, शरीर। रूम= तुर्की, पश्चिम, तात्पर्य में पीठ। शाम= श्याम, थाइलैण्ड, पूर्व, तात्पर्य में छाती। दिल्ली= भारत की राजधानी, तात्पर्य में हृदय। यम= वासना। किल्ली= अज्ञान का खूंटा, सिटकिनी, कुंजी। महिमण्डल= पृथ्वी पर। अगम= अपार। औगाह= अवगाह, अथाह। बीरा= मन पर विजयी संतजन। सिकली= सान चढ़ाने या मांजने की क्रिया।

भावार्थ—हे मनुष्य! तेरा वास्तविक स्वरूप चेतन तो हृदय-गुहा में विद्यमान है। तू उसे न समझकर इस बाहरी जगत में भूला रहता है 1 कोई गुरु के उपदेशों का पालन नहीं करता है। साधु हो या गृहस्थ सब अपने आत्मस्वरूप को न समझकर बाहरी कल्पनाओं में उन्मत्त हैं 2 सभी जीव मानो मूलतः ब्रह्म एवं शुद्धरूप ही हैं। परन्तु उनमें देहोपाधि से विवेक या अविवेक के कारण कोई हंस है और कोई काक है। जो हंस है वह नीर-क्षीर विवेक करता है और जो काक है वह सब कुछ खाने के लिए अपना मुख

फैलाता है 3 सब जीव सकाम कर्म करके नाना देह धारण करते हैं और नाद-बिन्द से अपनी सृष्टि का विस्तार करते हैं 4 वैसे सब मनुष्य ज्ञान की बातें करते हैं, परन्तु अपने घर छाते हैं पानी में। अर्थात ज्ञान की बातें करते हुए अपने आचरण जगत में डूबने वाले रखते हैं 5 इसलिए हृदय के भीतर रहे हुए अनन्त आत्मिक धन की लूट हो रही है और जीव अपने घट भीतर का हाल नहीं जान पा रहा है 6 कामनारूपी पशु सबके हृदय-खेत को चर रहा है 7 बड़े-बड़े शास्त्रज्ञानी और श्रेष्ठ मुनि लोग भी थक गये, परन्तु इस कामना-पशु को नहीं पकड़ पाये कि इसे वश में कर लें 8 ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, इन्द्र, पीपा, प्रहलाद और प्रहलाद को बचाकर अपने नखों से हिरण्यकश्यपु के पेट को फाड़कर उसे मारने वाले नृसिंह इन किसी को भी काल ने नहीं रहने दिया 9-10 और इतना ही क्या, गोरख ऐसे महायोगी, दत्तात्रेय दिगम्बर, नामदेव तथा जयदेव भक्त, इनका कोई संदेश नहीं बताता है कि इन सबने अपने निवास कहां बनाये 11-12 सबके हृदय में मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार का चौसर-खेल हो रहा है और बारम्बार नाना योनियों में भटकने के पासे पड़ रहे हैं, अथवा इस खेल में जीव अपने जीवन को दावं पर लगाकर उसे हार रहा है 13 क्षण-क्षण हृदय में क्या चक्कर चल रहा है, इसका कोई पता नहीं लगाना चाहता और बिना इस बात को समझ लिये कोई अपना भवबंधनों से छुटकारा भी नहीं कर सकता 14 इस शरीररूपी पृथ्वी मण्डल पर नाभि, हृदय, कंठ तथा त्रिकुटीरूपी मानो चार दिशाएं बनायी गयीं हैं, और जैसे रूम और श्याम के बीच में दिल्ली नगर पड़ता है, वैसे पीठ और छाती के बीच में हृदय-नगर पड़ता है जहां चेतन-सम्राट की गद्दी है 15 परन्तु उसके ऊपर कुछ अजब तमाशा हो गया, वह यह कि वासनारूपी यमराज ने वहां अज्ञान का खूंटा ठोंक दिया 16 पृथ्वीमंडल पर जिसके देहधारणरूपी सारे अवतार हैं और अनन्त प्रकृति मानो जिसके सामने हाथ जोड़कर खड़ी है, और जिसने अद्‌भुत, अपार और अथाह ज्ञान-विज्ञान का सागर रच डाला है, हे मानव ! यह सब तेरी विभूति है, तेरी शोभा है 17-18 हे कल्याणार्थियो ! मन पर विजयी वीर संतजन सभी मनुष्यों को हित का रास्ता बताते हैं, तुम उनसे निर्देश लेकर आज भी सावधान हो जाओ तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा 19 कबीर साहेब कहते हैं कि गुरुजन रूपी सिकलीगर तुम्हारे हृदय को मांजकर उसे दर्पण के समान स्वच्छ करने के लिए तुम्हें हरदम पुकार रहे हैं, तुम उनकी तरफ ध्यान दो 20

व्याख्या—"कबिरा तेरो घर कन्दला में, यह जग रहत भुलाना।" इस शब्द में एक बार कबिरा तथा चार बार कबीरा कहकर जीव-समूह, विशेषतः

मानव-समूह को इंगित किया गया है और छठीं बार में कबीर साहेब ने अपने नाम की छाप लगाते हुए 'कहहिं कबीर' कहा है। वे पहली पंक्ति में कहते हैं कि हे कबिरा, हे मानव, तेरा घर तो कंदरा में है। हृदय-गुहा में तेरी चेतना निवास करती है। तू अपनी आत्मा को अपनी हृदय-गुहा में खोज, बाहर क्या भटक रहा है। यह कथन भी भ्रम उत्पन्न कर सकता है। वस्तुतः वह हृदय निवासी तो तू ही है। तेरी अपनी स्मृति अपनी तरफ घूम जाना ही अपनी खोज करना है। तू तो अपने आप को न पहचानकर इस जगत की चमक-दमक एवं तड़क-भड़क में भूल रहा है। यम नचिकेता से कठ उपनिषद् में कहते हैं—"जो स्वरूप में सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और गुणों में महान से भी महान है वह आत्मा सभी प्राणधारियों की हृदय-गुहा में विद्यमान है। उसे ठीक से वही समझता है जो कर्मजाल से छूटा हुआ और शोक से पार है। वह अपने मन की स्वच्छता से अपनी आत्मा में ही महिमावान है।" जो अपने हृदय-मन्दिर के आत्मदेव को जान लेता है, वह संसार में नहीं भटकता।

"गुरु की कही करत नहिं कोई, अमहल महल दिवाना।" सच्चे सद्गुरु जो बताते हैं कि तू अपनी आत्मा को पहचान, इस आदेश का पालन कोई नहीं करना चाहता। मनुष्य अपने अविनाशी स्वरूप को न पहचानकर ही दीवाना बना भटक रहा है। अमहल और महल, अर्थात बे-घर तथा घर वाले सब बाहर से परमात्मा, मोक्ष एवं निर्वाण पाने के लिए पागल हैं। बे-घर साधु-संन्यासी हैं तथा घर वाले गृहस्थ हैं। जैसे गृहस्थ भटक रहे हैं, वैसे साधु-संन्यासी भी भटक रहे हैं। बाहर से मोक्ष और परमात्मा पाने का पागलपन गृहस्थ-विरक्त सबको भटका रहा है।

"सकल ब्रह्म मों हंस कबीरा, कागन चोंच पसारा।" सकल कबीरा मानो ब्रह्म हैं। अर्थात सब जीव स्वरूपतः शुद्ध-बुद्ध हैं। जीव का मौलिक स्वरूप ही ब्रह्म है, महान है, निर्मल है। परन्तु देहोपाधि से उनमें कोई हंस है तथा कोई कौआ है। सभी जीव का मौलिक स्वरूप शुद्ध है, परन्तु देहधारी होने के नाते वे जैसे अपने मनोभाव एवं आचरण रखेंगे वैसे उनके हंस या काकरूप सामने आयेंगे। जो जड़-चेतन का विवेक करेगा, खाद्याखाद्य, ग्राह्य-त्याज्य, राग-विराग, बंध-मोक्ष, दुर्गुण-सद्गुण का अलग-अलग विचारकर नीर त्यागकर क्षीर ग्रहण करेगा वह हंस है, विवेकी है। जिसका आहार शुद्ध है, जो राग-द्वेष और दुर्गुणों को त्यागकर सद्गुण में रमता है, जो जड़ासक्ति छोड़कर निजस्वरूप चेतन में स्थित है वह हंस है। परन्तु जो व्यक्ति काक-बुद्धि का है, वह तो सब

. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः॥ (कठ उपनिषद् 1/2/20)

कुछ खाने के लिए अपनी चोंच फैलाता है। उसके लिए न कुछ विधि है और न निषेध है। उसे न जड़-चेतन का भिन्न विवेक है और न वह विषयों को छोड़कर अविनाशी पद समझता है। उसके लिए सब धान साढ़े बाइस पसेरी है। उसे विवेक-विचार एवं सदाचार से क्या लेना-देना !

"मन्मथ कर्म धरे सब देही, नाद बिन्द बिस्तारा।" मन्मथ कहते हैं काम को और देही का अर्थ है देहधारी जीव, जो देह को धारण करता है, परन्तु कविता में देही का अर्थ देह भी होता है। एक में अर्थ होगा सब देहधारी जीव सकाम कर्म धारण करते हैं और दूसरे में अर्थ होगा कि सकाम कर्म से सब जीव देह धारण करते हैं। अतएव मूल भाव में अन्तर नहीं है। जीव सकाम कर्मवश ही देह धारणकर भटक रहे हैं, या यों कहिए कि मनुष्य सकाम-कर्मवश ही नाना लालसाओं के कारण संसार में भटक रहे हैं। "नाद-बिन्द बिस्तारा" नाद-बिन्द का सरल अर्थ है प्राण और वीर्य। जीव इन्हीं उपादानों से शरीर धारण करता है। जीव निमित्त कारण है, सकाम कर्म साधारण कारण है तथा प्राण-वीर्य उपादान कारण हैं। इन्हीं सबसे शरीर-रचना का विस्तार होता है। "नाद-बिन्द बिस्तारा" को एक ढंग से ऐसा भी समझा जा सकता है कि नाद का अर्थ शब्द है। शब्दों द्वारा उपदेश करके धार्मिक क्षेत्रों में शिष्यों का विस्तार होता है तथा बिन्द वीर्य है उससे गृहस्थी में बाल-बच्चों को पैदा करके उसका विस्तार होता है। वैसे पहले वाला अर्थ ही यहां अधिक उपयुक्त है।

"सकल कबीरा बोले बानी, पानी में घर छाया।" सभी जीव ज्ञान की बातें बोलते हैं, परन्तु अपने घर छाते हैं पानी में। "पानी में घर छाया" बहुत बड़ा व्यंग्य है। हम ज्ञान की बातें तो करते हैं, परन्तु अपने जीवन के आचरण ऐसा करते हैं जिससे अपना पतन हो। कोई अपना मकान पानी में बनायेगा तो वह कब तक टिकेगा ! जिसके पेंदा में छेद-ही-छेद है वह डूबेगा ही। ज्ञान की बातें कहना मात्र पर्याप्त नहीं है, किन्तु उनके अनुसार आचरण करने की महती आवश्यकता है।

"अनन्त लूट होत घट भीतर, घट का मर्म न पाया।" सबके भीतर रहने वाली उसकी अनन्त एवं अविनाशी आत्मा है, वह काम-क्रोधादि डाकुओं द्वारा लूटी जा रही है। यहां अनन्त में श्लेष है। हम यहां के 'अनन्त' शब्द को जीव का स्वरूपवाची भी मान सकते हैं तथा लूट का विशेषण भी। दोनों भावों में मुख्य अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता। एक में अर्थ होगा कि हमारी अनन्त आत्मा लूटी जा रही है और दूसरे में अर्थ होगा कि हमारी आत्मा की अनंत लूट हो रही है। अर्थात वह हर तरह से लूटी जा रही है। यह जो क्षण-क्षण काम, मोह, देहाभिमान, द्वेष, क्रोध, लोभ, चिन्ता, शोक आदि हमारी अन्तरात्मा को मलिन

करते रहते हैं यह मानो हमारी अनन्त आत्मा की लूट हो रही है। अथवा हमारी आत्मा अनन्त प्रकार से लूटी जा रही है। परन्तु "घट का मर्म न पाया" हम अपने घट का मर्म नहीं जान पाते। हमें हृदय में होने वाली क्षण-क्षण की लूट के रहस्य का पता नहीं लगता। इतनी हमारी असावधानी है। हम जिस घर में रहते हों उसी घर में क्षण-क्षण लुटेरे घुस-घुसकर हमारे माल-टाल की लूट मचा रहे हों और हमें इसका पता ही न लगे तो इससे अधिक हमारी अचेती क्या होगी ! हमारे हृदय-मंदिर में जो कामादि डाकू हमारे ज्ञान तथा शांति-धन को लूटते हैं हम उससे जीवनभर अनभिज्ञ बने रहते हैं। इससे अधिक दुख की बात क्या होगी ! इसलिए साधक को चाहिए कि वह सब समय अपने हृदय को देखे। जो अपने मन का सब समय साक्षी बना रहता है, वही सच्चा साधक है। जो हृदय-घर की सदैव निगरानी रखता है, उसके दिल में चोरी नहीं होगी। सतत सावधानी ही साधना है। जो हर समय अपने मन को देखता है, उसका मन चालबाजी नहीं कर पाता। इसलिए साधक को चाहिए कि वह आवश्यक काम करते हुए सब समय साक्षी-भाव से रहे। मन को देखता रहे कि वह क्या कर रहा है। जो सावधान होकर सदैव मन को देखता रहेगा उसका हृदय स्वच्छ रहेगा।

"कामिनी रूपी सकल कबीरा, मृगा चरिन्दा होई।" सकल कबीरा अर्थात सभी मनुष्य जीवों को कामिनी रूपी मृगा चर रहा है। कामिनी का अर्थ है काम-वासना। यह एक ऐसा पशु है जो चरिन्दा है, चरता है। मनुष्यों के हृदयरूपी खेत के ज्ञान और शांति-फसल को कामवासना रूपी पशु निरन्तर चर रहा है। यदि खेत की फसल को पशु बराबर चरते रहें, तो फसल होना असंभव है। इसी प्रकार जिसके हृदय में काम-वासनाएं बराबर बनी रहती हैं उसके हृदय में कहां ज्ञान की स्थिति होगी और कहां शांति होगी।

"बड़ बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके, पकरि सके नहिं कोई।" शास्त्रों के बड़े-बड़े ज्ञानी तथा बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इस पशु को पकड़ने का प्रयत्न किये कि इसे पकड़कर बांध दें जिससे फसल की रक्षा हो, परन्तु कोई पकड़ न सका। लोग इस कामना-पशु के पीछे दौड़ते-दौड़ते स्वयं थककर गिर पड़ते हैं, परन्तु इसे पकड़ नहीं पाते। इस कामना-पशु का एक रूप नहीं है। इसके अनेक रूप हैं। यह अपनी शक्ल बदलने में माहिर है। काम-वासना का मतलब केवल स्त्री-पुरुष के अंग-मिलन की चाह ही नहीं है। यह तो है ही। यह तो बहुत मलिन है। परन्तु इसके अलावा बाहर से कुछ भी पाने की कामना, कामना ही है। अपने चेतन को छोड़कर, अपनी आत्मा से हटकर हम जो कुछ पाने की कामना करते हैं, वह मानो मन का भटकाव है। यदि हम किसी विषय से सुख पाना

चाहते हैं, तो कामना है, बाहर से ईश्वर या मोक्ष पाना चाहते हैं तो कामना है। हम स्थूल विषयों की मलिनता से अपने आप को मुक्त भी कर लेते हैं, परन्तु इसके बाद यदि बाहर से ईश्वर या मोक्ष पाना चाहते हैं, तो मानो कामना-रूपी पशु के द्वारा हमारा हृदय-खेत चरा जा रहा है। इसीलिए साहेब कहते हैं कि बड़े-बड़े ज्ञानी और मुनि भी थक गये, परन्तु कामना-पशु को पकड़ नहीं सके। उसे पहचानकर उससे मुक्त नहीं हो सके। ज्ञानी और मुनिजन समझते हैं कि हमने विषयों का त्याग कर दिया, अब केवल परमात्मा के दर्शन की भूख रह गयी है। अब तो हम कामनाओं से मुक्त हैं। परन्तु हमें समझना चाहिए कि यदि परमात्मा अपनी आत्मा से अलग है और उसके दर्शन होते हैं तो वह भी विषय है। निज चेतनस्वरूप के बाद सब विषय है। इस प्रकार कामना-पशु का बड़ा सूक्ष्म रूप है। इसे पकड़ पाना, इसे वश में कर पाना बड़ी परख की बात है। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं—

ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, इंद्र, पीपा, प्रहलाद, नृसिंह, गोरख, दत्तात्रेय दिगंबर, नामदेव, जयदेव या इसी लाइन में और भी जितने नाम गिना लें, यदि ये सब अपनी स्वरूपस्थिति एवं आत्मस्थिति के अलावा भी ऋद्धि-सिद्धि, ईश्वर-मोक्ष आदि कुछ चाहते रहे तो ये मानो कामना-पशु के पीछे दौड़ते रहे।

यहां जो ब्रह्मादि कई नाम गिनाये गये हैं और इन्हें काल के अधीन बताया गया है और यह कहा गया है कि "तिनकी खबर कहत नहिं कोई, उन्ह कहाँ कियो है बासा।" इसमें दो अर्थ हैं। पहला तो यह है कि इनमें से किसी के प्रति जो देवता एवं अतिमानव होने की कल्पना है उसका खंडन है। कबीर साहेब मानव के अलावा कोई देवता नहीं मानते, और यही तथ्य है। यह देववाद तथा अतिमानव की कल्पना ही सारी भ्रांतियों की जड़ है। साहेब कहते हैं कि ब्रह्मा हों या वरुण, कुबेर हों या इंद्र और चाहे हिरण्यकश्यपु के पेट को अपने नख से फाड़ने वाले नृसिंह ही क्यों न हों, यदि ये सब देहधारी थे, तो मानव से बढ़कर ये कुछ नहीं थे। इनकी भी एक दिन मौत हो गयी होगी, अन्यथा ये आज दिखाई देते। गोरखनाथ जी को लोग अमर कहते हैं। साहेब कहते हैं यह भी गलत है। जो एक दिन देह धारण करता है, वह एक दिन अवश्य मरता है। यह समस्त देहधारियों के लिए प्रकृति का अकाट्य नियम है। इसके अलावा ये ब्रह्मादि तथा पीपा, प्रहलाद, दत्त, दिगंबर, नामदेव, जयदेव आदि यदि अपनी आत्मा से अलग किसी ईश्वर-परमात्मा को पाने की कामना अपने मन में बनाये रखे हों तो ये कामना-पशु के द्वारा मानो चरे जा चुके हैं। इसका पता कौन बताये कि ये किस ईश्वर के पास किस लोक में जाकर निवास पाये ! लोग कहते हैं कि प्रहलाद बैकुंठधाम को चले गये तथा अन्य भक्त लोगों में से कोई

ब्रह्मलोक, कोई गोलोक, कोई शिवलोक आदि में गये। साहेब कहते हैं कि यह खबर तुम्हें कैसे मिली? यह सब कामना-पशु का राज्य है। ज्ञानी के लिए केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह जीवनकाल में ही चेतनस्वरूप में स्थित हो गया, वह अपने आत्माराम में लीन हो गया, और जो आज सारी वासनाओं को छोड़कर स्वरूपस्थ एवं आत्मस्थ है, वह मानो सदैव के लिए स्वरूपस्थ एवं आत्मस्थ है, क्योंकि उसकी कामनाएं सर्वथा मिट गयी हैं। जब कोई कामना नहीं हो तो कहीं आना-जाना नहीं। इसके अलावा कुछ नहीं कहा जा सकता।

"चौपर खेल होत घट भीतर, जन्म का पासा डारा। दम दम की कोइ खबरि न जाने, कोइ कै न सकै निरुवारा।" सबके हृदय में चौपड़ का खेल हो रहा है। लोग कपड़ा बिछा लेते हैं। उस पर गोट या पासा फेंककर खेल खेलते हैं। खेल में जीतते हैं या हारते हैं। हड्डी या लकड़ी का एक लंबा तथा चौपहला टुकड़ा होता है। जिस पर बिंदियां बनी रहती हैं। उसे पासा कहते हैं। उसे फेंक-फेंककर चौपर एवं चौसर खेलते हैं। इसमें रुपये-पैसे या अन्य प्रकार के धन दावं पर लगाते हैं। यही जुआ कहलाता है। इसी जुआखेलाई में तो कौरवों तथा पांडवों का विध्वंस हुआ था। इस चौसर एवं जुआ में हारने तथा जीतने वाले दोनों मानो अपने जीवन को हारते हैं।

साहेब कहते हैं कि सबके घट के भीतर, सबके दिल में एवं हृदय में चौपड़ खेल हो रहा है और वह खेल अनवरत होता है। इस चौसर में हृदय मानो बिसात अर्थात फैलायी हुई चद्दर है; मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार का चौपहला पासा है। इस पासे को फेंक-फेंककर मनुष्य अपने पूरे जन्म को एवं जीवन को दावं पर लगा देता है। मनुष्य अपना पूरा जीवन मन के खेल में लगा देता है। वह क्षण-क्षण मन से विषयों का स्मरण करता है, चित्त से उनका अनुसंधान करता है, बुद्धि से उन्हीं में सुख निश्चय करता है तथा अहंकार से उन्हीं की करतूति करता है। वस्तुतः एक ही अंतःकरण विषयों का सरल चिन्तन करता है तब मन की अवस्था है, वह जब विषयों की गहराई में उतरता है तब चित्त की अवस्था है, जब उनमें सुख निश्चय करता है तब बुद्धि की अवस्था है और जब उनके भोगों में प्रवृत्त होता है तब अहंकार की अवस्था है। इस प्रकार मनुष्य के घट-भीतर यह चौसर, यह जुआ, यह पासे का फेंकना चला करता है, और आदमी अपने जीवन को, अपने सर्वस्व को उसके साथ हारता रहता है। मन के बहकाव में चला जाना ही मानो अपने जीवन को, अपने सर्वस्व को हार जाना है। "जन्म का पासा डारा" का यही अर्थ है कि मनुष्य ऐसा पासा फेंकता है जिसमें अपने जीवन को हार जाता है। इसी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि

जीव नाना योनियों में भटकने के लिए ही मानो यह पासा फेंकता है। यदि जीव विषयों के चिन्तन ही में रहेगा तो योनियों में भटकता ही रहेगा।

"दम दम की कोई खबरि न जाने, कोइ कै न सकै निरुवारा।" दिल के भीतर क्षण-क्षण क्या घटना घट रही है इसका किसी को पता नहीं है। आदमी हर समय अपने दिल को लेकर ही जीता है, परन्तु दिल में क्या-क्या हो रहा है इसकी खबर उसे नहीं है। जब तक घर के भीतर का झगड़ा न जाना जाये तब तक उसका निपटारा भी कैसे किया जा सकता है! जो लोग रात-दिन मन की धारा में बहते हैं उनकी तो बात ही छोड़िये, जो मन को देखने का प्रयास करते हैं, वे भी समय-समय से मन को देखते-देखते उसमें इस ढंग से बह जाते हैं कि उनको पता भी नहीं लगता कि हम कब बह गये और कहां गये। मन की वासनाएं बड़ी सूक्ष्म होती हैं। जो सतत सावधान रहता है वही इससे बचता है। वस्तुतः मन की धारा से उबरने के लिए वैराग्य और अभ्यास दोनों चाहिए। संसार-शरीर की नश्वरता और दुखरूपता का सदैव भान रहना वैराग्य है और मन का साक्षी बनकर उसे शांत करते रहना अभ्यास है। इसमें वैराग्य प्रबल साधन है। मन में तीव्र वैराग्य आने से हृदय की हलचल अपने आप शांत हो जाती है। साधक को चाहिए कि वह सदैव विषयों के प्रति अनासक्ति रूपी वैराग्य तथा मन का साक्षी-भावरूप अभ्यास को जाग्रत रखे।

साधक वही है जो अपने दिल को सदैव देखता है। विशाल देव ने कहा है—"जो सद्बुद्धिमान तथा गुणग्राही है वह अपने दिल को देखता है कि हमारे दिल-घर में क्या-क्या काम हो रहा है। हृदय में स्ववशता, स्वतन्त्रता एवं निर्विषय स्वरूपस्थिति का राज्य है या विषय-वासनाओं की प्रबलता एवं जीव की विवशता का जोर है। सच्चा साधक विषय-वासनाओं के वश होना मौत से अधिक दुखद समझता है। इसलिए वह सदैव निर्विषय एवं स्ववश होने के लिए प्रयत्नवान रहता है। वह अन्य सारे काम छोड़कर रात-दिन इसी लक्ष्य में तत्पर रहता है कि हमारा मन, हमारा हृदय सब समय निर्विषय एवं स्ववश रहे।"

"चारि दृग महि मण्डल रच्यो है, रूम शाम बिच डिल्ली। तेहि ऊपर कछु अजब तमाशा, मारो है यम किल्ली।" यह शरीर मानो महि-मण्डल अर्थात भूमंडल है। भूमंडल पर चार दिशाओं की कल्पना होती है जिन्हें पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण कहते हैं। इस शरीररूपी भूमंडल पर नाभि, हृदय, कंठ तथा

. सद्बुद्धी गुणग्राह्यता, देखै अपनी ओर।
क्या क्या दिल घर काम हो, स्ववश विवश कर जोर॥
विवश मरण से अधिक लखि, स्ववश हेतु परियत्न।
निश दिन तत्पर याहि में, और तजै सब यत्न॥ (मुक्तिद्वार, शांतिशतक 43-44)

त्रिकुटी ही मानो चार दिशाएं हैं। हमारे भारतवर्ष की राजधानी बहुत दिनों से दिल्ली है। वहीं हमारे देश का बादशाह रहता है। हमारे देश की राजधानी दिल्ली रूम और श्याम के बीच में है। रूम है तुर्की जो दिल्ली से पश्चिम है और श्याम है आजकल का थाइलैंड जो दिल्ली से पूर्व है। इस प्रकार रूम और श्याम के बीच में दिल्ली है। इस शरीररूपी भूमंडल पर पीठ रूम है तथा छाती श्याम है और दोनों के बीच में हृदय दिल्ली है, जहां इस शरीर-देश के बादशाह-चेतन की गद्दी है। साहेब कहते हैं, परन्तु इस हृदय-दिल्ली में कुछ अजब तमाशा हो गया है। यहां पर यम ने किल्ली गाड़ दी है। यम वासना है और किल्ली अज्ञानरूपी खूंटा है। इन सारे अलंकारों के जंजाल को हटाकर अर्थ बड़ा सरल है कि इस मनुष्य-शरीर के हृदय में ही चेतन-सम्राट एवं आत्मदेव निवास करता है, परन्तु हृदय में उसका राज्य न रहकर वासना एवं अज्ञान का राज्य है। जीव हृदय में रहता अवश्य है, परन्तु वह वासना के अधीन है। उसका हृदय चेतन की स्ववशता में न रहकर विषयों की विवशता में रहता है। यही अजब तमाशा है। यही उलटा खेल है।

प्रश्न होता है कि क्या चेतन-सम्राट अपने स्वरूपस्थिति-राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता? क्या वह वासनाओं से मुक्त नहीं हो सकता? साहेब कहते हैं कि बिलकुल हो सकता है, क्योंकि यह जीव महान समर्थ है। साहेब इस चेतन की प्रशंसा में कहते हैं "सकल अवतार जाके महि मण्डल, अनन्त खड़ा कर जोरे। अद्‌बुद अगम औगाह रच्यो है, ई सब शोभा तेरे।" हे जीव! इस पृथ्वी मंडल पर सारे अवतार तुम्हारे ही हैं। अनादिकाल के दौरान में पृथ्वी पर जो भी देहधारण हुआ है वह तेरी ही तो विभूति है। तू ही तो व्यास हुआ, वसिष्ठ हुआ, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर हुआ, तू ही जरथुस्त्र, लाओत्जे, मूसा और ईसा हुआ, तू ही सुकरात और मुहम्मद हुआ। यह प्राणियों का जन्म ही तो अवतार है। कबीर साहेब वैसा अवतार नहीं मानते कि कोई सुप्रीम पावर है और वह ऊपर से उतरता है। कबीर साहेब के ख्याल से सारे प्राणी ही मानो अवतार हैं। उनमें मनुष्य की मुख्य भूमिका है। संसार में जो बड़ी-बड़ी विभूतियां हुईं या होती हैं, अन्य मनुष्य भी मूलतः उन्हीं के समान हैं। ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल का विलक्षण-विलक्षण अनुसंधाता आखिर कौन है? यह मनुष्य ही है। यही अद्‌भुत, अपार और अथाह ज्ञान-विज्ञान का जनक है। इस जड़-प्रकृति क्षेत्र में जिसने ज्ञान-विज्ञान की हलचल मचा रखी है वह यह मनुष्य जीव ही है। सद्‌गुरु कहते हैं कि हे मनुष्य! यह सारा ज्ञान-विज्ञान तेरी शोभा है, तेरी विभूति है। तूने ही वेद बनाये, बाइबिल बनायी, कुरान बनाया और हजारों धर्मग्रन्थ बनाये। तूने ही व्याकरण, संगीत, नृत्य तथा प्रकृति-शक्ति के ज्ञान-विज्ञान के हजारों आयाम खोले। तूने ही ईश्वर, अवतार, पैगंबर, देवी-देवता

तथा स्वर्ग-नरक की कल्पना की। तू न होता तो ज्ञान-विज्ञान का नामोनिशान न होता। चन्द्रमा भी एक पृथ्वी है। वहां तू नहीं है, तो वहां कहां ज्ञान-विज्ञान है! इसलिए ज्ञान-विज्ञान का तू ही मूल है। तेरे सामने यह अनन्त प्रकृति मानो हाथ जोड़कर खड़ी है। तू इसका भोक्ता एवं द्रष्टा है। यह जड़ दृश्य है। अतएव तू ऐसा महान होकर अपने आप को वासनाओं से मुक्त क्यों नहीं कर सकता है! सारी वासनाएं, सारी आदतें तेरी रची हैं इसलिए तू इन सबको एकदम छोड़ सकता है। तू वासनाओं को त्यागकर ही हृदय-दिल्ली का बादशाह हो सकता है। बाहरी देश का बादशाह तो बेचारा वासनाओं में फंसा दीन है। असली बादशाह तो वही है जो वासनाओं से सर्वथा मुक्त है।

"सकल कबीरा बोले बीरा, अजहूँ हो हुशियारा।" हे सकल कबीरा! हे सम्पूर्ण मनुष्यो! वासना-विजयी संतजन तुम्हें ज्ञान की बातें समझा रहे हैं। वे तुम्हें अपने उच्चादर्श से तथा वाणी से—दोनों से प्रेरित कर रहे हैं। इन वासना-विजयी-वीर संतों की आवाज सुनकर तो तुम्हें जग जाना चाहिए। आचरणहीन वक्ताओं का कोई प्रभाव न पड़े तो यह स्वाभाविक-सी बात है, परन्तु जो वीर हैं, जिन्होंने अपने मन की सारी वासनाओं को जीत लिया है, ऐसे संतों के वचनों से, आचरणों से तो प्रेरणा लेनी चाहिए। तुम ऐसे संतों से प्रेरणा लो और आज ही होशियार हो जाओ, सावधान हो जाओ। तुम्हारे दिल की वासनाएं ही तुम्हें रात-दिन लूट रही हैं। तुम रात-दिन अन्दर-ही-अन्दर लूटे जा रहे हो। अतएव इन अन्दर के लुटेरों से सावधान हो जाओ।

"कहहिं कबीर गुरु सिकली दर्पण, हरदम करहिं पुकारा।" कबीर साहेब कहते हैं कि गुरु सिकलीगर होते हैं। वे निर्णय-विवेक के सान पर शिष्य के मैले-मन को मांजकर उसे दर्पणवत स्वच्छ बना देते हैं। पत्थर की एक चक्की होती है उसे 'सान' कहते हैं। उसको घुमाते हैं और उस पर उस्तरा आदि लोह के औजार रखकर उसे मांजते हैं। मांजने को 'सिकली' कहते हैं और जो मिस्त्री मांजता है उसे 'सिकलीगर' कहते हैं। यहां निर्णय-विवेक मानो 'सान' है, सद्गुरु 'सिकलीगर' हैं और उनका निर्णय-विवेक द्वारा शिष्य को बोध देना मानो 'सिकली' करना एवं मांजना है। कबीर साहेब कहते हैं कि सद्गुरु तो तुम्हें हरदम पुकार रहे हैं, वे हरदम तुम्हें अपनी ओर खींचते हैं। तुम्हीं ऐसे जड़मति हो गये हो कि उनकी पुकार सुन नहीं रहे हो। तुम गुरु की आवाज की तरफ ध्यान दो, निश्चित ही तुम्हारा बेड़ा पार होगा।

सद्गुरु ने इस शब्द में पूरे मानव समाज को संबोधित कर यह समझाने का प्रयास किया है कि मनुष्य का प्राप्तव्य उसका निज चेतनस्वरूप है, आत्मदेव है और वह उसकी हृदय-गुहा में सब समय विद्यमान है। परन्तु मनुष्य अपने उस दिव्य स्वरूप को नहीं समझता है, इसलिए वह सकाम कर्मों में लिपटा वासना

का शिकार बना रहता है। उसके हृदय में चेतन का साम्राज्य होना चाहिए, परन्तु अज्ञानवश वासना का साम्राज्य बना रहता है। मनुष्य में महान बल है। उसे अपने बल की याद करनी चाहिए। उसे वासना-विजयी संत-गुरुजन जगाते हैं। इसलिए उनसे प्रेरणा लेकर और अपने स्वरूप को पहचानकर समस्त जड़-वासनाओं को जीत लेना चाहिए। और इसी जीवन में सम्राट हो जाना चाहिए। जो वासना-विजयी है वही सम्राट है।

वरुण

ये देवताओं के रक्षक, दैत्यों के नाशक तथा जल के स्वामी कहे जाते हैं। पुराणों के अनुसार वरुण पश्चिम दिशा के दिग्पाल माने गये हैं। ये पाश-अस्त्र लिये रहते हैं, ऐसी कल्पना है। उपर्युक्त वरुण तथा साथ-साथ मित्र ये दोनों वैदिक माने जाते हैं। परन्तु इन दोनों के आचरण अत्यंत शिथिल बताये जाते हैं। देखिए वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकांड का 56वां सर्ग। वैसे ऋग्वेद के सातवें मंडल के छियासिवें से नवासिवें सूक्त में वरुण एक वह शक्ति है जिसके द्वारा ऋत की व्यवस्था की गयी है। लगता है वहीं से लेकर पुराणों में उसका विकृत रूप पंडितों ने गढ़ा है। वेदों का वरुण चरित्रवान है।

कुबेर

इनके पिता का नाम विश्रवा तथा पितामह का नाम पुलस्त्य था। कुबेर रावण के बड़े भाई थे, जो दूसरी माता से पैदा हुए थे। ये देवताओं के कोषाध्यक्ष भी माने जाते हैं। इनका निवास कैलाश की तराई अलकापुरी नामक ग्राम में बताया जाता है।

पीपा

ये एक राजा थे। गागरोन नामक गढ़ इनकी राजधानी था। इन्होंने एक लम्बे पद में कबीर साहेब की बड़ी प्रशंसा की है। ये स्वामी रामानन्द के शिष्य बताये जाते हैं। ये बहुत प्रसिद्ध भक्त थे। इनका देहावसान कबीर साहेब के काल में ही हो गया था।

नामदेव

ये महाराष्ट्र के प्रसिद्ध वैष्णव संत हैं। इनका काल विक्रमी 13वीं-14वीं शती के बीच माना जाता है। इन्होंने महाराष्ट्र में रामोपासना का प्रचार किया था।

जयदेव का परिचय पीछे 81वें शब्द में आ चुका है।

. जो कलि मांझ कबीर न होते।
तो ले बेद औ कलियुग मिलि कर भगति रसातल देते॥ (पीपा)

हठयोग द्वारा षटचक्र वेधन का स्वरूप

शब्द-87

कबिरा तेरो बन कन्दला में, मानु अहेरा खेलै 1
बफुवारी आनन्द मृगा, रुचि रुचि सर मेलै 2
चेतत रावल पावन खेड़ा, सहजै मूल बाँधे 3
ध्यान धनुष ज्ञान बाण, जोगेश्वर साधे 4
षट चक्र बेधि कमल बेधि, जाय उजियारी कीन्हा 5
काम क्रोध लोभ मोह, हाँकि सावज दीन्हा 6
गगन मध्ये रोकिन द्वारा, जहाँ दिवस नहिं राती 7
दास कबीरा जाय पहुँचे, बिछुरे संग औ साथी 8

शब्दार्थ—कबिरा= मनुष्य। कन्दला= कंदरा, गुफा, हृदय। मानु= मन। अहेरा= शिकार। बफुवारी= बपु-बारी—शरीररूपी बाग। आनन्द मृगा= आनन्दरूपी मृग। रुचि-रुचि= इच्छानुसार। सर= बाण। मेले= चलाना, फेंकना। चेतत= सावधान होना। रावल= राजा, श्रेष्ठ योगी। पावन= पवित्र। खेड़ा= छोटा गांव, शरीर। सहजै= सरल ढंग से। मूल बाँधे= मूलबंध मुद्रा। सावज= पशु। गगन= आकाश, ब्रह्मरंध्र, सहस्रार। संग औ साथी= तत्त्व प्रकृति।

भावार्थ—हे मनुष्य! तेरे हृदय-कानन में मन शिकार खेल रहा है 1 शरीररूपी बाग के आनन्द-मृग पर इच्छानुसार बाण चला रहा है, अर्थात जीवन की सुख-शांति को नष्ट कर रहा है 2 योगी मन से सावधान हो जाता है। वह अपने शरीर को धौति-वस्ति आदि षटकर्म से शुद्ध कर लेता है और सरल ढंग से मूलबंध मुद्रा में स्थित हो जाता है 3 तत्पश्चात योगेश्वर ध्यानरूपी धनुष पर ज्ञान का बाण चढ़ाकर लक्ष्य पर वार करता है 4 वह मूलाधार आदि छह चक्रों एवं तत्रस्थित कमलों को बेधकर और सहस्रार एवं गगन-गुफा में पहुंचकर प्रकाश कर देता है 5 वह योगी वहां से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पशुओं को हांककर मानो खदेड़ देता है 6 सभी द्वारों को रोककर योगी गगन-गुफा सहस्रार में समाधिलीन हो जाता है। जहां पर न दिन है और न रात, किन्तु एक समान स्थिति है 7 योगी उस उच्च स्थिति में पहुंच जाता है जहां पहुंचने के पहले ही तत्त्व-प्रकृतिरूपी संगी-साथी छूट जाते हैं 8

व्याख्या—मन की घातक-प्रवृत्ति तथा हठयोग की साधना द्वारा उसको मारकर समाधि में पहुंचने का कितना सुन्दर वर्णन इस शब्द में हुआ है, यह सोचते ही बनता है। सद्गुरु कहते हैं—"कबीरा तेरो बन कंदला में, मानु अहेरा खेलै " हे कबिरा, हे मानव! तेरी हृदय-कंदरा के वन में अर्थात तेरे हृदय-

कानन में मन निरंतर शिकार खेलता है। यहां मनुष्य के हृदय को वन और कंदरा दो रूपकों से व्यक्त किया गया है। कंदरा शब्द में मनुष्य के मन की गहराई की व्यंजना है और वन शब्द में उसकी विशालता एवं जटिलता की व्यंजना है। मनुष्य का हृदय बड़ा गहरा, बड़ा विशाल तथा बड़ा जटिल है। मनुष्य के हृदयरूपी इस बीहड़ वन में मन-शिकारी निरंतर शिकार खेलता है। इसके शिकार का लक्ष्य बनता है 'आनन्द-मृग'। मन-शिकारी के बाण से मनुष्य का 'आनन्द-मृग' मारा जाता है। 'बफुवारी आनन्द मृगा, रुचि रुचि सर मेलै।" सद्गुरु इस शरीर को एक बाग एवं फुलवारी के रूप में भी चित्रित करते हैं। हृदय-कानन हो या शरीर-बाग हो, सार तात्पर्य एक है कि मनुष्य-जीवन के आनन्द-मृग को मन-शिकारी अपनी रुचि के अनुसार मार-मारकर क्षत-विक्षत कर देता है। हम इसको और सरल ढंग से कहें तो यह होगा कि अविवेकी मन हर समय इस ढंग से सोचता है जिससे जीवन का आनन्द, जीवन का सुख खो जाता है।

मनुष्य के हृदय-कानन में रहने वाला आनन्द-मृग सुरक्षित नहीं रहने पाता। अविवेकी मनरूपी शिकारी उसके पीछे लगा रहता है। मन जीवन के सुख पर बाण चलाता रहता है। मनुष्य को रोटी मिलती है, कपड़े मिलते हैं, रहने के लिए घर भी मिलता है, परन्तु हरदम मन कुछ ऐसा सोचता है कि जिससे जीवन का सुख खोया रहता है। हर आदमी के हृदय-कानन का आनन्द-मृग क्यों मरा-मरा है? क्यों आदमी हर समय पीड़ा-पीड़ा का अनुभव करता है? क्योंकि मन के सोचने का तरीका ही मूर्खतापूर्ण है। बाहर से हम चाहे जितने सम्पन्न, सम्मानित तथा प्रतिष्ठित हो जायें, जब तक हमारे मन के सोचने का तरीका अच्छा नहीं होगा, तब तक हम दुखी बने रहेंगे।

जो वस्तुएं हमारे पास हैं उनमें हम संतुष्ट नहीं रहते, किन्तु जो नहीं हैं, उनके अभाव-अनुभव, उनकी आकांक्षा एवं कल्पना को लेकर जलते रहते हैं। हम अपने साथियों की रुचियों, उनके स्वभावों तथा उनके सोचने के तरीकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर उनसे विनम्रतापूर्वक सामंजस्य स्थापित करने एवं तालमेल बैठाने का प्रयास नहीं करते, किन्तु उनके प्रति नाना प्रकार के संदेहों में उलझकर मन में तिल का ताड़ बनाते हैं और अपने साथियों से सदैव तनावग्रस्त स्थिति में रहते हैं। विषयों की इच्छा ऐसी आग है जो भोग रूपी आहुति पाकर प्रज्वलित होती है। विषयासक्तिवश हम इस तथ्य को नहीं समझते और विषयों में अपना पतन समझते हुए भी दीप-पतिंगेवत उनमें जलते हैं। अज्ञान और विषयासक्ति के कारण मन के सोचने का तरीका बहुत खराब हो गया है, इसलिए हमारे जीवन का आनन्द उड़ गया है। यही मानो मन-शिकारी द्वारा हमारे हृदय-कानन तथा जीवन-फुलवारी के आनन्द-मृग को मारना है।

"चेतत रावल पावन खेड़ा" श्रेष्ठ योगी इन मानसिक दुखों से मुक्त होने के लिए सावधान होता है। वह पहले अपने खेड़ा को, इस छोटे-से गांव शरीर को पावन करता है। हठयोगी अपने शरीर को पहले धौति, वस्ति, नेति, नौलिकी, त्राटक तथा कपालभाति इन षटकर्मों द्वारा शुद्ध करते हैं। फिर "सहजै मूल बाँधे" अर्थात अभ्यस्त होने से वे सहज ही मूलबंध-मुद्रा में स्थित हो जाते हैं। गुदा-द्वार पर बायें पैर का गुल्फ (एड़ी के ऊपर की गांठ) रखकर योनि आकुंचनपूर्वक मेरुदंड में नाभि-ग्रन्थि को दबाकर शिश्न के मूल पर दाहिने पैर का गुल्फ दृढ़ रूप से जमा देने से मूलबंध मुद्रा की साधना होती है। इस प्रकार मूलबंध मुद्रा में स्थित होकर श्रेष्ठ योगी ध्यान के धनुष पर ज्ञान का बाण चढ़ाता है और मन को मार गिराता है।

"षट चक्र बेधि कमल बेधि, जाय उजियारी कीन्हा।" हठयोगी इसके लिए बड़ी कठिन साधना करता है। वह है षटचक्र का वेधन। उसका विवरण इस प्रकार है—

कहा जाता है कि इस शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां हैं, जिसमें ईडा, पिंगला और सुषुम्णा मुख्य हैं। मेरुदण्ड के बाहर बायीं ओर से ईडा नाड़ी तथा दायीं ओर से पिंगला नाड़ी लिपटी हुई हैं। मेरुदंड के भीतर कन्द भाग से आरम्भ होकर सुषुम्णा नाड़ी कपाल में स्थित सहस्रदल कमल में जाती है। जैसे केले के स्तंभ में परतें होती हैं, इसी प्रकार बज्रा, चित्रिणी एवं ब्रह्मनाड़ी—सुषुम्णा में—ये तीन परते हैं। जाग्रत कुण्डलिनी ब्रह्मनाड़ी द्वारा ब्रह्मरन्ध्र तक जाकर पुनः लौट आती है। कहा जाता है मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाड़ी में छह कमल पिरोये हुए-से हैं, ये षटचक्र कहे जाते हैं अर्थात छह स्थानों पर नाड़ी की ग्रन्थियां चक्र के समान प्रतीत होने से चक्र कही जाती हैं।

छह चक्र ये हैं—(1) मूलाधार, (2) स्वाधिष्ठान, (3) मणिपूर, (4) अनाहत, (5) विशुद्ध तथा (6) आज्ञा।

षटचक्र-विवरण तथा वेधन-क्रिया

मूलाधार—यह चक्र गुदा स्थान में माना है, यह चतुर्दल कमलयुक्त है। यह रक्तवर्ण है तथा इसका लोक 'भू' माना है। यहां से "व, श, ष, स" इन चार वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहां द्विरण्ड नामक सिद्ध और डाकिनी देवी अधिष्ठात्री तथा गणेश देवता माना है। यहां छह सौ श्वासों का जप माना है।

. धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्नौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्॥ (घेरंड संहिता 1/12)
पीछे 71वें शब्द में भी धौति आदि षटकर्मों का विवरण दिया गया है।

. गुदा एवं शिश्न के बीच का स्थान 'योनि' कहलाता है।

इस मूलाधार चक्र को वेधने के लिए पहले गणेश-क्रिया करके गुदा साफ करते हैं। फिर जलवस्ति करते हैं। नाभि तक डूबे हुए जल में बैठकर उत्कट आसन द्वारा गुदा का आकुंचन-प्रसारन कर जल को ऊपर खींचते हैं। इसी को जलवस्ति कहा जाता है। इस प्रकार तीन बार जल को ऊपर खींचकर छोड़ देने से यह कार्य सिद्ध होता है। तब इस चतुर्दल कमलयुक्त मूलाधारचक्र को वेधकर वायु ऊपर चढ़ाते हैं।

ऊपर जो उत्कट-आसन कहा गया है, उसका लक्षण यह है—पैर के दोनों अंगुष्ठों द्वारा मृतका का स्पर्श करते हुए दोनों गुल्फों (एड़ी के ऊपर की गांठों) को निरालम्ब भाव से रखकर, उन पर गुदाद्वार को स्थापन करने से उत्कटासन कहलाता है। गुदा का मल साफ करने की एक यौगिक क्रिया को गणेश-क्रिया कहते हैं।

स्वाधिष्ठान—यह चक्र नाभि से छह अंगुल नीचे, पेडू स्थान, शिश्न के मूल में माना है। यह छहदल कमलयुक्त है। यह सिन्दूर वर्ण है तथा इसका लोक 'भुवः' है। यहां से "ब, भ, म, य, र, ल" इन छह वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहां वाण नामक सिद्ध और राकिणी देवी अधिष्ठात्री तथा ब्रह्मा देवता माना है। यहां छह हजार श्वासों का जप माना है।

इस स्वाधिष्ठान चक्र को वेधने के लिए गजक्रिया करते हैं। लोह या शीशे का बारह अंगुल का पतला गज बनाकर, शिश्न में प्रवेशकर उसे साफ करते हैं, फिर शिश्न से क्रमशः जल, दूध और शहद खींचते हैं। शहद खींचने पर यह क्रिया सिद्ध होती है। गुदाद्वार से अपान वायु को चढ़ाकर स्वाधिष्ठान चक्र वेधते हुए अपान वायु को समान वायु में मिलाते हैं।

मणिपुर—यह चक्र नाभि स्थान में माना है। यह दशदल कमलयुक्त है। यह नीलवर्ण है तथा इसका लोक 'स्वः' है। यहां से "ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ" वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहां रुद्र नामक सिद्ध और लाकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं विष्णु देवता माना है। यहां भी छह हजार श्वासों का जप माना है।

इस मणिपूर चक्र को वेधने के लिए 'धौति-क्रिया' करते हैं। अर्थात रेशम आदि के कोमल वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी और पन्द्रह हाथ लम्बी धोती को सायंकाल मीठे रस में डुबा देते हैं। उसे प्रातःकाल निगलते (लीलते) हैं। उसका एक कोना पकड़े रहते हैं और खड़े होकर नाभि को पृष्ठभाग में आकुंचन करके पुनः बाहर निकालते हैं। ऐसा तीन बार करने से यह क्रिया सिद्ध होती है। फिर नाभि से वायु उठाकर मणिपूरचक्र वेधते हैं और अपान-समान वायु को हृदयस्थ प्राण वायु में मिलाते हैं।

अनाहत—यह चक्र हृदय स्थान में माना है। यह द्वादश दल कमलयुक्त है। यह अरुणवर्ण है तथा इसका लोक 'महः' है। यहां से "क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ" इन बारह वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहां पिनाकी सिद्ध और काकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं महादेव देवता माना है। यहां भी छह हजार श्वासों का जप माना है।

इस अनाहत चक्र को वेधने के लिए 'कुंजल क्रिया' करते हैं। पेट भर जल पीकर और सवा हाथ रस्सी की दातून को मुख में डालकर चलाते हैं। फिर जल को गिरा देते हैं। इस प्रकार तीन बार करने पर यह क्रिया सिद्ध होती है। फिर अनाहत चक्र वेधते हैं और अपान, समान, प्राण को उठाकर कंठस्थ उदान-वायु में मिलाते हैं।

विशुद्ध—यह चक्र कंठ स्थान में माना है। यह षोडसदल कमलयुक्त है। यह धूम वर्ण है तथा इसका लोक 'जनः' है। यहां से "अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः" इन सोलह स्वरों की उत्पत्ति मानी है। यहां छगलांङ सिद्ध और शाकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं जीवात्मा देवता माना है। यहां एक हजार श्वासों का जप माना है।

इस विशुद्ध चक्र को वेधने के लिए 'लम्बिका योग' करते हैं। इसमें दूध-आहार करते, बोल-चाल-संगत सबका संयम करते, मक्खन और सेंधा नमक से जिह्वा की तली रगड़ते, प्रातःकाल जिह्वा दोहन करते, लोह यन्त्र से भी दोहनकर जिह्वा को बढ़ाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर जिह्वा के नीचे चाम को काट देते हैं, इस प्रकार जिह्वा को बढ़ाकर और उलटकर उर्ध्वद्वार में लगाते हैं। ऊपर खोपड़ी का एक जलीय विकार चूता है, उसे अमृत मानकर पीते हैं, जिससे शरीर में स्फूर्ति बढ़ती है। तब वायु को उठाकर विशुद्ध चक्र को वेधते हैं।

आज्ञा—यह चक्र भृकुटि स्थान (दोनों भौंहों के बीच) में माना है। यह द्विदल कमलयुक्त है। यह श्वेत वर्ण है तथा इसका लोक 'तपः' है। यहां से 'ह, क्ष' इन दो वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहां महाकाल सिद्ध और हाकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं परमात्मा देवता माना है। यहां एक हजार श्वासों का जप माना है।

इस आज्ञाचक्र को वेधने के लिए 'नेति क्रिया' करते हैं। अर्थात नाक में एक बीता बत्ती (सूत्र) चलाकर, उसे साफ करते हैं। फिर कंठस्थ विशुद्ध चक्र से उदान वायु को उठाकर आज्ञाचक्र वेधते हैं। यानी रेचक-पूरक-कुम्भक (प्राणायाम) करके आज्ञाचक्र को वेधकर वायु को ऊपर ले जाते हैं। जब वायु ऊपर पहुंच जाता है, तब जिह्वा को उलटकर ऊर्ध्वद्धार में लगा देते हैं। जिससे वायु लौट न आये।

इस प्रकार षटचक्र एवं तत्र स्थित षट कमलों को वेधकर दशमद्वार सहस्रार (सत्यलोक) में जाकर ज्योति प्रकाश कर देते हैं। अर्थात वहां वायु का निरोध होने से जो अग्नि का प्रकाश होता है, उसी को ब्रह्म का स्वरूप मानकर योगी लोग बेभान होते हैं। इस स्थान का भी एक हजार श्वासों का जप माना है।

मुख्य इन छह चक्रों के अतिरिक्त आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्रार या सहस्रदल कमल माना है और उसके ऊपर भी आठवां सुरति कमल माना है। इस प्रकार कहीं-कहीं अष्टकमल का वर्णन होता है।

इनमें वर्णित सिद्ध, अधिष्ठात्री देवी एवं देवतादि सब कल्पित हैं। वर्णों का उच्चारण भी कंठ, तालू, ओष्ठादि से ही होता है, जो प्रत्यक्ष है। भारतरत्न महामहोपाध्याय डॉ. पांडुरंग वामन काणे 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में तन्त्र सिद्धांत का वर्णन करते हुए लिखते हैं—"चक्रों को बहुधा लोग आधुनिक शरीर-विज्ञान द्वारा प्रदर्शित स्नायुओं के गुच्छों के समान मानते हैं, किन्तु बात वास्तव में वैसी है नहीं। संस्कृत ग्रन्थों में जिस कुंडलिनी एवं चक्रों का वर्णन है, वे स्थूल देह से सम्बन्धित नहीं है, प्रत्युत वे सूक्ष्म-देह में अवस्थित होते हैं।" अब यही सोचिए कि जब ये छह चक्र स्थूल शरीर से सम्बन्धित नहीं हैं तो इनके वेधने की बात भी गलत है। सूक्ष्म-शरीर तो केवल प्राण एवं वासनाओं का पुंज माना जाता है, उसमें चक्र-वक्र का क्या मतलब हो सकता है! वस्तुतः यह श्वास रोकने की प्रक्रिया के अलावा कुछ नहीं है।

इस योगी की चित्तवृत्ति जब सुरति-कमल में पहुंचती है और वहां की ज्योति में लीन हो जाती है तब वहां से कामादि पशु मानो हांक दिये गये। वहां सारी बाह्य वृत्ति समाप्त होकर योगी केवल नाद या ज्योति में ही लीन रहता है।

"गगन मध्ये रोकिन द्वारा, जहाँ दिवस नहिं राती। दास कबीरा जाय पहूँचे, बिछुरे संग औ साथी।" गगनगुफा में योगी जब पहुंचता है और नीचे के द्वार रोककर जब नाद एवं प्रकाश में लीन होता है तब वहां बाहरी संसार से कोई मतलब नहीं रह जाता। वहां न दिन है और न रात। वहां तो एकरस आनन्दमग्नता है। योगी के तत्त्व-प्रकृतिरूपी सारे संगी-साथी वहां पहुंचने के पहले ही छूट गये रहते हैं। वहां वह केवल अकेला होता है। वहां वह मन के द्वंद्व से मुक्त होता है। हठयोगी लोग प्रसुप्त कुंडलिनी-शक्ति को साधना द्वारा जाग्रतकर सहस्र-चक्र में ले जाते हैं। सहस्र-चक्र तक शारीरिक-मानसिक

. दो नाक, दो कान, दो आंख, मुख, गुदा और शिश्न—ये नौ द्वार (बड़े-बड़े छिद्र) हैं और दसवां द्वार सिर के तालु में माना है जहां बच्चों का लप-लप करता है।

. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 5, पृष्ठ 24।

प्रभाव रहता है और समाधि-भंगकाल में वासनाओं का आक्रमण योगी पर हो सकता है, परन्तु कहते हैं कि उसके भी ऊपर जो 'सुरति कमल' है, उसमें पहुंच जाने पर योगी को भय नहीं रहता।

अब हम इस पर थोड़ा विचार कर लें। पहली बात तो उक्त साधना सबके क्या, बहुतों के वश की बात नहीं है। इसमें बहुत बातें काल्पनिक हैं, यह अलग बात है। दूसरी बात हठयोग द्वारा जब तक साधक चाहे आज्ञाचक्र में, चाहे सहस्रार में और चाहे सुरति कमल में, हठयोगी कुछ भी नाम लें, पहुंचकर समाधि में रहेंगे तब तक संसार भूला रहेगा और जैसे ही उससे उतरकर व्यवहार में आयेंगे वैसे पुनः वासनाओं में चंचल हो जायेंगे। अतः विचार, अनासक्ति तथा साक्षी-भाव की साधना ही सरल तथा सुरक्षित है। जड़-चेतन तथा आत्मा-अनात्मा का निरन्तर विचार करते-करते देह तथा देह-सम्बन्धी सारे प्राणी-पदार्थों से अनासक्ति हो जाती है। अनासक्ति के बाद साक्षी-भाव दृढ़ हो जाता है। साधक अभ्यासकाल में मन का साक्षी बनकर उसे शांत कर देता है और संकल्पहीन होकर स्वरूपस्थ एवं आत्मस्थ हो जाता है। जब वह व्यवहार में आता है, तब भी उसका चित्त समस्त दृश्यों से अनासक्त होने से वह असंग होता है और खाते-पीते तथा अपने शरीर का सारा व्यवहार करते हुए भी वह साक्षीभाव में बरतता है। यही संतों का सहजमार्ग, राजमार्ग तथा सुरक्षित पथ है। हठयोगी तो शब्द और ज्योति में लीन होता है जो जड़-भास है। विवेकी सारी आसक्ति तथा संकल्पों को छोड़कर अपने चेतनस्वरूप में लीन होता है जो अपनी आत्मा है। कबीर साहेब ने पहले हठयोग साधा था इसलिए वे उस पर जगह-जगह प्रकाश डालते हैं, परन्तु वे सावधान करते हैं "योगिया के नगर बसो मति कोई" आदि। वे अपना पथ स्वरूपविचार एवं स्वरूपस्थिति ही बताते हैं।

तुम्हारा लक्ष्य बाहर नहीं है

शब्द-88

सावज न होइ भाई सावज न होई, वाकी माँसु भखै सब कोई 1
सावज एक सकल संसारा, अविगति वाकी बाता 2
पेट फारि जो देखिये रे भाई, आहि करेज न आँता 3
ऐसी वाकी माँसु रे भाई, पल पल माँसु बिकाई 4
हाड़ गोड़ ले घूर पवाँरिनि, आगि धुवाँ नहिं खाई 5
शिर सींगी किछुवो नहिं वाके, पूँछ कहाँ वे पावै 6
सब पण्डित मिलि धन्धे परिया, कबिरा बनौरी गावै 7

शब्दार्थ—सावज=साउज, वह जानवर जिसका शिकार किया जाये, लक्ष्य, ब्रह्म। अविगति=अविगत, अज्ञात। घूर=घूरा, कूड़े-कचरे का ढेर। पवाँरिनि=फेंक दिया। आगि धुँवा=ज्ञानाग्नि का चिह्न। धंधे=धंधा, गोरख-धंधा। कबिरा=साधारण मनुष्य। बनौरी=बनाये हुए गीत।

भावार्थ—हे भाई ! वह कोई ऐसा शिकार-जानवर नहीं है जिसे तुम अपना लक्ष्य बनाकर जीवन में सफल हो सको, फिर भी सब लोग उसका मांस खाना चाहते हैं 1 वह ऐसा सर्वप्रिय शिकार एवं लक्ष्य हो गया है जिसकी प्रसिद्धि पूरे संसार में हो गयी है, परन्तु उसका पता-लता कोई नहीं जानता 2 हे भाई ! यदि उसका पेट फाड़कर देखा जाये तो न उसमें कलेजा है और न अंतड़ी। अर्थात वह कुछ नहीं है 3 परन्तु हे भाई ! उसके मांस की मिठास की ऐसी प्रसिद्धि हो गयी है, कि सभी धार्मिक दुकानों पर उसका मांस क्षण-क्षण बिक रहा है 4 विवेकवान तो उसके हाड़-गोड़ सहित उसे कचरे के ढेर में फेंक देते हैं। आग और धुआं भी वह नहीं सह पाता है 5 उसके सिर तथा सींग कुछ भी नहीं है तब उसमें लोग पूंछ कहां पायेंगे 6 परन्तु सभी पंडित मिलकर उसको खोजने के गोरखधंधे में पड़े हैं और साधारण मनुष्य उसके सम्बन्ध में पंडितों के बनाये गीत गाते हैं 7

व्याख्या—मनुष्य की अपनी आत्मा से अलग ब्रह्म की खोज पर यह पूरा शब्द व्यंग्य है। हम भूलवश अपना लक्ष्य, अपना शिकार एक ब्रह्म को मानते हैं और उसे अपनी चेतना से, अपनी आत्मा से अलग समझते हैं। हम उसी पर अपना मन लगाना चाहते हैं। साहेब कहते हैं कि हे भाई ! तुम्हारी अपनी आत्मा से तुम्हारा लक्ष्य अलग नहीं है। परन्तु उस शिकार का मांस सब खाना चाहते हैं। अर्थात सब अपनी आत्मा से अलग ब्रह्म खोजते हैं।

"सावज एक सकल संसारा, अविगति वाकी बाता।" ब्रह्म हमारा शिकार है, लक्ष्य है, यह बात सारी दुनिया में गूंजती है। इस पर बड़ी-बड़ी चर्चाएं होती हैं, भाषण होते हैं, पोथियां लिखी जाती हैं, परन्तु उसका पता-लता किसी को नहीं है। तथागत बुद्ध ने कहा है कि एक आदमी बांस-पर-बांस जोड़ता हुआ लम्बी सीढ़ी बना रहा था। उससे पूछा गया कि इसे कहां लगाओगे? उसने कहा यह तो नहीं जानता हूं, परन्तु बना रहा हूं। हमारी दशा यही है। हम अपने आत्मारूपी परमात्मा को छोड़कर बाहर परमात्मा खोज रहे हैं, परन्तु उसका पता किसी को नहीं है। "अविगति वाकी बाता" उसकी बात सबको अज्ञात है।

"पेट फारि जो देखिये रे भाई, आहि करेज न आँता।" यदि हम उस पर विचार करते हैं, तो हमारे हाथ में कुछ नहीं लगता है। यदि हम पांचों ज्ञानेन्द्रियों से कुछ पाते हैं तो वे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पांच विषय हैं। और

यदि मन से कुछ रूप खड़ा करते हैं तो वह मन का संकल्प-विकल्प मात्र है। इन्द्रिय और मन का व्यापार समाप्त हो जाने पर हमारा बाहर से सम्बन्ध ही कट जाता है, तब रह जाती है स्वचेतन सत्ता मात्र। अतएव स्वचेतन सत्ता एवं अपनी आत्मा को छोड़कर ब्रह्म या ईश्वर खोजना आकाश नापने के समान मिथ्या प्रयास सिद्ध होता है।

"ऐसी वाकी माँसु रे भाई, पल पल माँसु बिकाई।" परन्तु आत्मभिन्न ब्रह्म की चर्चा बहुत है। जिस धार्मिक दुकान पर देखो वहीं उसके दर्शन कराने का झांसा दिया जाता है। ईश्वर के नाम पर धर्म का माल खूब बिकता है। ईश्वर-दर्शन कराने की बात कहो तो तुम्हें लोग घेर लेंगे। तुम्हारी दुकान खूब चलेगी।

"हाड़ गोड़ ले घूर पवाँरिनि, आगि धुवाँ नहिं खाई।" विवेकवान इस कल्पना को रद्दी की टोकरी में डाल देते हैं। मेरी अपनी चेतना, मेरी अपनी आत्मा विद्यमान ही है जो पूर्णकाम, आप्तकाम, अकाम, निष्काम एवं प्राप्तकाम है। इस स्वयं प्रत्यक्ष ब्रह्म को छोड़कर बाहर ब्रह्म खोजने के पचड़े में क्यों पड़ें! जिसको परख-विवेक नहीं होगा वही बाहर ब्रह्म खोजेगा। जिसे परख है, विवेक है, वह तो अपने चेतनस्वरूप में ही स्थित होकर कृतार्थ हो जाता है। स्थिति अपने स्वरूप में ही हो सकती है। बाहरी वस्तु में व्यक्ति की स्थिति नहीं होती। धुआं जहां भी हो वहां आग का होना सिद्ध होता है। अतः धुआं आग का चिह्न है। यहां ज्ञान आग है, उसका लक्षण मानो धुआं है। ज्ञान का थोड़ा लक्षण भी यह कल्पित सावज नहीं सह पाता। अर्थात थोड़ा भी विचार करने पर अपनी आत्मा से अलग परमात्मा नहीं ठहरता।

"शिर सींगी किछुवो नहिं वाके, पूँछ कहाँ वे पावै।" उस सावज के न सिर है न सींग है, फिर उसमें पूंछ कहां मिलेगी? तैत्तिरीय उपनिषद् में आनंदमय कोश का वर्णन करते हुए बताया गया है—"उसका प्रिय ही सिर है, मोद दाहिना पंख या भाग है, प्रमोद बायां पंख या भाग है, आनन्द शरीर का आत्मा (मध्यभाग) है और ब्रह्म पूंछ एवं आधार है।" साहेब कहते हैं कि यह सारा वर्णन भौतिक है। उसमें न सिर है न सींग है, फिर ब्रह्म-पूंछ कहां से मिलेगी।

"सब पण्डित मिलि धन्धे परिया, कबिरा बनौरी गावै।" सभी पण्डित मिलकर उसको सिद्ध करने तथा खोजने के गोरखधन्धे में पड़े हैं और साधारण लोग उनकी कही हुई बातों को दोहरा रहे हैं। पण्डित लोग तो भगवान को एक धन्धा ही बना रखे हैं "बनिज एक सबन मिलि ठाना। नेम धर्म संयम भगवाना।" वे अपनी आत्मा से अलग बाहर ईश्वर का रूप खड़ा करके ही

. तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा। (तैत्तिरीय उपनिषद् 2/5)

. रमैनी 36।

अपना धंधा चला सकते हैं। पंडित पहले ईश्वर का रूप खड़ा करता है, तब वह स्वयं साधारण मनुष्य तथा ईश्वर के बीच में मध्यस्थ बनता है। वह अपनी पूजा-प्रार्थना के बल पर ईश्वर को खुशकर साधारण जनता को भोग और मोक्ष देने का दावा करता है। यदि आत्मा ही परमात्मा है यह बोध हो जाये तो पण्डित का धन्धा बन्द हो जायेगा। इसलिए पण्डित नहीं चाहता कि लोगों को स्वरूपज्ञान एवं आत्मज्ञान हो। वह बाहर ईश्वर की कल्पना खड़ाकर लोगों को अपने मायाजाल में उलझाये रखना चाहता है। कबीर साहेब कहते हैं "राम नाम निजु जानि के, छाड़ि देहु बस्तु खोटि।" राम ऐसा नाम तुम्हारा ही है, यह जानकर खोटी वस्तु बाहर राम खोजना छोड़ दो।

इस पूरे शब्द का भाव यही है कि हमारा शिकार, हमारा लक्ष्य, हमारा उद्देश्य हमारी अपनी आत्मा से अलग नहीं है। अलग खोजना केवल पण्डितों का गोरखधन्धा है या धन्धेबाजी है। यहां पण्डित का अर्थ केवल ब्राह्मण-पंडित नहीं, किन्तु संसार के सभी पुरोहितों की बात है।

जीवन क्षणभंगुर है, शीघ्र भव-बन्धनों से मुक्ति लो

शब्द-89

सुभागे केहि कारण लोभ लागे, रतन जन्म खोयो 1
पूर्वल जन्म भूमि कारण, बीज काहेक बोयो 2
बुन्द से जिन्ह पिण्ड सँजोयो, अग्नि कुण्ड रहाया 3
जब दश मास माता के गर्भे, बहुरी लागल माया 4
बारहु ते पुनि वृद्ध हुआ, होनहार सो हूवा 5
जब यम अइहैं बाँधि चलैं हैं, नैनन भरि भरि रोया 6
जीवन की जनि आशा राखो, काल धरे हैं श्वासा 7
बाजी है संसार कबीरा, चित चेति डारो पासा 8

शब्दार्थ—पूर्वल जन्म=पहले के जन्म। भूमि=आधार। कारण=बीज-वासना। बीज=वासना। बुन्द=वीर्य। पिण्ड=स्थूल शरीर। सँजोयो=संजोना, सजाना, एकत्र करना, पूरा करना, संपादित करना। अग्नि कुण्ड=माता की जठराग्नि। यम=मृत्यु। बाजी=खेल, जुआ का खेल। पासा=चौसर खेल में फेंका जाने वाला वह चौपहला लंबोतरा हड्डी या लकड़ी का बना टुकड़ा जिस पर बिंदियां बनी होती हैं।

भावार्थ—हे सौभाग्यशाली मानव ! किस प्रयोजन से तुम सांसारिक विषयों के प्रलोभन में फंसकर अपने रत्नतुल्य जन्म को खो रहे हो? 1 इस जन्म

. रमैनी साखी 36।

के आधार एवं कारण पहले जन्म के वासना-बीज हैं, अब उन्हीं वासना-बीजों को पुनः क्यों बो रहे हो? 2 जिन वासना-बीजों ने जीव को गर्भ में ले जाकर रज-वीर्य की बूदों से लेकर स्थूल देह का संपादन किया और माता के पेटरूप अग्नि-कुण्ड में उसे पकाता रहा, इस प्रकार दस महीने माता के पेट में रहकर जब पैदा हुआ तब तू मायारूपी उन्हीं विषय-वासनाओं में पुनः फंस गया 3-4 तू धीरे-धीरे बालक से जवान होकर थोड़े दिनों में बूढ़ा हो गया और तेरे अविवेक के कारण जो होना था वह हो गया मोह-माया का बंधन। परन्तु समझ ले, कि जब मृत्यु आयेगी तब तुझे बांधकर ले चलेगी और तू नेत्रों में आंसू भर-भरकर रोयेगा 5-6 इस जिन्दगी के लिए बड़ी लंबी आशा न रखो कि यह बहुत दिनों तक बनी रहेगी। मृत्यु तुम्हारी सांस-डोरी को पकड़कर अपनी ओर निरंतर खींच रही है, आज मरो कि कल 7 हे लोगो, यह समझ लो कि यह जिन्दगी एक जुआ का खेल है; अतः मन में सावधान होकर पासा फेंको "जनम जुआ मत हार" 8

व्याख्या—मानव-शरीर विवेक-साधनसंपन्न है, इसलिए जिस जीव को मानव-शरीर प्राप्त है वह सौभाग्यशाली है। वह विषय-वासनाओं के सारे भवबंधनों को तोड़कर इसी जीवन में कृतार्थ हो सकता है। परन्तु दुख की बात यह है कि वह जहां आकर अपने सारे बंधन काट सकता है वहीं वह नये-नये बंधन बनाता है। मानव-शरीर ज्यादा समझदारी की जगह है। इसलिए यहां बंधन भी बनाये जा सकते हैं तथा बंधन तोड़े भी जा सकते हैं। जीव को दुख इष्ट नहीं है। बंधनों में जीव को दुख मिलते हैं, इसलिए समझदारी की बात यह है कि हम बंधन बनायें न, किन्तु उन्हें समाप्त करें।

सद्गुरु करुणाविगलित होकर कहते हैं कि हे सौभाग्यशाली, तू किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए सांसारिक विषयों के मोह में फंसकर अपना रत्नतुल्य जीवन बरबाद कर रहा है! सपने में मिले हुए इन प्राणी-पदार्थों से तू अपना क्या समाधान चाहता है? जरा ठहरकर सोच, इनसे तुझे क्या मिलने वाला है? जिस मन और इंद्रियों की चंचलता को तू सुख मानता है, वही तेरे गले की फांसी है। संसार के प्राणी-पदार्थों से तुझे केवल मन और इन्द्रियों की खुजलाहट मिल सकती है, जो सारी पीड़ाओं की जननी है। अंत में जीव के साथ कुछ नहीं है। यदि उसने अपने आप को माया-मोह में उलझाया है तो उसके फल में उसे केवल बंधनों की प्राप्ति होती है। यदि हम अपने समय और शक्ति को विषयों की उलझन में लगाते हैं तो रत्नतुल्य जीवन को मानो व्यर्थ में बरबाद कर रहे हैं और व्यर्थ ही नहीं, अपने गले में काल की फांसी लगा रहे हैं।

हमारे इस देह-बंधन के कारण हैं पहले जन्म के संस्कार एवं विषय वासनाएं। यह जीव संसार की वासनाओं में बंधकर ही जन्म-मरण के घटीयंत्र में घूमता है। "पूर्वल जन्म भूमि कारण" आज के हमारे जन्म की भूमिका, आधार एवं कारण पूर्वल-जन्म के कर्म-संस्कार हैं, वासनाएं हैं। साहेब कहते हैं "बीज काहेक बोयो" अब पुनः वही बीज क्यों बो रहे हो? जो वासनाएं तुम्हें जन्म-मरण में भटकाती हैं उन्हीं का संग्रह क्यों कर रहे हो? इस प्रकार कबीर साहेब पुनर्जन्म को दृढ़ता से मान रहे हैं। वे पूर्व भारतीय परंपरानुसार मान रहे हैं कि जीव विषय-वासनाओं में फंसकर जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। जब यह विषय-वासनाओं को सर्वथा छोड़ देता है और अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है तब जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है। व्यवहार में देखा जाता है कि आदमी वहीं जाता है जहां उसकी वासना लगी रहती है। जहां उसकी वासना नहीं, आकर्षण नहीं, वहां वह नहीं जाता। इस प्रमाण से जब जीव सारी वासनाएं छोड़ देता है और सभी प्रकार के मोह समाप्त कर देता है तब उसकी स्थिति अपने आप में हो जाती है। यही छुटकारा है।

"बुन्द से जिन्ह पिण्ड सँजोयो, अग्नि कुण्ड रहाया।" जो बुन्द से पिण्ड बनाने में कारण बनते हैं, जिन कारणों से रज-वीर्य के छोटे कतरे से स्थूल शरीर का निर्माण होता है, वे पूर्वजन्म के कर्म संस्कार हैं, विषय-वासना एवं कर्म-बीज हैं। ये पूर्वजन्म के संस्कार ही मानो गर्भवास में पिंड को संजोते हैं, संवारते एवं संपादित करते हैं। नौ-दस महीने माता की गर्भाग्नि में बच्चे का शरीर पकता है। फिर वह गर्भ से बाहर आता है। बाहर आते ही उसे पुनः माया लग जाती है। वह माता को देखता है। उसमें उसकी ममता बनती है। फिर माता द्वारा धीरे-धीरे संसार के अन्य लोगों का परिचय प्राप्त करता है। माता-पिता, भाई-बंधु द्वारा उसे राग-द्वेष का पाठ पढ़ाया जाता है। मैनावती तथा मदालसा-जैसी माता, उद्दालक-जैसा पिता, याज्ञवल्क्य-जैसा पति, चूडाला-जैसी पत्नी लोगों को कहां मिलते हैं? मैनावती ने अपने पुत्र गोपीचन्द को वैराग्य का उपदेश देकर उसे संन्यासी बना दिया था। मदालसा ने अपने बच्चों को लोरी में ही बताया था कि तुम देह नहीं अमर आत्मा हो, शुद्ध-बुद्ध हो। उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मज्ञान का उपदेश दिया था 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो'। याज्ञवल्क्य ने संन्यास लेने के पूर्व अपनी पत्नी मैत्रेयी को

. बच्चों को सुलाते समय गाने के गीत को 'लोरी' कहते हैं।

. मदालसा, मार्कंडेय पुराण।

. उद्दालक, छांदोग्य उपनिषद्, छठां प्रपाठक।

. याज्ञवल्क्य, बृहदारण्यक उपनिषद्, दूसरा अध्याय, चौथा ब्राह्मण।

आत्मज्ञान दिया था 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः'। चूडाला ने अपने पति शिखध्वज को आत्मज्ञान की तरफ प्रेरित किया था।

संसार के लोग माता, पिता, भाई, भगिनी, भाभी, मित्र सब मिलकर बच्चे को देहाभिमान, संसारासक्ति, माया-मोह एवं विषय-वासना का पाठ पढ़ाते हैं। बचपन से ही मनुष्य की नस-नस में संसारासक्ति का विष व्याप्त होने लगता है। तरुणाई आते-आते वह विषय-वासनाओं में बदहवास हो जाता है। वह भोगों को जीवनलाभ समझता है। वह भोगों के लिए न्याय-अन्याय सब कुछ करने के लिए तैयार रहता है। उसके जीवन में निरंतर गलत आदतें एवं दुर्गुणों का जहर इकट्ठा होता जाता है। फिर प्रौढ़ अवस्था आ जाती है। पत्नी, बच्चे एवं परिवार की चिंता में उसका चित्त चाक बना रहता है। इसी सोच, फिक्र एवं प्रयत्न में उसके दिन बीतते जाते हैं और धीरे-धीरे वह बूढ़ा हो जाता है। "बारहु ते पुनि वृद्ध हुआ, होनहार सो हूवा।" आदमी बालक से देखते-देखते बूढ़ा हो गया। जो उसका होनहार था वह हो गया। उसका क्या होनहार था? संसार की उलझनों में उलझकर अशांत हो जाना। यहां होनहार का मतलब कोई दैवी प्रकोप नहीं है, किन्तु मनुष्य का अपना अज्ञान है।

"जब यम अइहैं बाँधि चलैं हैं, नैनन भरि भरि रोया।" शरीर तथा संसार के मोह में आकंठ डूबे हुए आदमी की जब मौत निकट आती है, तब वह बिलख-बिलखकर रोता है। वह आज तक जिसको अपना मान रखा था वह सब सदैव के लिए छूट रहा है। वह उसी प्रकार व्याकुल हो जाता है जिस प्रकार मछली को पानी में से निकालकर जमीन पर रख दिया गया हो और वह तड़पती हो। मोही मनुष्य इसलिए व्याकुल होता है कि उसने जिसे अपना मान रखा था वह सब छूट रहा है और आध्यात्मिक एवं धार्मिक कमाई न होने से आगे अंधकार है। जिसने भी सांसारिकता में विश्वास किया वह जीवन में धोखा खाया। संसार के मोह में धोखा खाने के अलावा कुछ है ही नहीं। यहां चाहे जितना राज-काज, प्राणी-पदार्थों का संग्रह हो जाये, सबको छोड़कर अकेले जाना है। हम इनमें आसक्त होकर अपने गले की फांसी ही बनाते हैं।

"जीवन की जनि आशा राखो, काल धरे हैं श्वासा।" वैराग्यप्रवर सद्गुरु कबीर हमें सावधान करते हैं कि जिंदगी की आशा मत रखो कि यह अभी बनी रहेगी। इसके जाते देर नहीं लगती। कितने आदमी बिस्तर पर सोते हैं और सोये ही रह जाते हैं। कितने बैठे थे और बैठे रह गये। कितने चलते-चलते गिरकर समाप्त हो जाते हैं। लोहे-लक्कड़ की चीजों की तो कुछ मियाद भी है, इस

. चूडाला, योगवासिष्ठ।

जिन्दगी की तो कुछ भी मियाद नहीं है। तुम्हारी सांसरूपी डोरी को मौत अपने हाथों में पकड़ रखी है। वह हर समय तुम्हें अपनी तरफ खींचती है। तुम उससे भागकर बच नहीं सकते हो। तुम अवधि से ज्यादा रह नहीं सकते हो। अवधि का भी तुम्हें पहले से पता नहीं चल सकता है। अतएव जीने की आशा छोड़ दो। जितने क्षण तुम इस जीवन में हो, वासनाओं के त्याग करने में प्रयत्न करो। जीवन रहते-रहते यहां के सब प्रकार के मोह से मुक्त हो जाओ। देह छोड़ने के पहले संसार के राग-द्वेष छोड़ दो। बंधकर संसार से मत जाओ, किन्तु मुक्त होकर जाओ।

"बाजी है संसारा कबीरा, चित चेति डारो पासा।" हे बंधुओ ! इस संसार में यह जीवन तो जुआ का खेल है। इस खेल में अधिकतम लोग अपनी बाजी हार-हारकर यहां से जाते हैं। जुआ में हारे युधिष्ठिर की-सी दशा यहां सबकी है। कोई बिरला ही यहां से जीतकर जाता है। सद्गुरु कहते हैं "चित चेति डारो पासा।" मन में सावधान होकर पासा फेंको। कुछ जीतने के लिए, पाने के लिए ही तो पासा फेंका जाता है। यहां क्या पाओगे? जरा, सोचो कि तुम्हें संसार से क्या मिलने वाला है? यहां तो जो कुछ मिलता है वह छूट जाता है। यहां बन्धनों का मिलना हार है तथा मोक्ष मिलना जीत है। जो संसार में उलझकर गया वह जीवन-जुआ हार गया और जो सुलझकर, शांत एवं संतुलित होकर गया, वह जीवन-जुआ को जीतकर गया। इसलिए "चित चेति डारो पासा' बहुत सावधान होकर दावं खेलो। यहां बहुत सजग होकर जिंदगी बिताओ। यहां कहीं राग किये तो हार गये, द्वेष किये तो हार गये, काम-क्रोध, मोह, वैर, शोक, संताप में उलझ गये तो हार गये। इस संसार में जीवन की बाजी वही मानो जीत लिया जो मन की समस्त ग्रन्थियों, समस्त वासनाओं को तोड़कर अपने आपा को सबसे मुक्त कर लिया।

इस शब्द में शुरू से ही सद्गुरु ने यही कहा है कि हे सौभाग्यशाली मानव ! तू किस प्रलोभन में पड़कर अपने आपा को संसार में उलझा रहा है ! ये संसार की वासनाएं ही तुम्हें जीवन में तथा जन्मांतरों में नचा रही हैं। इन्हें छोड़ो और सबसे मुक्त हो जाओ।

वीतराग संतपुरुष तथा निजात्मदेव ही उपासनीय हैं

शब्द-90

सन्त महन्तो सुमिरो सोई, जो काल फाँस ते बाँचा होई 1
दत्तात्रेय मर्म नहिं जाना, मिथ्या साधु भुलाना 2
सलिल मथि घृतकै काढ़िन, ताहि समाधि समाना 3

गोरख पवन राखि नहिं जाना, योग युक्ति अनुमाना 4
ऋद्धि सिद्धि संयम बहुतेरा, पारब्रह्म नहिं जाना 5
वसिष्ठ श्रेष्ठ विद्या सम्पूरण, राम ऐसे शिष शाखा 6
जाहि राम को करता कहिये, तिनहुँ को काल राखा 7
हिन्दू कहैं हमहिं लै जारों, तुरुक कहैं हमारो पीर 8
दोऊ आय दीन में झगरैं, ठाढ़े देखैं हंस कबीर 9

शब्दार्थ—काल= समय, वासना। साधु= उत्तम। सलिल= पानी। घृतकै= घृत मानकर। संयम= एक ध्येय वस्तु में धारणा, ध्यान तथा समाधि करना। पारब्रह्म= परब्रह्म, शुद्ध आत्मतत्त्व। दीन= धर्म, मजहब। हंस= विवेकी।

भावार्थ—हे संतो और महंतो ! उसका स्मरण करो जो काल के बंधनों से मुक्त है 1 अवधूत दत्तात्रेय जी उस अविनाशी तत्त्व का रहस्य न जानकर तथा मिथ्या वस्तु को ही उत्तम समझकर भूल गये 2 उन्होंने पानी मथकर घी निकालना चाहा। वे कल्पित वस्तु को सत्य मानकर उसी की समाधि में लीन हुए 3 गोरखनाथ जी महाराज ने प्राणों का निरोध खूब किया, परन्तु वे निजस्वरूप का तथ्य नहीं समझ सके। उन्होंने योग के विषय में काफी युक्तियों का अनुमान किया, किसी ध्येय-वस्तु में धारणा, ध्यान एवं समाधिरूप संयम भी उन्होंने बहुत किया। वे ऋद्धि-सिद्धि पाने के लिए हठयोग के धंधे में लगे रहे, परन्तु शुद्ध आत्मतत्त्व को नहीं समझ सके 4-5 वसिष्ठ श्रेष्ठ विद्वान थे, वे संपूर्ण वेद-विद्या के ज्ञाता थे। उनकी शिष्य-परंपरा में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम-जैसे महापुरुष थे, परन्तु वे वसिष्ठ जी भी जीवन भर केवल धार्मिक तथा राजनैतिक राजगुरु ही बने रह गये, सांसारिकता के ऊपर तथा परमतत्त्व की स्थिति तक नहीं पहुंच सके 6 जिस श्रीराम को लोग जगतकर्ता कहते हैं उन्हें भी मौत ने नहीं रहने दिया और उन्होंने साथियों सहित सरयू में प्रवेशकर अपने जीवन का अंत किया 7 हिन्दू कहते हैं कि हम तो मुरदे को लेकर जलायेंगे और मुसलमान कहते हैं कि अपने पीरों के फरमान से हम मुरदे को गाड़ेंगे। इस प्रकार दोनों छोटी-छोटी बातों को धर्म के मुद्दे बनाकर आपस में झगड़ते हैं। विवेकवान ऐसी बातों को तटस्थ होकर देखते हैं, झगड़े में नहीं पड़ते 8-9

व्याख्या—साहेब संतों और महन्तों दोनों को निर्देश देते हैं कि "सुमिरो सोई, जो काल फाँस ते बाँचा होई।" इस पंक्ति में 'सोई' शब्द महत्त्वपूर्ण है। यह 'सोई' सर्वनाम यहां किसके लिए प्रयुक्त है? जो काल-फांस से बचा हो। काल के दो अर्थ हैं समय तथा वासना। इसी प्रकार सोई के भी दो अर्थ हैं अविनाशी निजस्वरूप चेतन तथा वासनाओं से मुक्त महापुरुष। यह निजस्वरूप चेतन, यह आत्मा अमर है। यह काल-फांस से, समय की सीमा से परे है। यह

तीनों कालों में विद्यमान अजन्मा एवं अविनाशी है। सद्गुरु निर्देश करते हैं कि संत-महंतो ! परिणामी भौतिक पदार्थों का स्मरण एवं चिन्तन छोड़कर अपने अविनाशी चेतनस्वरूप का स्मरण करो। परन्तु इस स्वरूपबोध में स्थित होने के लिए सहारा चाहिए, तो सहारा उन महापुरुषों का लो जो वासना-काल से परे हैं। जिनके मन में राग-द्वेष, ममता-मोह-द्रोह तथा किसी प्रकार मलिनता नहीं है, जो स्वच्छ-चित्त निर्मल संत पुरुष हैं उनकी शरण लो, उनकी सेवा करो, उनका ध्यान करो, उनको समर्पित हो जाओ। वे तुम्हें वासनामुक्त होने में सहयोग करेंगे। सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने भी कहा है—"उन्हीं का चरणोदक लेना ठीक है, उन्हीं का महाप्रसाद लेना ठीक है तथा उन्हीं के नित्य दर्शन करना ठीक है जिनकी उपाधि मिट गयी है, जिसके मन के सारे मोह-शोक बीत गये हैं।"

प्राणी, पदार्थ, सम्मान, प्रतिष्ठा तथा माया के ऐश्वर्यों से सम्पन्न महामंडलेश्वरों, आचार्यों तथा जगद्गुरुओं की तो भीड़ है। इनमें भी राग-द्वेष से पार पुरुष हो सकते हैं। परन्तु साधकों को चाहिए कि वे बड़े-बड़े नामों के चक्कर में न पड़ें, किन्तु जो मन के स्वच्छ संत हैं उनकी शरण लें, उनकी सेवा करें, प्रथम मन-निरोध के लिए उनका ध्यान करें। जो राग-द्वेष में लिपटा हो उसकी उपासना से मन शुद्ध नहीं हो सकता। उसकी उपासना से तो मन और खराब होगा। अतः जो काल-फांस से बचा हो, राग-द्वेष की फांसी से मुक्त हो, ऐसे स्वच्छ संत की शरण, स्मरण, उपासना साधकों के लिए कर्तव्य है। साधु को भी ऐसे संतों की उपासना करनी चाहिए तथा महन्तों को भी। महंत मठ या समाज का प्रबन्धक होता है। उसे उसके गर्व में नहीं पड़ जाना चाहिए। उसका कल्याण भी तभी होगा जब वह वासना एवं राग-द्वेषरूपी काल से छूटे हुए संतों की उपासना करेगा।

निर्मल संतों एवं सद्गुरु से प्रेरणा लेकर अंततः तो निज चेतनस्वरूप में ही स्थित होना होगा। हमारा मन हर समय देह-गेहादि सांसारिक पदार्थों का स्मरण करता है, जो जड़, अनात्म, नाशवान तथा छूटने वाले हैं। इसीलिए हम भवबन्धनों में बंधकर संसार-सागर में बहते रहते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि परिणामी तथा अनात्म वस्तुओं का स्मरण एवं राग छोड़ दो। तुम निरंतर अपने अविनाशी चेतन स्वरूप का स्मरण करो। मैं अजन्मा हूं, अविनाशी हूं, नित्य हूं, अमर हूं, कालातीत हूं—इस भाव में रमण करो। यही शोकमुक्त होने का पथ है, यही जीवन्मुक्ति का मार्ग है। इसके अलावा सब भटकाव है।

. तिनको चरणोदक सही, तिनको महा प्रसाद।
तिनको दर्शन नित्य सही, जिनकी मिटी उपाध॥ (वैराग्य शतक)

दत्तात्रेय जी बहुत बड़े अवधूत हुए। उन्होंने तपस्या की, यह ठीक है, परन्तु उन्होंने अग-जग सारा विश्व अपना स्वरूप मान लिया। उन्होंने जड़-चेतन का विवेक नहीं किया। उनके ख्याल से चेतन भी ब्रह्म, जड़ भी ब्रह्म। 'मैं सबका साक्षी हूं' इस दशा में न रहकर जड़-चेतन एक में मिला दिये। 'मैं सर्वत्र व्याप्त हूं और सारा विश्व मेरा स्वरूप है' यह एक मिथ्या अवधारणा है, परन्तु इसे ही साधु मान लिया गया, "मिथ्या साधु भुलाना"। मिथ्या को उत्तम एवं सत्य समझ लिया गया। यह तो मानो पानी मथकर घी निकालने-जैसी बात हुई। जड़-चेतन एक समझना ही अविद्या है और इस अविद्या को ही यहां ज्ञान मान लिया और इसी भावधारा में समाधि लगायी गयी, इसी भाव में अपना मन लीन किया गया, तो जड़-प्रकृति से छुटकारा कहां हुआ !

महाराज गोरखनाथ जी महान तपस्वी और हठयोगी हुए। उन्होंने प्राणायाम को खूब साधा, हठयोग की नयी-नयी युक्तियां निकालीं, नाद-ज्योति आदि को अपना ध्येय बनाकर उनमें धारणा, ध्यान तथा समाधि रूप संयम किया, इन सबसे ऋद्धि-सिद्धि के भी काफी प्रपंच जुड़े। किसी एक ध्येय में जब धारणा, ध्यान तथा समाधि हो जाती है तब इस एकाग्रता को 'संयम' कहा जाता है। योगदर्शन में बताया गया "पदार्थों के परिणाम में संयम कर लेने से भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल का ज्ञान हो जाता है। शब्द, अर्थ तथा ज्ञान में संयम कर लेने पर सम्पूर्ण प्राणियों की भाषा का ज्ञान हो जाता है। संस्कारों में संयम कर लेने पर पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। शरीर का संयम कर लेने पर योगी अंतर्धान हो जाता है। बलों में संयम कर लेने पर हाथी-जैसा बल हो जाता है। प्रकाश में संयम कर लेने पर देश-विदेश तथा परदे में पड़ी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। सूर्य में संयम कर लेने पर समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है। मूर्धा की ज्योति में संयम कर लेने पर सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। यहां तक कि विभिन्न संयम कर लेने पर योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाता है, पानी-कीचड़ पर चलते हुए भी उसे कुछ स्पर्श नहीं करता, वह आकाश में उड़ता है, वह अपने रूप को छोटा बना लेता है, बड़ा बना लेता है, सर्वज्ञ हो जाता है इत्यादि।" इसके लिए योगदर्शन का तीसरा पाद देखने योग्य है।

उक्त काल्पनिक एवं मायावी बातों में यदि योगी पड़ा रहा तो वह परब्रह्म को कैसे जान सकता है? 'पर' कहते हैं एकदम निराले को। जो तीनों गुणों से अलग है, वह 'पर' है; 'ब्रह्म' कहते हैं श्रेष्ठ को। जो जड़-प्रकृति से एकदम निराला, पृथक एवं श्रेष्ठ है वह निजस्वरूप चेतन ही है। अतएव व्यक्ति की शुद्ध चेतना ही परब्रह्म है। परन्तु ऋद्धि-सिद्धि के चक्कर में पड़ा हुआ एवं नाद तथा ज्योति को अपना लक्ष्य समझने वाला योगी निजस्वरूप का मर्म नहीं जान

सकता। नाद-ज्योति, कल्पित ऋद्धि-सिद्धि आदि सबका त्याग करके ही निज चेतनस्वरूप में स्थिति होती है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वसिष्ठ जी अपनी जगह पर महान हैं। वे वेद-विद्या के सम्पूर्ण ज्ञाता माने जाते हैं, श्रीराम-जैसे महापुरुष उनके शिष्य हैं। वे रघुवंश के धार्मिक पथप्रदर्शक रहे और राजनीति में भी उनकी राय जितनी सुनी जाती थी, वे देते थे। वे राजा दशरथ को यह राय नहीं दे सके थे कि भरत-शत्रुघ्न को बुलाकर श्रीराम का राजतिलक होना चाहिए। सीतानिर्वासन करने के समय श्रीराम ने गुरुमहाराज की राय लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। अतएव वसिष्ठ एक राजघराने के गुरु तथा पुरोहित रहे तथा राजा की राय में 'हां' करने वाले थे और संसारी आदमी थे। संसारासक्ति से अलग होकर निजस्वरूप में स्थिति की बात इन सबसे अलग होती है। वसिष्ठ जी गृहस्थ-गुरु हैं। काल-फांस से बचे हुए गुरु तो विरक्त होते हैं। संत विरक्त गुरु की उपासना करते हैं, गृहस्थ गुरु की नहीं।

यदि श्रीराम को कोई उपासना का विषय बनाये तो उसकी भावना है, वह बना सकता है। परन्तु यह समझना चाहिए कि वे संसार के हर्ता-कर्ता नहीं थे कि उनकी उपासना करने से वे खुश होकर तुम्हें मुक्ति दे देंगे या अपने स्वर्गलोक में बुला लेंगे। वे भी सामान्य मनुष्य की तरह मां-बाप से पैदा होकर एक दिन शरीर त्यागकर चले गये। दूसरी बात वे वासना से भी मुक्त नहीं थे। वे एक राजा थे, बाल-बच्चे वाले गृहस्थ थे और सांसारिकता में लिपटे थे। साधक को तो उपासना का विषय वीतराग को बनाना चाहिए। योगदर्शन कहता है—"वीतरागविषयं वा चित्तम्" अर्थात जिनके राग-द्वेष बीत गये हैं उनका ध्यान करने से मन निर्मल होता है। श्रीराम हमारे पितामह हैं, श्रद्धेय हैं, आदरणीय हैं, यह सब ठीक है; परन्तु साधक की उपासना का विषय तो विरक्त ही बन सकता है। संत गृहस्थ की उपासना नहीं करता, वह विरक्त की उपासना करता है। "सन्त महन्तो सुमिरो सोई, जो काल फाँस ते बाँचा होई।" कोई भी साधक हो, गृहस्थ हो या विरक्त, उसे राग-द्वेष से छूटे हुए विरक्त संत की उपासना करनी चाहिए और अंततः निज अविनाशी स्वरूप चेतन एवं आत्माराम की, न कि श्रीराम की।

साहेब इस शब्द के अन्त में कहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान आदि मजहबी भावना वाले लोग साधारण बातों को धर्म के मुद्दे बना लेते हैं और उन्हीं तुच्छ बातों को लेकर आपस में लड़ते रहते हैं। जैसे हिन्दुओं ने मुरदे को जलाना परम धर्म मान लिया, मुसलमानों ने उसे गाड़ना परम धर्म मान लिया—इन बातों में क्या रखा है! शरीर से जब जीव निकल जाता है तब इसका फुकंत, गड़ंत

. योगदर्शन 1/37।

तथा लुटंत होता है। इसे जला दिया या जमीन में गाड़ दिया या जल या किसी सुनसान में छोड़ दिया जिसे जलजंतु या चील-गीध, सियार-बीग खा गये। जहां जैसी योग्यता हो वहां वैसा कर देना चाहिए। गाड़ने की जगह नहीं है और गाड़ने का हठ किये बैठे हैं, जलाने की सुविधा नहीं है और जलाने का हठ किये बैठे हैं। यह गलत बात है। लाश को ठिकाने लगाना है, जब जैसी सुविधा हो वैसा कर लेना चाहिए। किसी एक रूढ़ि की पूंछ पकड़कर बैठे नहीं रहना चाहिए। कबीर साहेब कहते हैं कि जो हंस है, नीर-क्षीर विवेकी है, वह बड़ी-बड़ी कही जाने वाली बातों में नहीं उलझता, तो इन तुच्छ बातों में क्यों उलझेगा ! वह यह सब तमाशा खड़ा होकर देखता है, वह सबका तटस्थ द्रष्टा रहता है, मध्यस्थ रहता है, किसी की पूंछ पकड़कर रूढ़िवादी नहीं होता।

आशा-तृष्णा-वश सब देहधारी दुखी हैं

शब्द-91

तन धरि सुखिया काहु न देखा, जो देखा सो दुखिया 1
उदय अस्त की बात कहत हैं, सबका किया विवेका 2
बाटे बाटे सब कोइ दुखिया, क्या गिरही बैरागी 3
शुकाचार्य दुख ही के कारण, गर्भहि माया त्यागी 4
योगी जंगम ते अति दुखिया, तापस के दुख दूना 5
आशा तृष्णा सब घट ब्यापी, कोइ महल नहिं सूना 6
साँच कहौं तो सब जग खीजे, झूठ कहा ना जाई 7
कहहिं कबीर तेई भौ दुखिया, जिन्ह यह राह चलाई 8

शब्दार्थ—उदय अस्त= सारा संसार। बाटे बाटे= अपने-अपने क्षेत्र में, अपने-अपने ढंग से। शुकाचार्य= शुकदेव मुनि। जंगम= लिंगायत सम्प्रदाय के लोग, शिवाचारी। तापस= तपस्वी। खीजे= खीजना, कुढ़ना, क्रोध करना।

भावार्थ—मैंने किसी शरीरधारी को सुखी नहीं देखा, जिसे देखा वह दुखी है 1 मैं सारे संसार की बात कहता हूं, मैंने सबका विवेक कर लिया है 2 क्या गृहस्थ और क्या विरक्त अपने-अपने क्षेत्र में तथा अपने-अपने ढंग से सब दुखी हैं 3 इस संसार के दुख को देखकर शुकदेव मुनि बालकपन से ही माया-मोह का त्यागकर वैराग्यवान बन गये थे 4 योगी और शिवाचारी लोग तो अति दुखी हैं और तपस्वियों का दुख तो दूना है 5 क्योंकि सबके हृदय में आशा-तृष्णा व्याप्त है, किसी का दिल-महल इससे खाली नहीं है 6 यदि सत्य कहता हूं तो सारा संसार कुढ़ता है, गुस्सा करता है, परन्तु अपने राम से तो झूठ कहते नहीं बनता 7 कबीर साहेब

कहते हैं कि मूलतः तो वे ही दुखी हुए जिन्होंने ऐसा रास्ता चलाया कि व्यक्ति का सुख, मोक्ष या परमात्मा कहीं बाहर है और उसे पाना है 8

व्याख्या—शरीर बनता ही है असंख्य जड़कणों से मिलकर। उन जड़कणों का स्वभाव ही है परिवर्तनशील। परिवर्तन की धारा पर बैठकर स्थिरता की चाह रखना घोर अज्ञान है। शरीर तो दूसरों की सेवा तथा स्वयं के लिए संयम करने का साधन मात्र है। हम इस असंख्य कणों के विकारी जोड़ शरीर को सत्य तथा अपना स्वरूप मान लेते हैं और चाहते हैं कि यह स्थिर रहे, तो हम दुखी होंगे ही। हमारा शरीर परिवर्तनशील है, साथियों का शरीर परिवर्तनशील है, धन के नाम पर मिले हुए सारे पदार्थ परिवर्तनशील हैं। इतना ही नहीं, हमारा तथा हमारे साथियों का मन भी परिवर्तनशील है। इतनी घोर परिवर्तनशीलता के बीच बैठकर हम उन सबकी एकरस स्थिति चाहते हैं तो हमें दुखी होना ही होगा। जहां सब कुछ बदल रहा हो और मिलकर छूट रहा हो वहां यह आशा करें कि हम जो कुछ चाहें वह होता रहे तथा सारे अनुकूल प्राणी-पदार्थ एक समान बने रहें, घोर प्रमाद है।

विवेक से सब कुछ परिवर्तनशील है ही, इतिहास उठाकर देखो तो पता लगेगा कि बड़े-बड़े कहलाने वालों के जीवन में उनका सब कुछ कितना बदलता रहा। एक चित्रकार ने श्रीराम की चित्रावली बनायी। उसे श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण देखने लगे। जब जनकपुर से बरात लौटकर अयोध्या पहुंचती है चित्र के उस अंश को देखकर श्रीराम आंसू बहाते हुए कहने लगे—"उन दिनों पिताजी जीवित थे, नववधुएं घर में आयी थीं और माताएं इस चिंता में थीं कि हमारे पुत्र कैसे सुखी होंगे; हमारे वे दिन चले गये।" श्रीराम का जन्म, घर-आंगन तथा सरयू तट पर खेलना, मृगया, ताड़कावध, धनुष-यज्ञ, विवाह, राज्याभिषेक की तैयारी का उत्साह, दूसरे ही दिन चौदह वर्ष का दारुण वनवास, घोर जंगलों में चौदह वर्ष तक भटकना, सीता-हरण, रावण से घोर युद्ध, सीता की वापसी का तिरस्कार, पुनः ग्रहण, अयोध्या में आकर राज्याभिषेक, पुरवासियों के अपवाद करने पर पुनः सीता का वननिर्वासन, सीता का पृथ्वी में प्रवेश, श्रीराम का सभी साथियों के सहित सरयू में प्रवेश—कितना भयानक दृश्य ! सर्वाधिक दुखी राम ! इसीलिए दुखभरी कहानी के अर्थ में 'राम कहानी' मुहावरा चल पड़ा। जब कोई बहुत देर तक अपना दुख रोने लगता है तब लोग कहते हैं कि क्या यार ! अपनी रामकहानी सुनाने लगे। महाराज कृष्ण का जीवन देखो, पूरा जीवन उथल-पुथल से भरा। जीवन भर युद्ध, सत्रह बार जरासंध की मथुरा पर चढ़ाई, अंततः कृष्ण का भागकर द्वारका बसाना, महाभारत का दारुण

. जीवत्सु तातपादेशु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः॥ (उत्तर रामचरितम् नाटक, 1/19)

युद्ध और उससे कहीं भयंकर श्रीकृष्ण के परिवार—यादवों का घोर पतन, सबका शराबी होकर आपस में कट मरना, बलराम का समुद्र में प्रवेश तथा वन में व्याध के बाण से श्रीकृष्ण का भी प्राणांत ! इसलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं कि तनधारी किसी को भी सुखी नहीं देखा, सबका विवेक कर लेने के बाद मैं यह बात करता हूं। उदय-अस्त की बात कहता हूं, पूरे संसार की बात कहता हूं।

"बाटे बाटे सब कोइ दुखिया, क्या गिरही बैरागी।" गृहस्थ हो चाहे वैरागी एवं त्यागी संप्रदाय हों अपने-अपने ढंग से सभी दुखी हैं। गृहस्थी झंझटों तथा उलझनों की जगह है ही, परन्तु वैराग्य-मार्ग का वेष-संप्रदाय अपने ढंग से उलझा रहता है। शुद्ध वैराग्य तो सर्वोच्चदशा है। मन में उसके आ जाने पर तो कोई दुख रहता ही नहीं है, परन्तु वैरागी-त्यागी-संन्यासी नाम से फैला हुआ संप्रदाय जहां हजारों-लाखों का झुंड हो गया है, जिनमें अधिकतम केवल त्याग-वेष की औपचारिकता में उलझे हैं, अपने-अपने मतवाद, वेष, मर्यादा, गद्दी-महंती, मूल और शाखा के मिथ्या रगड़े-झगड़े में राग-द्वेष में लिप्त हैं, इनमें कहां शांति है ! मठ-मन्दिर, चेले-चाटी, मान-पूज्यता के लिए तू-तू, मैं-मैं करने वाले इन त्यागी वेषधारियों में कहां शांति है ! बस, सबके दुखों का अपना-अपना ढंग है। गृहस्थ अपने ढंग से दुखी हैं, तथा वेषधारी अपने ढंग से दुखी हैं।

"शुकाचार्य दुखही के कारण, गर्भहि माया त्यागी।" महर्षि वेदव्यास के पुत्र शुकदेव मुनि जब माता के गर्भ में आये तब वे उसी में बारह या सोलह वर्ष इसीलिए रह गये कि संसार में बड़ा दुख है, और जब पैदा हुए तो 'नारबेवार' लेकर जंगल की ओर भाग खड़े हुए और विरक्त हो गये। वस्तुतः गर्भस्थ शिशु अचेत रहता है, उसे कहां ज्ञान होगा कि संसार में पैदा होने पर क्या दुख है और गर्भवास में ही क्या सुख रहा है जिसमें शुकदेव मुनि आनन्द-विहार करते रहे हों। इन सबका अर्थ इतना ही है कि शुकदेव मुनि बारह या सोलह वर्ष की उम्र में ही माता-पिता को छोड़कर विरक्त हो गये। श्रीमद्भागवत में यही लिखा है कि "जिनका अभी यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ था उन शुकदेव को संन्यास लेने के उद्देश्य से जाते हुए देखकर उनके पिता कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने विरहकातर होकर उन्हें बेटा-बेटा कहकर पुकारा। शुकदेव वैराग्य में इतने तन्मय थे कि उन्होंने पिता की बात पर ध्यान भी नहीं दिया, तो वेदव्यास को मानो वृक्षों ने ही उत्तर दिया। ऐसे सबके श्रद्धास्पद शुकदेव मुनि को मैं नमस्कार करता हूं।" यहां है "गर्भहि माया त्यागी" अर्थात वे जन्मजात विरक्त थे। वे अपने पूर्वजन्म

. यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥ (श्रीमद्भागवत 1/2/2)

से वैराग्य के इतने प्रबल संस्कार ले आये थे कि बचपन से ही उनके व्यक्तित्व से वैराग्य टपकता था। वस्तुतः वैराग्य ही दुखों का अन्त कर सकता है। जो सच्चा वैराग्यवान है वही सुखी है। चाहे किसी गृहस्थ के हृदय में या चाहे किसी साधुवेषधारी के हृदय में, वैराग्य अर्थात अनासक्ति की जितनी अधिक मात्रा होगी वह उतना दुखों से मुक्त होगा ! दुखों से पूर्ण मुक्त तो वही होता है जिसके हृदय में पूर्ण वैराग्य है।

"योगी जंगम ते अति दुखिया, तापस के दुख दूना।" योगी ऐसे कम होते हैं जो अपने मनोनिग्रह की साधना में लगें, ज्यादा लोग तो ऐसे होते हैं जो अपने बाह्य आसनों का जनता में प्रदर्शन करते, चमत्कार दिखाते, ऋद्धि-सिद्धि के प्रलोभन में भटकते तथा वेष के बल पर जनता से प्रतिष्ठा पाने के भूखे रहते हैं। जंगमों एवं शिवाचारी आदि अनेक वेष-भगवानों की इन-जैसी अपने-अपने ढंग से दशा रहती है। तपस्वीजन तो आवश्यकता से अधिक अपने शरीर को संताप देने में लगे रहते हैं, घोर उपवास, ठण्डी में जलशयन, गरमी में अग्नितापन, वर्षा में खुले आकाश में निवास, केशलुंचन तथा अन्य नाना कष्ट उठाते रहते हैं। इसलिए इनका दुख दूना समझिए।

खास बात है "आशा तृष्णा सब घट व्यापी, कोई महल नहिं सूना।" जो सबके हृदय में पुत्रैषणा, वित्तैषणा एवं लोकैषणा का राज्य है, सबके मन में किसी-न-किसी प्रकार संसार की आशा-तृष्णा लगी है, यही दुखदायी है। इन्द्रियों के भोग, प्राणी-पदार्थ, मान-प्रतिष्ठा, पूज्यता-सत्कार आदि पाने की आशा-तृष्णा तो दुखदायी हैं ही, परन्तु यदि संसार में अधिक-से-अधिक धर्म, सत्यज्ञान तथा सदाचार की बातें प्रचार कर देने की आशा-तृष्णा है तो यह भी एक पागलपन एवं दुखद ही है। विवेकवान सबका हित चाहता है और शक्ति के अनुसार जनकल्याण का प्रयास करता है, परन्तु वह उसके लिए मन से व्याकुल तथा बेचैन नहीं रहता। वह धर्मप्रचार की आशा-तृष्णा नहीं करता। कोई भी काम किया जाये या वस्तुओं का उपयोग किया जाये, यदि सावधानी न बरती जाये तो उसमें तृष्णा अपना घर बनाती है। अनुकूल खान-पान, वस्तुओं तथा स्थानों के उपयोग में तृष्णा; मान-प्रतिष्ठा एवं पूज्यता में तृष्णा; शिष्य-शाखा, मठ-मन्दिर एवं धन-द्रव्य में तृष्णा; प्रचार-प्रसार में तृष्णा; जन-समूह, भाषण तथा लेखन में तृष्णा। इसी प्रकार दृश्य मात्र में तृष्णा पैदा होती है। यदि हम सावधानी न बरतें तो हर जगह तृष्णा अपना घर बनाती है। अच्छा काम करना ठीक है, परन्तु उसकी भी तृष्णा ठीक नहीं है। सद्गुरु कहते हैं कि यह आशा-तृष्णा सब घट में व्याप्त है। किसी का हृदय-घर इससे बचा नहीं है। इस कथन पर जोर देने का मतलब है कि इससे कोई बिरला बचा होगा। मनुष्य को चाहिए कि वह पहले गलत कामों को छोड़े, संसार के राग-रंग एवं भोगों

को छोड़े और अपने लिए मान-प्रतिष्ठा की भावना का परित्याग करे। वह शुभ काम करने में, जन-कल्याण करने में पहले तृष्णा रखे यह ठीक है, परन्तु आगे चलकर सारी तृष्णाओं का अन्त होना चाहिए। यदि मनुष्य चाहता है कि हमारे सारे दुख दूर हो जायें तो वह अपने मन से शुभाशुभ सारी बातों में लगने वाली आशा-तृष्णा का त्याग करे।

सद्गुरु कहते हैं कि मैं सच्ची बात कहता हूं तो सारा संसार गुस्सा करता है, परन्तु झूठ तो अपने से कहा नहीं जा सकता। गृहस्थ दुखी हैं, वेषधारी दुखी हैं, वे सब क्यों दुखी हैं? क्योंकि वे बाहर से कुछ पाने की आशा-तृष्णा में पड़े हैं। यह सत्य है। इसे सुनकर नाराज होने की कोई बात ही नहीं होनी चाहिए। "कहहिं कबीर तेई भौ दुखिया, जिन्ह यह राह चलाई।" कबीर साहेब कहते हैं कि वही दुखिया हुआ, जिसने यह रास्ता चलाया, जिसने यह रीति निकाली कि बाहर से कुछ मिलकर तृप्ति होगी। भोग-विषय तो जड़ हैं ही, वे बाहरी चीजें हैं ही, परन्तु यदि मोक्ष, परमात्मा, ब्रह्म तथा राम-रहीम भी बाहर से मिलते हैं तो यह दुखदायी रास्ता है। बाहर से तो जो कुछ मिलता है वह भौतिक है, परिवर्तनशील है। वह मिलकर छूट जायेगा। यदि मोक्ष एवं परमात्मा जीव को बाहर से मिलते हैं, तो वे मोक्ष तथा परमात्मा के नाम पर भौतिक वस्तु ही हैं। वस्तुतः मोक्ष एवं परमात्मा आत्मा की कृतार्थ अवस्था का नाम है। वे आत्मा एवं जीव से कोई अलग वस्तु नहीं हैं, परंतु यह बात सुनकर संसार के लोग खीजते हैं। वे विचार नहीं करते, किन्तु सुनी-सुनायी बातों की भावना में बहते हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि भावना से सत्य ऊपर होता है।

संसार के प्राणी-पदार्थों को पाने की आशा-तृष्णा तो हमारी छूटनी ही चाहिए; जीने, करने, भोगने, देखने, सुनने आदि की भी आशा-तृष्णा छूटनी चाहिए। यहां तक कि बाहर से मोक्ष, परमात्मा तथा ब्रह्म पाने की आशा-तृष्णा भी छूट जानी चाहिए। जब सारी आशा-तृष्णाओं का सर्वथा अन्त हो जाता है, तब मन में कोई दुख नहीं रह जाता। यदि मन इस प्रकार दुखरहित हो जाये तो कभी-कभार शरीर में आये हुए रोगजनित दुख जीव को क्षुब्ध नहीं कर सकते। वस्तुतः मन का दुख ही बड़ा दुख है, जिसकी जननी है आशा-तृष्णा। जिनकी सारी आशा-तृष्णाएं छूट गयीं वह परम सुखी हो गया।

मन के पारखी बनो

शब्द-92

ता मन को चीन्हो मोरे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई 1
सनक सनन्दन जैदेव नामा, भक्ति सही मन उनहुँ न जाना 2

अम्बरीष प्रहलाद सुदामा, भक्ति हेतु मन उनहुँ न जाना 3
भरथरि गोरख गोपीचन्दा, ता मन मिलि मिलि कियो अनन्दा 4
जा मन को कोइ जान न भेवा, ता मन मगन भये शुकदेवा 5
शिव सनकादिक नारद शेषा, तनके भीतर मन उनहुँ न पेखा 6
एकल निरंजन सकल शरीरा, तामहँ भ्रमि भ्रमि रहल कबीरा 7

शब्दार्थ—नामा= नामदेव। भेवा= भेद, रहस्य। एकल निरंजन= एक मन। कबीरा= जीव।

भावार्थ—हे मेरे बंधु ! उस मन की पहचान करो जो तुम्हारा संसार से सम्बन्ध कराने में कारण है। इस बात पर विचार करो कि शरीर छूट जाने पर मन कहां लीन होगा? 1 सनक, सनन्दनादि तथा जयदेव, नामदेव आदि महापुरुषों ने भक्ति अवश्य की, परन्तु मन की परख उन्होंने नहीं की 2 अम्बरीष, प्रह्लाद, सुदामा आदि महानुभाव भी अधिक भक्ति-भावना के कारण मन की परख नहीं कर सके 3 भर्तृहरि, गोरखनाथ और गोपीचन्द जैसे योगीजनों ने भी उस मन में मिल-मिलकर आनन्द माना 4 जिस मन का कोई रहस्य न जान सका, उसी मन में मिलकर शुकदेव मुनि भी निमग्न हो गये 5 यहां तक कि शिव, सनकादि, नारद, शेष जी आदि ने भी शरीर के भीतर में रहने वाले मन की परख नहीं की 6 एक मन का जंगल सभी देहधारियों के अन्दर फैला हुआ है और उसी में सब जीव भटक-भटककर उलझ रहे हैं 7

व्याख्या—मन न हो तो जीव का सम्बन्ध जगत से न हो। प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि सुषुप्ति अवस्था में मन लीन हो जाता है तो उस समय जीव को शरीर का भी भान नहीं रहता। इस प्रकार हर आदमी प्रतिदिन चार, छह या आठ घंटे तक नींद में जाकर अपने माने हुए शरीर को भूल जाता है। अतएव चेतन का जड़ से सम्बन्ध कराने में यह मन ही कारण है। मन ही जड़-चेतन में पुल है। जो दोनों को जोड़ता है। बाहर से कुछ भी प्राप्त करने का नक्शा मन बनाता है और मन के खोने के साथ बाहर का नक्शा भी खो जाता है। जीव को बाहर से शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध—इन पांच विषयों के अलावा कुछ भी नहीं मिलता। यदि हम बाहर से मोक्ष एवं ईश्वर का नक्शा बनाते हैं और उन्हें पाना चाहते हैं तो वे भी मन के आयाम से बाहर नहीं होते।

इस शब्द में सद्गुरु कबीर ने बड़े-बड़े नाम लिये हैं और यह बताया है कि वे सब मन के आयाम से बाहर न जा सके। भक्तिभावना में विह्वल लोग किसी देहधारी को जो वर्तमान में है या शरीर छोड़ चुका है भगवान एवं जगत-नियंता मानकर उसके पीछे अपनी सुध-बुध खोये रहते हैं। जो भक्त देहधारी को न

मानकर ऐसे ही कल्पना करते हैं कि एक ऐसा ईश्वर है जो सब जगह व्याप्त है, उसका भी ईश्वर उसकी मान्यता होता है। जब मन शांत हो जाता है उस समय किसी ईश्वर का नक्शा नहीं रह जाता। जयदेव, नामदेव, अम्बरीष, प्रह्लाद, सुदामा, नारद, शेष आदि जितने भी भक्तों के नाम लिये जायें, ये अपने मन में किसी प्रकार के ईश्वर का नक्शा बनाकर उसकी भक्तिभावना में डूबे रहे। यह सच है कि उन्होंने इस प्रकार की भक्ति की, परन्तु वे यह नहीं समझ सके कि हम मन के आयाम, मन के फैलाव के भीतर ही रम रहे हैं। वे मन को परख नहीं सके। वे यह नहीं समझ सके कि हम मन को ही ईश्वर मानकर उसी में रम रहे हैं।

योगी लोग मन से नाद, बिन्दु, ज्योति आदि का नक्शा बनाकर उन्हीं में मग्न होते हैं। ज्ञानी कहलाने वाले लोगों की कल्पना हुई कि मैं सर्वत्र व्याप्त हूं। यह भी एक मन का ही विस्तार है। ईमानदारी से सोचें तो सहज ज्ञात होगा कि 'मैं सर्वत्र व्याप्त हूं'—यह किसी का अपना अनुभव नहीं है, परन्तु अधिसंख्यक ज्ञानी कहलाने वाले ऐसी ही कल्पना करते हैं। अतएव सब मन के नक्शे में ही उलझे रहते हैं। इस प्रकार भक्त, योगी, ज्ञानी आदि सब मन के विस्तार को ही मन का परम आश्रय मान लेते हैं। संसार के कर्म-प्रपंच, विषय-भोग तथा राग-रंग तो मन के विस्तार हैं ही, परन्तु यदि मन का परम विश्रामस्थल भी मन के विस्तार को मान लिया गया, तो मन को परखकर उससे ऊपर उठने की बात ही कहां हुई !

कबीर देव इस शब्द के शुरू ही में कहते हैं—"ता मन को चीन्हो मोरे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई।" यहां साहेब सामान्य मनुष्यों के मन को नहीं कह रहे हैं। यहां भक्त, योगी, ज्ञानी-जैसे परमार्थपरायण के मन की बात कर रहे हैं। शरीर रहते-रहते जहां मन लगा रहता है, शरीर छूटने पर मन वहीं समाता है। यदि व्यक्ति का मन बाहर किसी शुभ या अशुभ नक्शे में लगा है, तो वह आज भी बाहर भटक रहा है, और शरीरांत के बाद भी भटकने की ही स्थिति में रहेगा। परन्तु यदि मन बाहर के सारे नक्शे छोड़कर चेतना एवं आत्मा में लौट आया है, तो भटकने का कोई प्रश्न ही नहीं है। मन जब संकल्प-शून्य हो जाता है, तब कोई नक्शा नहीं रहता। तब केवल आत्मा विद्यमान रहती है एवं ज्ञानस्वरूप मात्र रहता है और गहरी शांति रहती है।

विवेकवान का काम है कि वह मन के सारे नक्शों को खो दे। वस्तुतः जो मन को ही परख-परखकर उसका अभाव करता रहता है, उसके सामने से सारे नक्शे, सारी अवधारणाएं एवं सारी कल्पनाएं खो जाती हैं। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं "ता मन को चीन्हो मोरे भाई" मन को चीन्हो, मन को परखो, तो मन

शून्य हो जायेगा। हम एक विशेष ध्यान की अवस्था में बैठकर मन को परख-परखकर उसे शून्य कर देते हैं यह तो ठीक ही है, परन्तु हमें चाहिए कि अन्य समय में भी, लेटते, उठते, बैठते, खाते-पीते तथा कोई काम करते हुए मन को परखते रहें। मन हमें वर्तमान से हटाकर नये-नये नक्शे में ले जाता है। यदि हम हर समय मन को परखते रहते हैं तो इससे बड़ी और कोई साधना नहीं होगी। साधक को किसी मुक्ति या भगवान का नक्शा नहीं बनाना है, किन्तु मन को परख-परखकर उसे छोड़ते रहना है। मन ही हमें भव में जोड़ता है, मन ही हमें संसार एवं प्रपंचों में मिलाता है। यदि हमने मन को ही परखकर उसे छोड़ने का अभ्यास करना शुरू कर दिया तो मानो हमारे लिए भवसागर ही समाप्त हो गया। हमें बाहर से न मोक्ष पाना है और न कोई भगवान पाना है, हमें केवल अपने मन को देखते रहना है, उसे परख-परखकर अपनी सत्ता, अपनी चेतना को अपनी ओर लौटाते रहना है। इस प्रकार जब हम अपनी सत्ता मन को नहीं देते, तब मन शून्य हो जाता है। मन के शून्य हो जाने पर सारे नक्शे समाप्त हो जाते हैं। फिर तो जीव असंग होकर अपने आप में पूर्ण स्थित हो जाता है। इस स्थिति को पाने के बाद शरीर का अभी कुछ दिन रहना या आज ही उसका छूट जाना उसके लिए बराबर है। जो मन का साक्षी बन जाता है, उसके भवबन्धन का सारा खेल समाप्त हो जाता है। अतएव वह हर समय कृतार्थ है। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं कि शरीर छूटने के पहले मन को परखकर उसे छोड़ दो। समझ लो मन तथा मन के सारे नक्शे झूठे हैं वे चाहे शुभ हों और चाहे अशुभ।

सद्गुरु कहते हैं कि इस तथ्य को न समझकर जीव मन को ही अपना स्वरूप मान लेता है। वह हर क्षण मन के विस्तार ही में डूबा रहता है। वह कहीं अशुभ नक्शे में तथा कहीं शुभ नक्शे में, हर हालत में हर समय मन के नक्शे में ही उलझा रहता है। "एकल निरंजन सकल शरीरा, तामहँ भ्रमि भ्रमि रहल कबीरा।" यहां निरंजन का अर्थ मन है। साहेब कहते हैं कि यह एक मन सब शरीरों में विद्यमान है। यहां एक का मतलब यह नहीं है कि सभी शरीरों में एक ही मन है। वस्तुतः सभी शरीरों में अलग-अलग मन है। तात्पर्य यह है कि हर जीव एक अपने मन के बनाये जंगल एवं भूलभुलैया में भटक-भटककर रह रहा है। हर आदमी अपने मन के जाल में उलझा है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि तुम्हें मन के जाल को तोड़ना है। तुम्हें कुछ पाना नहीं है। कुछ पाने की भावना ही भ्रम है। तुम्हें केवल मन के जाल को तोड़कर मुक्त हो जाना है। मन के साक्षी बन गये, मन के पारखी बन गये, मन को अपने आप से अलग कर दिये, बस कृतार्थ!

सुदामा

ये एक गरीब ब्राह्मण थे। इन्होंने सांदीपनि के आश्रम में रहकर श्रीकृष्ण के साथ विद्याध्ययन किया था। अन्त में श्रीकृष्ण ने इनको धन-धान्यसंपन्न बना दिया था।

भर्तृहरि

ये उज्जैन के राजा थे। इनके छोटे भाई का नाम विक्रमादित्य तथा पत्नी का नाम पिंगला था। ये पिंगला में बहुत आसक्त थे। परन्तु पिंगला घोड़ादरोगा में आसक्त थी। यह भेद खुलने पर भर्तृहरि को वैराग्य हो गया और वे राज-पाट छोड़कर विरक्त हो गये। पीछे विक्रमादित्य को राजगद्दी मिली। भर्तृहरि के तीन ग्रंथ प्रसिद्ध है—शृंगारशतक, नीतिशतक तथा वैराग्यशतक। ये तीनों ग्रंथ संस्कृत-श्लोकों में हैं।

गोपीचन्द

ये महाराज भर्तृहरि के भांजे थे। अपनी माता मैनावती के वैराग्यमय उपदेशों से जागृत होकर राज-पाट छोड़कर इन्होंने वैराग्य ले लिया। इन्होंने प्रसिद्ध योगी जालंधर से दीक्षा ली। दीक्षा के बाद अपनी रानी से प्रथम भिक्षा ग्रहण की। ये वैराग्यवान पुरुष थे। मंगते योगी सारंगी बजाकर इनके जीवन-चरित को गाते हैं।

संसार की विपरीतता

शब्द-93

बाबू ऐसो है संसार तिहारो, इहै कलि ब्यौहारो 1
को अब अनुख सहत प्रतिदिन को, नाहिन रहनि हमारो 2
सुमृति सोहाय सबै कोइ जानै, हृदया तत्त्व न बूझै 3
निर्जिव आगे सर्जिव थापे, लोचन किछउ न सूझै 4
तजि अमृत विष काहेक अँचवै, गाँठी बाँधिन खोटा 5
चोरन दीन्हों पाट सिंहासन, साहुन से भौ ओटा 6
कहहिं कबीर झूठे मिलि झूठा, ठग ही ठग ब्यौहारा 7
तीनि लोक भरपूरि रहा है, नाहीं है पतियारा 8

शब्दार्थ—कलि= कलिकाल, पापबुद्धि। अनुख= झंझट, खुराफात। रहनि= रहना। सुमृति= स्मृतियां, धर्मशास्त्र। सोहाय= अच्छा लगता है। तत्त्व= सचाई। निर्जिव= मिट्टी-पत्थर के देवी-देवता। सर्जिव= सजीव देह-धारी। थापे= वध करते। अँचवै= आचमन, पीना। खोटा= असत्य, बुरा। चोरन= वंचक गुरुआ। साहुन= विवेकी संत। ओटा= मुख छिपाना।

भावार्थ—हे बाबू ! तुम्हारी दुनिया बड़ी अजीब है। यहां तो सर्वत्र पापबुद्धि का व्यवहार हो रहा है 1 तुम लोगों के बीच में रोज-रोज की खुराफात कौन सहे! यहां तो हमें अपने रहने लायक नहीं लगता 2 स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों की हिंसा-विधायक बातें सबको अच्छी लगती हैं। ये लोग हृदय से सच्चाई को नहीं समझना चाहते 3 ये बेजान जड़ देवी-देवताओं के सामने पूजा तथा यज्ञ के नाम पर जीवधारी पशु-पक्षियों की हत्या करते हैं। इनकी आंखों से कुछ नहीं सूझता 4 ये अमृत को त्यागकर जहर क्यों पीते हैं और सत्य को त्यागकर अपनी गांठ में बुरी वस्तु क्यों बांधते हैं! 5 ये लोग छलने वाले वंचक गुरुओं का आदरकर उन्हें पाटला और सिंहासन देते हैं और विवेकी संतों से अपने मुख छिपाते हैं 6 कबीर साहेब कहते हैं कि झूठे लोग झूठों से मिल रहे हैं तथा ठग लोग ठगों से मिलकर ठग-विद्या का व्यवहार कर रहे हैं 7 सारे संसार में तो भ्रांति ही भरी है। ये सत्य पर विश्वास करने वाले नहीं हैं 8

व्याख्या—"बाबू ऐसो है संसार तिहारो, इहै कलि ब्यौहारो।" क्षत्रियों को, पढ़े-लिखे लोगों को या आदरणीय लोगों को 'बाबू' कहा जाता है। प्यार से छोटों को भी बाबू कहा जाता है। शायद कुछ पढ़े-लिखे लोग जिनमें ब्राह्मण कहलाने वाले भी रहे हों, कबीर साहेब के पास आये हों और उन्हें संबोधित कर उन्होंने कहा हो कि हे बाबू ! तुम्हारा संसार ऐसा ही है। तुम लोगों का जगत बड़ा विचित्र है। मैं तो मानता हूं कि जो तुम लोग धर्म के नाम पर निर्दयता का तांडव करते हो यही कलि-व्यवहार है। कलि और कुछ नहीं है, किन्तु तुम लोगों का व्यवहार ही कलि हो गया है।

"को अब अनुख सहत प्रतिदिन को, नाहिन रहनि हमारो।" तुम लोगों के बीच में रहकर कौन रोज-रोज झंझट सहे। तुम लोगों के बीच में हमें रहने लायक नहीं है। मानसिक दुर्बलतावश लोग जो गलत आचरण करते हैं वह तो गलत है ही, धर्म का नाम लेकर बड़ा-बड़ा पाप होता है और इसे देखकर मन को बड़ा कष्ट होता है। 'अनुख' के अर्थ झंझट, खुराफात या दुख होते हैं। हत्या तो किसी प्रकार भी उचित नहीं है। परन्तु धर्म का नाम लेकर हत्या करना बड़े दुख की बात है।

"सुमृति सोहाय सबै कोइ जानै, हृदया तत्त्व न बूझै।" सुमृति स्मृति का अपभ्रंश शब्द है। अतएव सुमृति का अर्थ स्मृति है। स्मृति कहते हैं धर्मशास्त्र को। धर्मशास्त्रों में यज्ञ में तथा जड़ देवी-देवताओं के सामने पशु-पक्षियों का वध करने-कराने का विस्तृत विधान है। साहेब कहते हैं कि ये बातें लोगों को बड़ी अच्छी लगती हैं, परन्तु वे हृदय से सच्चाई नहीं समझते कि जीव-हत्या

महापाप है। यह एक विचित्र बात है कि पुराकाल से यज्ञ, देवपूजन तथा अतिथि-सत्कार के नाम पर घोड़ों, बैलों, सांड़ों, गायों, भेड़ों, बकरियों आदि की बलि चढ़ाकर उनके मांस खाने का विधान किया था। वसिष्ठ धर्मसूत्र ने तो यहां तक कह डाला कि श्राद्ध या देवपूजनों में मारे गये पशु का मांस यदि यति को दिया जाये और वह न खाये तो उसे असंख्य वर्षों तक नरक में रहना पड़ता है। मनु ने तो उसे इक्कीस जन्मों तक ही नरक में रहना बताया जो श्राद्ध तथा मधुपर्क के मांस को नहीं खाता। मनु ने कहा—"ब्राह्मण यज्ञ के लिए तथा रक्षणीय परिवारों की रक्षा के लिए पशु-पक्षियों का वध करे, ऐसा अगस्त्य ऋषि ने पहले से किया था।"

कबीर साहेब के जमाने में ब्राह्मण तथा अन्य द्विजाति लोग ये सारे उदाहरण दे-देकर यज्ञ एवं देवपूजन के नाम पर जीव-हत्या करते थे तथा मांस-भक्षण करते थे। धीरे-धीरे गाय एक उपयोगी जानवर सिद्ध होने से वैदिक युग में ही उसे आगे चलकर अघन्या (न मारने योग्य) घोषित कर दिया गया था। पहले दूध देने वाली गायों का वर्जन हुआ, फिर सभी गायों का। मनुस्मृति में जीव-हत्या तथा मांसभक्षण के त्याग की भी बात बतायी गयी। वेदव्यास को खिन्न देखकर नारद उनसे कहते हैं—"संसारी लोग स्वभाव से ही विषयों में फंसे हुए हैं। धर्म के नाम पर आपने उन्हें निंदित (पशुहिंसायुक्त) सकाम-कर्म करने की भी आज्ञा दे दी है, यह बहुत ही उलटी बात हुई; क्योंकि मूर्ख लोग आपके वचनों से पूर्वोक्त निंदित कर्म को ही धर्म मानकर 'यही मुख्य धर्म है' ऐसा निश्चय करके उसका निषेध करने वाले वचनों को ठीक नहीं मानते।"

. ऋग्वेद 10/86/14; 10/27/2; 10/79/6; 10/91/14; 8/43/11; तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/9/8; शतपथ ब्राह्मण 3/1/2/21; ऐतरेय ब्राह्मण 6/8; वेदांत सूत्र 3/1/25; बृहदारण्यक उपनिषद् 6/4/18; शतपथ ब्राह्मण 11/7/1/3; आपस्तंब धर्मसूत्र 2/7/16/25; आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/24/22-26; वसिष्ठ धर्मसूत्र 4/8; हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र 2/15/1; बौधायन गृह्यसूत्र 2/5; बैखानस 4/3; आश्वलायन गृह्यसूत्र 4/9-10; गौतम 17/27/31; याज्ञवल्क्य 1/177; विष्णुधर्मसूत्र 51/6; वाल्मीकीय रामायण किष्किंधाकांड 17/39; मार्कंडेय पुराण 35/2-4। धर्मशास्त्र का इतिहास 1/420-422।

. वसिष्ठ धर्मसूत्र 11/34; धर्मशास्त्र का इतिहास 1/422।

. मनुस्मृति 5/35।

. यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा॥ (मनुस्मृति 5/22)

. ऋग्वेद 1/164/27-40; 4/1/6; 5/83/8 8/69/21; 10/87/16। धर्मशास्त्र का इतिहास 1/420।

. मनुस्मृति, अध्याय 5, श्लोक 48, 49, 50, 51, 55।

. जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः॥
(भागवत 1/5/15, टीका गीताप्रेस)

भारतीय परंपरा की यह विशेषता है कि वह विचारक होती है। यदि देश, काल तथा ज्ञान के कारण पहले के आचरण अब उचित न लगते हों तो उन्हें त्यागने में वह हिचक नहीं करती। मुसलमानों में ईश्वर के नाम पर पशुवध करना आज भी बंद न हो सका। मक्का में पर्व के दिन आज भी लाखों जानवर काट डाले जाते हैं। भारत में बकरीद के दिन लाखों पशु मेहरबान ईश्वर के नाम पर बड़ी बेरहमी के साथ मौत के घाट उतार दिये जाते हैं; परन्तु ब्राह्मण परंपरा में जिनके शास्त्रों में पशुवध का घोर विधान है, उसे वे करीब-करीब छोड़ चुके हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से तो 'कलिवर्ज्य' की सूचियां बनने लगी थीं कि कलिकाल में क्या-क्या त्यागने योग्य है। डॉ. पांडुरंग वामन काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में कलिवर्ज्य की सूची में 55 विषय रखे हैं जो धर्मशास्त्रों से संकलित हैं। उन्होंने कलिवर्ज्य के लम्बे अध्याय के अन्त में लिखा है—

"उपर्युक्त कलिवर्ज्य संबंधी विवेचन उन लोगों का मुंहतोड़ जवाब है जो 'अप्रगतिशीलपूर्व' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। प्राचीनकाल के अत्यधिक स्थिर समाजों के अंतर्गत भी सामाजिक भावनाओं एवं आचारों में पर्याप्त गंभीर परिवर्तन होते रहे हैं। बहुत-से ऐसे आचार एवं व्यवहार, जिनके पीछे पवित्र वेदों (जो स्वयमुद्भूत एवं अमर माने गये हैं) का आधार था, और जिनके पीछे आपस्तंब, मनु एवं याज्ञवल्क्य की स्मृतियों की प्रामाणिकता थी, वे या तो त्याज्य ठहराये गये या प्रचलित मनोभावों के कारण गर्हित माने गये। महान विचारकों ने कलियुग के लिए ऐसी व्यवस्थाएं प्रचलित कीं जिनके फलस्वरूप धार्मिक आचार-विचारों एवं नैतिकता संबंधी भावनाओं में यथोचित परिवर्तन किया जा सका। कलिवर्ज्य वचनों ने ऐसे लोगों को भी पूर्ण उत्तर दिया जो धर्म (विशेषतः आचार धर्म) को अपरिवर्तनीय एवं निर्विकार मानते रहे हैं। इस अध्याय के विवेचन से पाठकों को लगा होगा कि वेद एवं प्राचीन ऋषियों तथा व्यवहार-प्रतिपादकों के अत्यंत प्रामाणिक सिद्धांत अलग रख दिये गये, क्योंकि वे प्रचलित विचारों के विरोध में पड़ते थे। जो महानुभाव भारतीय समाज से संबंध रखने वाले विवाह व उत्तराधिकार आदि विषयों में सुधार करना चाहते हैं, उन्हें इस अध्याय में उल्लिखित बातें प्रेरणा देंगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। हमने यह देख लिया है कि कलिवर्ज्य उक्तियों के रहते हुए भी आज बहुत-से घोर और घृणित आचार हमारे समाज में अभी तक घुन की तरह पड़े हुए हैं, यथा मातुल-कन्या-विवाह, संन्यास, अग्निहोत्र और श्रौत पशुयज्ञ। यद्यपि ये अब उतने प्रचलित नहीं हैं।"

. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृ. 1009।

कबीर साहेब के काल से दो-तीन सौ वर्ष पहले से ही कुछ पंडितों द्वारा कलिवर्ज्य के सिद्धांत को लेकर धर्म के नाम पर काटे जाने वाले पशु-पक्षियों पर दया दिखाई जाने लगी थी, परंतु भ्रांत और मांसभक्षण के लोभी पंडितों और जनता ने उसे काफी चालू रखा था। कबीर साहेब के समय में पुराने धर्मशास्त्रों के प्रमाण दे-देकर लोग देवपूजन एवं यज्ञ के नाम पर पशु काट-काटकर खा रहे थे। इन्हीं सब बातों से करुणाविगलित होकर उन्होंने कहा कि हे बाबू ! तुम्हारी दुनिया विचित्र है। यह संसार तो हम-जैसे लोगों को रहने लायक ही नहीं है। यहां तो स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों के हिंसा-मांसाहारपरक उदाहरण ही लोगों को अच्छे लगते हैं। इनके हृदय में सच्चाई का ज्ञान तो होता ही नहीं है कि जीव-हत्या धर्म कैसे हुई ! वे कैसे ईश्वर या देवी-देवता हैं जो निर्दोष मूक प्राणियों की हत्या करने से खुश होते हैं। देवी-देवता तो निर्जीव मिट्टी-पत्थर की पिंडी हैं और उनके सामने जीवधारी की हत्या कर देना यह तो मानो भीतर-बाहर की चारों आंखों का फूट जाना है। इस निर्दयता का तांडव अभी भारत आजाद होने के पहले तक अनेक ब्राह्मण कहलाने वालों के घरों तक में भी होता रहा। आज भी भारत में यत्र-तत्र यह चल रहा है और बिहार तथा विशेषतः बंगाल एवं उड़ीसा में देवपूजन में जीववध तथा मांसाहार कम नहीं हैं। ये पंक्तियां जहां कलकत्ता के न्यू अलीपुर में बैठकर लिखी जा रही हैं, पास के काली-मंदिर में अभी भी दयामूर्ति माता काली की पूजा में रक्त की नालियां बहती हैं। इस विज्ञान युग में जंगलीयुग कहां समाप्त हुआ है ! भारत से लगे हुए विश्व में एकमात्र हिन्दूराष्ट्र नेपाल में देवपूजन में घोर जीववध होता है। श्री निर्मल साहेब ने ठीक ही कहा है—"जड़ के पुजारी चेतन का लोचन फुटा है। रंचक न दया-धर्म दुनिया को लुटा है।"

"तजि अमृत विष काहेक अँचवै, गाँठी बाँधिन खोटा। चोरन दीन्हों पाट सिंहासन, साहुन से भौ ओटा।" साहेब कहते हैं कि ये धार्मिक कहलाने वाले लोग अमृत को छोड़कर जहर क्यों पीते हैं ! दया अमृत है, अहिंसा अमृत है, उसे छोड़कर हिंसा और हत्या जो जहर है उसे क्यों स्वीकार कर रहे हैं ! दूसरों को पीड़ा देने से पीड़ा मिलेगी यह प्रकृति का विधान है। पीड़ा हमारे लिए जहर है, तो दूसरों के लिए भी जहर है। आत्मदेव ही सच्चा देव है इसे भूलकर मिट्टी-पत्थर की पिंडियों को देवता मानकर मानो सत्य को त्यागकर खोटा सौदा अपने पल्ले बांध रहे हैं।

जीववध को धर्म बताकर हिंसारूपी कुकृत्य करना-कराना मानो झूठे और ठगों का परस्पर मिलकर असत्य और ठगाई का व्यवहार करना है। धर्म के नाम पर सब जगह तो धांधलेबाजी चल रही है। सही बातों को समझने तथा उस पर विश्वास करने वाले कम लोग हैं।

बाहर ब्रह्म की कल्पना में क्यों भटकते हो?

शब्द-94

कहो हो निरंजन कौने बानी 1

हाथ पाँव मुख श्रवण जिभ्या नहिं, का कहि जपहु हो प्रानी 2
ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये, ज्योति कौन सहिदानी 3
ज्योतिहि ज्योति ज्योति दै मारै, तब कहु ज्योति कहाँ समानी 4
चार वेद ब्रह्मा जो कहिया, उनहुँ न या गति जानी 5
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, बूझो पण्डित ज्ञानी 6

शब्दार्थ—निरंजन=निर्गुण ब्रह्म। बानी=वाणी, वर्ण, चमक, स्वरूप। सहिदानी=निशान, पहचान। दै मारै=समस्त सृष्टि का प्रलय होना। गति=दशा।

भावार्थ—कहो हे भाई! निर्गुण ब्रह्म का क्या स्वरूप है? 1 कहते हो कि उसके हाथ, पैर, मुख, कान, जीभ आदि कुछ नहीं है, उसका कोई आकार नहीं है, तब हे मनुष्यो! क्या नाम लेकर उसका जप करते हो? 2 यदि कहो कि वह केवल ज्योतिस्वरूप है और चांद, सितारे, सूर्य आदि समस्त ज्योतियों का कारण है, तो चांद-सितारे आदि तो दिखते हैं, परन्तु तुम्हारी ब्रह्म-ज्योति की क्या पहचान है? 3 तुम कहते हो कि चांद-सितारे आदि सारी ज्योतियां प्रलयकाल में ब्रह्मज्योति में मिल जाती हैं; परंतु थोड़ा विचार करो कि तुम्हारी मानी हुई ज्ञानस्वरूप ब्रह्मज्योति में ये भौतिक ज्योतियां कैसे समा जायेंगी? 4 जिस ब्रह्मा ने चारों वेदों का व्याख्यान किया है, वे भी इस झमेले को नहीं समझ सके 5 कबीर साहेब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, ब्रह्मज्ञान का दावा करने वाले इन पंडित-ज्ञानियों से इसके विषय में पूछो। अथवा कबीर साहेब सन्तों को तो केवल अपनी बातें सुना देते हैं जिन्हें संत पहले से ही जानते हैं, परन्तु वे पंडित तथा ज्ञानियों को राय देते हैं कि तुम लोग विनम्रतापूर्वक इस विषय को संतों से समझने का प्रयास करो 6

व्याख्या—कबीर साहेब धार्मिक क्षेत्र में एक क्रांतिकारी पुरुष हैं। वे हर बात पर तर्क की कसौटी लगाते हैं। अपनी आत्मा से अलग ब्रह्म की कल्पना कर हम भ्रम पैदा करते हैं। लोग कहते हैं कि हमारी आत्मा से अलग एक ब्रह्म है। वह निर्गुण है; निराकार है; मन, बुद्धि, वाणी से परे है। प्रश्न होता है कि जब वह हमारी आत्मा से अलग है और मन, बुद्धि, वाणी से भी परे है तब उससे हमारा सम्बन्ध होना ही असम्भव है। कहा जाता है कि वह अनुभव से जाना जाता है, परन्तु अनुभव में तो वही आता है जो मन, बुद्धि, वाणी में आये।

जिसे हम अपनी इन्द्रियों तथा मन से कभी नहीं ग्रहण कर सकते, उसका हमें कभी अनुभव नहीं हो सकता। इसलिए कबीर साहेब ब्रह्मज्ञानियों पर व्यंग्य करते हुए उनसे पूछते हैं कि कहो हो ब्रह्मज्ञानी ! निर्गुणब्रह्म किस रूप में है या उसका किस वाणी में वर्णन करते हो? जिसके हाथ-पैर आदि कोई चिह्न नहीं है, जिससे आज तक तुम मुलाकात नहीं कर सके हो, जिसे देख नहीं सके हो, जान नहीं सके हो, क्या कहकर उसका जप करते हो?

"ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये, ज्योति कौन सहिदानी।" ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि वह तो केवल ज्योतिस्वरूप है। वे यह भी कहते हैं कि संसार की सारी ज्योतियां उसी से पैदा हुई हैं। ये सितारे, ये चांद-सूरज सब ब्रह्मज्योति के कार्य हैं। ब्रह्म इन सबका कारण है। परन्तु यह बात अजीब है ! जो तुच्छ कार्य है वह तो दिखता है और जो महान कारण है वह दिखता ही नहीं। श्री निर्मल साहेब की भाषा में कहें तो कहना होगा "लहर दीख पड़ती समुंदर न दिखते। ऐसे अचम्भों को वेदों में लिखते " लहर तो दिखाई दे और समुद्र न दिखाई दे यह बात कैसे समझ में आवे? सूरज-सितारे आदि की ज्योति दिखाई दे, जो तुच्छ कार्य हैं और जो इन सबका कारण बड़ी ज्योति ब्रह्म है वह दिखाई ही न दे, तो उस पर कैसे विश्वास किया जाये ! फिर तुम्हारी ब्रह्मज्योति की क्या पहचान है? उसे किस चिह्न से जाना जाये?

"ज्योतिहि ज्योति ज्योति दै मारै, तब कहु ज्योति कहाँ समानी।" कबीर साहेब कहते हैं कि तुम्हारे कथनानुसार जब ब्रह्म सारी ज्योतियों को 'दे मारेगा' अर्थात जब वह सबका प्रलय कर देगा तब ये ज्योतियां कहां समायेंगी, किसमें लीन होंगी? ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि एक दिन महाप्रलय होता है, उस समय सारा संसार ब्रह्म में लीन हो जाता है। साहेब कहते हैं कि तुम ब्रह्म को ज्ञानज्योति कहते हो और सूरज-सितारे आदि जड़-ज्योति हैं, तो जड़ एवं भौतिक जगत चेतन एवं अभौतिक तत्त्व में कैसे लीन हो जायेगा? वस्तुतः न चेतन जड़ में लीन हो सकता है और न जड़ चेतन में। जड़ और चेतन एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं एवं दोनों अपने में मौलिक पदार्थ हैं। चेतन साक्षी, द्रष्टा एवं ज्ञाता है और जड़ साक्ष्य, दृश्य एवं ज्ञेय है, तो दोनों एक कैसे हो जायेंगे?

इसके बाद कबीर साहेब बहुत बड़ी चुनौती देते हैं "चार वेद ब्रह्मा जो कहिया, उनहुँ न या गति जानी।" वेद अनेक ऋषियों की रचनाएं हैं, परन्तु यह विश्वास है कि ब्रह्मा सबके ज्ञाता थे। साहेब कहते हैं कि जिस ब्रह्मा ने चारों वेदों का व्याख्यान किया है, वह ब्रह्मा भी ब्रह्म के विषय में कुछ नहीं जानता। आत्म-भिन्न ब्रह्म की तो लोग केवल कल्पना करते आये हैं। अतएव वह केवल

अनुमान एवं कल्पना का विषय है, अनुभव का विषय नहीं। अनुभव का विषय तो निज चेतनस्वरूप एवं आत्माराम है।

"कहहिं कबीर सुनो तो सन्तो, बूझो पण्डित ज्ञानी।" साहेब कहते हैं कि पण्डितों और ज्ञानियों को बड़ा घमण्ड है कि हम ब्रह्म को जानते हैं। वे उसके विषय में बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें करते रहते हैं। इसलिए इनसे पूछना चाहिए कि आप लोग उस ब्रह्म को किस साधन से जाने हैं? जानने के साधन तो सबके पास केवल मन और इन्द्रियां हैं और उनसे वह जाना नहीं जा सकता, फिर उसे वे कैसे जान गये? इसलिए केन उपनिषद् का ऋषि लिखता है कि ब्रह्म को जो नहीं जानता वही जानता है तथा जो जानता है वह नहीं जानता; क्योंकि वह जानने वालों के लिए अज्ञात है और नहीं जानने वालों के लिए ज्ञात है। अर्थात वह जाना ही नहीं जा सकता।

"कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, बूझो पंडित ज्ञानी।" इस पंक्ति को हम इस ढंग से भी समझ सकते हैं कि हे संतो ! सुनो और हे पंडितो तथा ज्ञानियो ! तुम समझने का प्रयत्न करो। अर्थात संत तो समझते हैं कि ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, खुदा, गॉड चाहे जितने परमार्थ तत्त्व के नाम लिये जायें उनकी चरितार्थता व्यक्ति की अपनी चेतना में ही है। यह जीव, यह आत्माराम ही परमात्मा है। परन्तु पंडित-ज्ञानी लोग अपनी आत्मा की सुधि भुलाकर बाहर ब्रह्म खोज रहे हैं, अतएव कबीर साहेब उनसे कहते हैं कि हे पंडितो तथा ज्ञानियो ! तुम लोग विनम्र होकर संतों की सेवा, सत्संग आदि करके ब्रह्म को समझने की चेष्टा करो।

यदि हम जड़-प्रकृति को उसके अपने अन्तर्निहित गुण-धर्मों से संपन्न स्वतन्त्र समझ पाते तो उसको चलाने के लिए हमें एक असमीक्षात्मक ब्रह्म की कल्पना न करनी पड़ती। ये चांद-सूरज, ये असंख्य तारे तथा विश्व-ब्रह्मांड अपने गुण-धर्मों से चल रहे हैं। ये जिन गुण-धर्मों से चल रहे हैं वे इनमें अन्तर्निहित हैं, स्वभावसिद्ध हैं। सारे संसार का कभी प्रलय नहीं होता, किन्तु सब समय यह संसार परिवर्तनशील बना रहता है। यह संसार किसी निराकार निर्गुण चेतन का कार्य नहीं है, किन्तु यह स्वयं सत्य जड़-पदार्थ है। इसे कोई ब्रह्म चला नहीं रहा है, किन्तु यह स्वतः चल रहा है। इस जड़ प्रकृति से सर्वथा अलग असंख्य चेतन हैं, जो ज्ञानस्वरूप हैं। व्यक्ति का आत्मस्वरूप ही ब्रह्म है, राम है। इससे अलग कहीं ब्रह्म नहीं मिलेगा।

. यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥ (केन उपनिषद् 2/3)

जग की उलटी रीति

शब्द-95

को अस करे नगर कोटवलिया, माँसु फैलाय गिद्ध रखवरिया 1
मूस भौ नाव मंजारि कँड़िहरिया, सोवै दादुर सर्प पहरिया 2
बैल बियाय गाय भइ बंझा, बछरू दुहिये तिन-तिन संझा 3
नित उठि सिंह सियार सों जूझै, कबिरा का पद जन बिरला बूझै 4

शब्दार्थ—कोटवलिया= कोतवाल का काम, रक्षा। माँसु= भोग। गिद्ध= मन-इन्द्रियां। मूस= जीव। मंजारि= बिल्ली, माया। कँड़िहरिया= कड़िहार का काम, नावका खेने का काम, उद्धारक। दादुर= मेढक, जीव। सर्प= अहंकार। पहरिया= पहरा देने का काम। बैल= अविवेक। गाय= सद्‌बुद्धि। बंझा= बंध्या। बछरू= काम, क्रोधादि। तिन तिन संझा= प्रातः, मध्याह्न तथा सायं, सब समय। सिंह= जीव। सियार= गलत आदतें। कबिरा= कबीर साहेब, जीव। पद= पद्य, शब्द, कविता, स्वरूप।

रूपक—ऐसे नगर की रक्षा कौन करे जहां मांस फैलाकर गिद्ध उसके रक्षक बनाये गये हों, चूहे नावकायात्री बन गये हों तथा बिल्लियां उन्हें खेने वालीं। मेढक सो रहे हों और सांप उनकी रक्षा में पहरा देते हों, बैल प्रजनन करते हों और गायें बंध्या हो गयी हों तथा बछड़े को तीन-तीन बार दुहा जा रहा हो, और रोज सिंह उठकर सियार से लड़कर परास्त हो रहा हो, सच है कबीर साहेब के गाये पद कोई बिरला बूझेगा।

भावार्थ—ऐसे लोगों का उद्धार कौन कर पायेगा जो अपने मन-इन्द्रियों के आस-पास भोग वस्तुओं को फैलाकर संयमशील बना रहना चाहता है! 1 बिल्ली चूहे का बेड़ा कब पार कर सकती है, अर्थात माया द्वारा कब जीव का उद्धार हो सकता है! क्या सांप की पहरेदारी में मेढक सो सकते हैं! अर्थात क्या अहंकार के संरक्षण में जीव का कल्याण संभव है? 2 बैल बछड़े जनते हैं तथा गाय बंध्या हो गयी है, अर्थात अविवेक अपनी कामादि सृष्टि बढ़ा रहा है, किन्तु सद्‌बुद्धि बांझ बन गयी है। बछड़े प्रातः, मध्याह्न और संध्या तीनों काल में दुहे जा रहे हैं। अर्थात अविवेक से पैदा हुए काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का ही सब समय रस-पान किया जा रहा है 3 नित्य सिंह उठकर सियार से लड़कर परास्त होता है अर्थात रोज जीव सुबह से ही उठकर अपनी गलत आदतों से युद्ध करके उनसे परास्त होता है। जीव के निर्मल स्वरूप को कोई बिरला समझता है 4

व्याख्या—कबीर साहेब व्यंग्य लेखकों के आचार्य हैं। उनकी जितनी उलटवांसियां हैं वे प्रायः व्यंग्य में कही गयी हैं। इस पद में भी मनुष्यों के

विपरीत आचरण पर करारा व्यंग्य है। वे कहते हैं "को अस करे नगर कोटवलिया।" नगर कहते हैं शहर को। हर जिले के मुख्य शहर के पुलिस अफसर को कोतवाल कहा जाता है जिसके अधीन वहां के सभी थानेदार होते हैं। इस प्रकार कोतवाल पूरे नगर का रक्षक होता है। परन्तु ऐसे नगर की रक्षा कौन कर पायेगा जहां मांस फैलाकर गिद्ध रखवाले बनाये गये हों। मांस मानो विषय-भोग हैं तथा गिद्ध मन-इन्द्रियां हैं। जो व्यक्ति अपने चारों तरफ विषय-भोगों को फैलाकर उनमें रहता हो और साथ-साथ यह भी चाहता हो कि हम संयम से रहें, यह कैसे हो सकता है! जैसे मांस को देखकर गिद्ध उस पर टूट पड़ता है, वैसे भोगों को सम्मुख पाकर मनुष्य के मन-इन्द्रिय उसके लिए विचलित हो जाते हैं। जो जीवन में संयम, ब्रह्मचर्य एवं शांति चाहे वह भोग-विषयों से दूर रहे। यहां कोतवाल मानो गुरु है। गुरु उस व्यक्ति की रक्षा नहीं कर पायेगा जो भोग-विषयों के कुसंग में अपने आप को बनाये रखना चाहता है।

"मूस भौ नाव मंजारि कँड़िहरिया" नावका को केवट खेता है। मूस नावका-यात्री बन गया और बिल्ली उसे खेने लगी। यह माया के अधीन जीवों पर करारा व्यंग्य है। यदि चूहा बिल्ली को अपना उद्धारक मानता है तो उसकी बुद्धि की बलिहारी है। चूहा तो बिल्ली का आहार है। यदि आदमी संसार के माया-मोह द्वारा अपना कल्याण समझता है तो उसका घोर पतन रखा-रखाया है। माया-मोह तो बिल्ली है, यदि मनुष्य उससे सम्बन्ध जोड़ेगा तो वह उसके सामने चूहा बन जायेगा और उसे माया धर-दबोचेगी।

"सोवै दादुर सर्प पहरिया" मेढक सांप को अपना पहरेदार बनाकर सोना चाहता है। मनुष्य अहंकार को अपना रक्षक समझता है। वह अहंकार के बल पर सोता है। परन्तु अहंकार सर्प ही मनुष्य को रात-दिन डंसता है। जिस संसार में जीव का एक तृण भी अपना नहीं है वहां सब कुछ अपना मानने का अज्ञान ही तो अहंकार है और इसी के फल में सारे दुख हैं।

"बैल बियाय गाय भई बंझा" अविवेक बैल है; काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, भय, चिन्ता, शोक आदि उसकी संतानें हैं जिनका वह नित्य प्रजनन करता रहता है। अविवेक की सृष्टि और क्या हो सकती है? अविवेक-बैल से जो कुछ पैदा होगा वह सब मनुष्य के लिए दुखदायी ही होगा। अविवेक के विरोधी पक्ष में सद्‌बुद्धि रूपी गाय है, वह बंध्या हो गयी है। मलिन हृदय में सद्‌बुद्धि बंध्या हो ही जाती है। यदि सद्‌बुद्धि रूपी गाय प्रजनन करती, तो उसकी शील, क्षमा, दया, धैर्य, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, संतोष आदि संतानें होतीं। परन्तु वह तो बंध्या हो गयी है, अतः जीवन में इन सद्‌गुणों के होने का प्रसंग

ही नहीं है। संसार में ज्यादातर यही देखा जाता है कि बैल ही प्रजनन कर रहे हैं और गाय बंध्या हो रही है। अविवेक की ही सृष्टि सर्वत्र है, सद्बुद्धि बांझ बनी पड़ी है। जैसे भागवत के अनुसार भक्ति बूढ़ी हो गयी थी, वैसे सारे संसार में सद्बुद्धि प्रायः बंध्या हो गयी है।

"बछरू दुहिये तिन तिन संझा" अविवेक-बैल से पैदा हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि बछड़े सब समय दुहे जा रहे हैं। जैसे गाय-भैंस दुहकर उनका दूध पीया जाता है, वैसे यहां अविवेक-बैल से पैदा हुए कामादि बछड़े ही मानो हर समय हर जगह दुहे जा रहे हैं और उन्हीं का दूध, उन्हीं का रस पीया जा रहा है। रात-दिन में चार संध्यायें होती हैं। दो समयों के मेल को संध्या कहते हैं। रात और दिन का मेल प्रातः पहली संध्या है, दिन के दोनों समयों का मेल मध्याह्न दूसरी संध्या है, दिन और रात का मेल गोधूलि तीसरी संध्या है तथा रात के दोनों समयों का मेल आधी रात चौथी संध्या है। रात में लोग सोते हैं इसलिए आधी रात वाली संध्या को सब छोड़ देते हैं, प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीन संध्याओं को ही मनुष्य उपयोग में लाता है, इसलिए इन्हीं तीनों में संध्योपासना करने का विधान बना। 'तिन तिन संध्या' का यहां लाक्षणिक अर्थ है, सब समय। जीव हर समय सद्बुद्धि से दूर पड़ा अविवेक की सृष्टि का रस लेता है। वह सब समय विषय-वासनाओं तथा नाना विकारों में डूबा रहता है।

"नित उठि सिंह सियार सों जूझै" सिंह रोज सबेरे उठकर सियार से युद्ध करता है और उससे मारा जाता है। कैसा आश्चर्यमय है इस नगर का खेल! सिंह मनुष्य है। वह रोज सुबह उठकर अपनी गलत आदतरूपी सियारों से भिड़ना शुरू करता है। द्वेष, कुढ़न, ईर्ष्या, मोह, काम, असत्य-भाषण, परनिंदा, चुगली, गाली, कलह, स्वार्थ, धोखाधड़ी, वंचना, इतना ही नहीं, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, गांजा-भांग, शराब, नामालूम कितनी गंदी आदतें मनुष्यों ने बना रखी हैं। सुबह होते ही, नींद खुलते ही, जीव इन्हीं सबसे भिड़ जाता है। सद्गुरु मनुष्य को याद दिलाते हैं कि तुम सिंह हो, परन्तु सियार से भिड़कर रोज परास्त हो रहे हो। जब लोगों से कहा जाता है कि तम्बाकू-बीड़ी तो तुच्छ आदतें हैं और इन्हें छोड़ दो, तब लोग कहते हैं कि महाराज! अन्न दो-चार दिन न दो तो चल जायेगा, परन्तु बीड़ी-तम्बाकू आदि के बिना नहीं चलेगा। मनुष्य सिंह के समान बलवान होकर भी कैसी कायरता की बात करता है! इस प्रकार मनुष्य-सिंह अपनी बनायी मलिन आदतरूपी सियारों से हर समय परास्त हो रहा है।

सद्गुरु कहते हैं कि ऐसे लोगों की रक्षा कौन कर पायेगा? "को अस करे नगर कोटवलिया" ऐसे संसार में कौन इनके कल्याण करने का बीड़ा उठा पायेगा! जो लोग अपने जीवन की सारी प्रक्रिया को ही उलट दिये हैं, उनका बेड़ा पार कैसे होगा!

"कबिरा का पद जन बिरला बूझै" इसका सरल अर्थ है कि कबीर साहेब कहते हैं कि मेरे इन-जैसे उलटवांसी के पद कोई बिरला ही बूझेगा। इसका तात्त्विक अर्थ है कि जीव का शुद्ध स्वरूप कोई बिरला समझता है। कबिरा से अर्थ जीव है तथा 'पद' का अर्थ स्वरूप है। जो जीव का स्वरूप समझ लेता है, जो जान लेता है कि मेरा स्वरूप शुद्ध चेतन है, वह अपने आप को सारे विकारों से निकाल लेता है।

मोह-काल से सावधान

शब्द-96

काको रोवों गैल बहुतेरा, बहुतक मुवल फिरल नहिं फेरा 1
जब हम रोया तब तुम न सम्हारा, गर्भवास की बात बिचारा 2
अब तैं रोया क्या तैं पाया, केहि कारण अब मोहिं रोवाया 3
कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई, काल के बसी परो मति कोई 4

शब्दार्थ—गैल= चले गये, पतित हुए। मुवल= मर गये, अपनी स्थिति से गिर गये। काल= अज्ञान, नाशवान वस्तुओं का राग।

भावार्थ—किसके-किसके लिए रोया जाये ! जो संसार में आते हैं वे सभी यहां से एक-एक दिन चले जाते हैं। अपने देखते-देखते बहुत लोग मर गये; परन्तु जो एक बार यहां से चला जाता है वह लौटकर नहीं आता 1 हे मनुष्य ! मैंने करुणाविगलित होकर जब तुम्हें समझाया तब तुमने अपनी जवानी के प्रमाद में मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया, अपने आप को विषय-वासनाओं से नहीं बचाया, प्रत्युत ऐसी बातों को ही मन में रखा तथा ऐसा आचरण किया जिससे पुनः गर्भवास की प्राप्ति हो 2 अब तू बूढ़ा हो गया है, रोगों से पीड़ित है तथा शिथिल है, अब रोता है तो क्या पाता है ! अब तू मुझे क्यों दुखी कर रहा है, अब तो समय निकल गया है 3 कबीर साहेब कहते हैं कि हे भाई सन्तो ! सुनो, काल से ग्रसित संसार की आगमापायी वस्तुओं के मोह में कोई मत पड़ो 4

व्याख्या—कबीर देव की एक-एक वाणी तीर जैसी है जो हृदय में घुसकर उसे मथ देती है। उक्त चार पंक्तियों में कितने मार्मिक वचन हैं, यह सोचते ही बनता है। मानो कोई निकट का प्रियजन मर गया हो और लोगों ने आकर सद्गुरु को यह संदेश दिया हो तो उन्होंने कहा हो कि भाई ! किसके-किसके लिए रोया जाये ! यदि कोई एक-दो आदमी मर जायें, बाकी लोग न मरें तो उन मरने वालों के लिए रोया जाये कि अन्य लोग तो सदा जीवित रहते हैं, परन्तु बेचारे अमुक-अमुक ही मर गये। यह तो प्रकृति का एक-दो लोगों पर अन्याय

है। यदि ऐसी घटना घटे तो अवश्य चिंता का विषय है कि यदि सभी लोग सदैव जीने के अधिकारी हैं तो वे एक-दो व्यक्ति बेचारे क्या अपराध किये थे जिनके ऊपर प्रकृति का प्रकोप हुआ। परन्तु बात ऐसी नहीं है। प्रकृति के नियम सब पर समान रूप से लागू हैं। यहां से सब जाते हैं। जो संसार में शरीर धारण कर आता है वह जाता है। रंक जाता है, राजा जाता है, निरक्षर जाता है, विद्वान जाता है, निर्धन जाता है, धनवान जाता है, जिसे टोला-पड़ोस वाले नहीं जानते वह जाता है और जगत-प्रसिद्ध व्यक्ति भी जाता है। आज संसार में जितने प्राणी हैं कुछ ही वर्षों में सब चले जायेंगे। और जो यहां से एक बार चला गया वह लौटकर कभी नहीं आता। यहां पुनर्जन्म सिद्धान्त का खंडन नहीं समझना चाहिए, क्योंकि उसके तो कबीर साहेब महान पक्षधर हैं जिसकी चर्चा इसके बाद वाली पंक्ति में इसी शब्द में आयी है। यहां तो यह बात बतायी जा रही है कि जिस शारीरिक व्यक्तित्व को लेकर मनुष्य आज है, मर जाने के बाद वह तो यहीं मिट जाता है, अतः वह उस व्यक्तित्व को लेकर यहां नहीं आ सकता। साधारण की बात ही छोड़िये, बड़े-बड़े राजे-महाराजे, ज्ञानी-मुनि भी इस संसार से जाकर कभी नहीं लौटे।

"जब हम रोया तब तुम न सम्हारा, गर्भवास की बात बिचारा। अब तैं रोया क्या मैं पाया, केहि कारण अब मोहिं रोवाया।" मानो कोई ऐसा आदमी हो, जिसे उसकी जवानी में सद्गुरु ने समझाया हो, उसे धर्म का रास्ता दिखाया हो, किन्तु वह जवानी के प्रमाद में पड़कर साहेब की बातों पर ध्यान न दिया हो और निरंतर विषय-वासनाओं एवं सांसारिकता के उन्माद में डूबा रहा हो और ऐसी विपरीत दिशा में रहते-रहते उसका बुढ़ापा आ गया हो, अब उसके सारे अंग शिथिल हों, शरीर रोगी हो, परिवार से तिरस्कृत तथा चित्त की उद्विग्नता से पीड़ित हो और साहेब के पास आकर अपना दुखड़ा रो रहा हो, तो साहेब ने कहा हो कि भाई ! जब मैंने तुम्हारी जवानी एवं स्ववश अवस्था में तुम्हें धर्म की सीख दी थी तब उस पर तुमने ध्यान नहीं दिया, बल्कि अपने ऐसे विचार रखे कि जिससे पुनः तुम्हें गर्भवास में जाने के साधन बनें। उस समय तुम एकदम उन्मत्त बने रहे। तो अब पछताने से क्या होता है ! अब तू सब प्रकार निर्बल, शिथिल, उपेक्षित एवं असहाय-जैसा हो गया है। अब रोता है, तो रोने से क्या पायेगा ! अब तो सेवा और साधना करने का समय निकल चुका है। अब रो-रोकर मुझे क्यों रुला रहा है। मैंने तो तुम्हारे कल्याण के लिए पहले ही रोया था, करुणापूर्वक तुम्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया था, परन्तु तुमने अपनी जवानी के प्रमाद में पड़कर बात पर कान ही नहीं दिया। अब पछताने से काम बनने वाला नहीं है। समझदार वही है जो पहले से ही अपने कल्याण का

साधन कर ले। जो पहले ऐसा न कर समय चूक जाने पर रोता है, वह मूर्ख है। संसार में अधिकतम लोग अज्ञान तथा अंधकार में पड़ अपने सुनहले अवसर को खोकर बुढ़ापा में मूर्ख बन जाते हैं।

"कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई, काल के बसी परो मति कोई।" कबीर साहेब पूरे मानव-समाज को संत और अपना भाई मानते हैं। वे उन सबसे कह रहे हैं कि मेरी बातों पर आप लोग ध्यान दें और कोई काल के वश में न पड़ें। जो आदमी उन वस्तुओं में आसक्त होता है, जो काल के अधीन हैं तो वह भी मानो अपने आप को काल के हाथों बेच रहा है। संसार की सारी वस्तुएं चाहे वह निरी जड़ हों या प्राणियों के शरीर हों सब नश्वर हैं। जो व्यक्ति इन नश्वर वस्तुओं में आसक्त होता है उसके मन का भय कभी नहीं मिट सकता। आदमी चिन्ता, शोक एवं भय से तभी मुक्त होता है जब वह मोह से मुक्त हो। अतएव शरीर का मरना काल के वश में होना नहीं है। मृत्यु तो शरीर को मारती है, किन्तु मोह हमारी आत्मा का पतन करता है, इसलिए यदि हम चाहते हैं कि इस जीवन में पूर्ण निर्भय स्वरूपस्थिति का साम्राज्य प्राप्त करें और सदैव के लिए कृतार्थ हो जायें, तो हमें समस्त नश्वर पदार्थों का राग छोड़ देना चाहिए। अपनी आत्मा के अलावा सब नश्वर है, सब छूटने वाला है।

इस शब्द को हम इस ढंग से भी समझ सकते हैं और यह भी बड़ा स्वाभाविक लगता है। मानो कोई साधक हो। वह अपनी साधना से गिर गया हो। लोगों ने आकर कबीर साहेब को यह संदेश दिया हो तो साहेब ने लोगों से कहा हो कि किसके-किसके लिए रोया जाये, बहुत-से लोग अपनी साधना छोड़कर कुपथ एवं विषयों की धारा में बह गये हैं। बहुत लोग अपने पद से गिर गये और वे उठ नहीं सके। एक बार भूल हो जाने पर अधिकतम लोग उठने की हिम्मत छोड़ देते हैं। वे यह नहीं समझते कि "युद्धक्षेत्र में कुशल घुड़सवार ही गिरते हैं। वे बच्चे क्या गिरेंगे जो घुटनों के बल चलते हैं।" जो साधना-पथ में चलते हैं, उनमें से ही कोई फिसल भी सकता है, परन्तु जो चलता ही नहीं वह क्या फिसलेगा ! समझदार किसी को गिरते देखकर उसका उपहास नहीं करते, किन्तु उसे साहस देकर उठाते हैं। परन्तु गिरने वालों में यह बहुत बड़ी कमजोरी आ जाती है कि उनमें अधिकतम अपना साहस ही छोड़ देते हैं। कोई बिरला होगा जो गिरने के बाद भी साहस कर उठ सके। होना चाहिए यही, कि भूल हुई सो हुई, आदमी पुनः साहस के साथ उठ खड़ा हो। जो उठ खड़ा होता है उसके वर्तमान तथा भविष्य उज्ज्वल हो जाते हैं।

. गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में।
वे तिफ्ल क्या गिरेंगे जो घुटनों के बल चलें॥

जो साधक गिर गया था, कबीर साहेब ने मानो उसको उठाने के लिए बहुत साहस दिया हो, परन्तु वह उठ न सका हो और सांसारिकता में डूबकर बुरी तरह उलझ गया हो। कुछ दिनों में उसकी अत्यन्त दयनीय दशा हो गयी हो। इसके बाद वह साहेब से मिला हो और अपनी सांसारिकता की बातों का रोना रोया हो तो साहेब ने उसे समझाया हो कि भाई ! जब मैंने करुणा करके तुम्हें समझाया तब तो तूने मेरी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया। तब तो तुम्हें संसार के भोगों में ही सब सुख दिखा। अब तू जब अच्छी तरह सांसारिक कांटों में उलझ गया है तब मेरे पास रोने आया है तो अब रोने से तू क्या पाता है ! इस रोने से तुम्हारे बंधन कटने वाले नहीं है। अब तू व्यर्थ में मुझे भी रुला रहा है। तेरे दुखों को देखकर मुझे भी दुख लगता है, परन्तु अब मैं क्या करूं ! जब सम्हलने का समय था तब तूने मेरी बातों की अवहेलना कर दी। अब समय निकल चुका है। अब तो तू संसार का कीट बन गया है। आज तू सांसारिकता के परिणाम से तो अवश्य दुखी है, परन्तु उससे वैराग्य होना तो तेरे लिए आज और कठिन हो गया है। अब तू अपने बन्धनों के दुख को लेकर मत रो, प्रत्युत जो सुधार कर सकता है वह सुधार कर।

उस व्यक्ति को समझाने के पश्चात सद्गुरु ने संत-मंडली की तरफ उन्मुख होकर कहा कि हे भाई सन्तो ! सुनो, इस प्रकार कोई मोह-काल के अधीन नहीं होना। मोह काल है; काम काल है; क्रोध, लोभ, वासना-तृष्णा काल हैं। यहां तक कि अपने चेतनस्वरूप से अलग शरीर से लेकर संसार के समस्त पदार्थों का राग काल है। इस राग-काल के अधीन नहीं होना। अपनी चेतना, अपने आत्माराम से अलग होकर कहीं भी मोह बनाना मानो काल के अधीन हो जाना है।

साम्प्रदायिकता-विहीन सत्य

शब्द-97

अल्लाह राम जियो तेरी नाँईं, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँईं 1
क्या मुण्डी भूईं शिर नाये, क्या जल देह नहाये 2
खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुण रहे छिपाये 3
क्या वजू जप मंजन कीये, क्या महजिद शिर नाये 4
हृदया कपट निमाज गुजारे, क्या हज मक्के जाये 5
हिन्दू बरत एकादशी चौबीस, तीस रोजा मुसलमाना 6
ग्यारह मास कहो किन टारे, एक महीना आना 7
जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलुक केहि केरा 8

तीरथ मूरत राम निवासी, दुइमा किनहुँ न हेरा 9
पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा 10
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा 11
वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे 12
सब घट एक एक कै लेखे, भय दूजा के मारे 13
जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा 14
कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा 15

शब्दार्थ—जियो= जीव, चेतन। नाँई= समान। मेहर= मेह्र, प्रेम, कृपा। साँईं= स्वामी। खून= हत्या, जीववध। मिस्कीन= दीन, फकीर। वजू= वुजू, नमाज के पहले विधिपूर्वक हाथ, पैर, मुख आदि धोना। मंजन= मज्जन, स्नान। हज= हज्ज, संकल्प करना, नियत काल पर काबे के दर्शन एवं प्रदक्षिणा करना, मक्के की यात्रा। मक्के= मक्का, अरब का एक प्रधान नगर जो हजरत मुहम्मद का जन्म स्थान है तथा मुसलमानों का मुख्य तीर्थस्थल है। बरत= व्रत, उपवास। तीस रोजा= तीस दिन के रमजान महीने में दिन में उपवास रखना। आना= अन्य, दूसरा, शुद्ध। हेरा= खोजना। करीमा= करम यानि दया करने वाला ईश्वर। घट= शरीर, दिल। लेखे= समझे, समझना चाहिए। उपाने= उत्पन्न हुए। पोंगरा= बालक, बच्चा, पुत्र, पैगंबर, अवतार।

भावार्थ—हे मनुष्य! अल्लाह और राम भी तेरे समान जीव ही हैं। हे मनुष्य! तू सभी ज्ञान-विज्ञान का स्वामी है। तू जिस पर कृपा कर दे उसी को ईश्वर बना दे 1 जड़ मिट्टी-पत्थरादि की पिंडियों के सामने सिर झुकाने से क्या कल्याण होगा, और शरीर को गंगादि नदियों में धोने एवं स्नान करने मात्र से भी क्या लाभ होगा? 2 बलि और कुर्बानी के नाम पर करे जीव-हत्या और कहलाये दीन-गरीब एवं विनम्र फकीर। वस्तुतः यह विनम्रता अपने दोषों को छिपाने का सिर्फ एक तरीका है 3 केवल वुजू, जप, स्नान करने से और मसजिद में सिर झुकाने से क्या मिलने वाला है? यदि हृदय में कपट-छल बनाये रखे तो नमाज अदा करने तथा मक्के की यात्रा करने से भी क्या लाभ होगा? 4-5 हिन्दू लोग वर्ष में चौबीस एकादशी व्रत रहते हैं और मुसलमान लोग रमजान महीने के तीस दिनों में रोजा रहते हैं, तो वर्ष में केवल एक ही महीना के दिनों को पवित्र बताकर ग्यारह महीने किसने अपवित्र सिद्ध कर उन्हें व्रत के दिनों से अलग कर दिया? 6-7 यदि खुदा मसजिद में बसता है तो उसके बाहर का मुल्क किसका है? और यदि तीर्थ, मंदिर तथा मूर्तियों में ही राम निवास करता है तो उनसे अलग फैले हुए विशाल संसार में कौन रहता है? इन हिन्दू-मुसलमानों में से किसी ने भी सत्य की खोज नहीं की 8-9 हिन्दू प्रायः पूर्व मुख करके पूजा करते हैं और भारतवर्ष में मुसलमान पश्चिम मुख

करके नमाज पढ़ते हैं तो इससे यह कैसे मान लिया जाये कि हरि पूर्व दिशा में बसता है और अल्लाह पश्चिम दिशा में? हे मनुष्यो! अपने दिल में खोजो, केवल अपने दिल में खोजो, तो पाओगे कि अपने दिल में रमने वाला चेतन-नूर ही दिलकश, दिलदार एवं दिलआराम रहीम और राम है 10-11 वेद और किताब को किसने झूठा कहा है? झूठा तो वह है जो बिना विचार किये वेद-किताबों की रट लगाता है 12 मनुष्य को चाहिए कि वह सभी शरीरों में एक समान आत्मारूपी परमात्मा को देखे और दूसरों के दिल दुखाने एवं उनकी हत्या करने से भय करे तथा इस पाप कर्म से सर्वथा दूर हो 13 हे मनुष्य! संसार में जितने औरत और मर्द हैं सब तुम्हारे स्वरूप हैं 14 कबीर साहेब कहते हैं कि जो अल्लाह और ईश्वर के पैगंबर तथा अवतार माने गये हैं वे गुरु और पीर के समान हमारे आदरणीय हैं 15

व्याख्या—पंद्रह पंक्तियों का यह शब्द जैसे विशाल है वैसे विशाल भावना से व्याप्त अत्यंत हृदयस्पर्शी है। ईश्वर, ईश्वरीय मजहब तथा ईश्वरीय किताब को लेकर संसार में हद दर्जे की जाहिली है। धर्म, जो मानवता है, रहमदिली एवं सहृदयता है, वह बाह्याचार एवं बाह्याडंबर में ढक गया है। मजहब वालों ने ईश्वर को जीव से अलग कर दिया है, इसलिए वे प्रायः ईश्वर की तो भक्ति करते हैं और जीव को पीड़ा देते हैं। देखिए हैवानी कि देवता तथा ईश्वर को खुश करने के लिए ऊंट, भेड़े, बकरे, गायें, भैंसे, मुरगे आदि जानवरों की हत्या की जाती है। ईश्वर को जीव से अलग कर देने का परिणाम यह हुआ कि हमने धरती पर के प्राणधारियों एवं इनसानों तक की हत्या करने में हिचक नहीं की और आकाश में, शून्य में ईश्वर को पुकारते रहे। हमने प्रत्यक्ष ईश्वर—प्राणधारियों के साथ बे-रहमी की और शून्य की प्रार्थना करते रहे।

कबीर साहेब कहते हैं कि ईश्वर जीव का गुण विशेष मात्र है। जब जीव निष्काम एवं आप्तकाम हो जाता है, तब वह ईश्वर है। इसीलिए वे इस शब्द के शुरू में ही कहते हैं—"अल्लाह राम जियो तेरी नाँई" अर्थात अल्लाह और राम तेरे समान जीव ही हैं। इसका अभिप्राय है कि कृतार्थ जीव ही अल्लाह और राम हैं। जो व्यक्ति इस जीवन में शोक, मोह एवं भय से मुक्त हो गया है, वही मानो ईश्वर है, और वह तुम्हारे समान ही है। तुम भी वैसे हो सकते हो। क्योंकि तुम्हारा स्वरूप भी उसी प्रकार है। वस्तुतः सब जीवों का स्वरूप शिव है, परन्तु वे अपने स्वरूप को नहीं समझते, इसलिए सामान्य जीव बने भटक रहे हैं। जब उनमें कोई अपने स्वरूप को समझ लेता है और समझकर संसार से निष्काम हो जाता है तब वह मानो शिव हो जाता है। उसी को आप अल्लाह एवं राम कह सकते हैं। यदि इस तथ्य को समझ लिया जाये कि यह जीव ही

ईश्वर है तो हम जीव मात्र के प्रति उत्तम व्यवहार करने लगें और अपने आप को संसार की कामनाओं के दलदल से निकाल लें।

लेकिन मजहबी लोग कहते हैं कि जीव से ईश्वर अलग है। नाना मत के लोग तो पानी, पत्थर, पेड़, पहाड़, गोबर, मिट्टी को देवी-देवता बना देते हैं, फिर चांद, सूरज और सितारों को देवी-देवता मान लेना तो अधिक सहज है। लोग अपनी आत्मा को छोड़कर शून्य में ईश्वर की कल्पना करते रहते हैं। इन बातों पर मानो व्यंग्य करते हुए कबीर साहेब कहते हैं "जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँई" हे मनुष्य ! तू ही सारे ज्ञान-विज्ञान का सांई है, तू ही तो सारी कल्पनाओं का, मनोमय का स्वामी है, अतएव तू जिस पर कृपा कर दे उसी को देवी-देवता तथा भगवान बना दे। जब तूने पशु की टट्टी-गोबर को गौरी-गणेश बनाकर रखा, तब उनकी ही पूजा चल पड़ी। तूने मिट्टी, पत्थर तथा धातु के देवी-देवता बनाये और लोग उनके सामने घुटने टेककर भोग और मोक्ष मांगने लगे। तूने आकाश में ईश्वर का संकेत किया तो उधर लाखों-करोड़ों हाथ उठ गये इबादत एवं प्रार्थना में। हे मनुष्य ! तू देवताओं का देवता तथा ईश्वरों का ईश्वर है। सारे देवी-देवता तथा ईश्वर मनुष्य की कृपा पर पल रहे हैं। मनुष्य हाथ खींच ले तो सारे देवी-देवता तथा ईश्वर गिर जायें। उनकी मान्यताएं समाप्त हो जायें। उनको कोई पूछने वाला भी न रहे। "जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँई" बड़ा मार्मिक वचन है। हे मनुष्य ! तू सबका स्वामी है। तू जिस पर कृपा कर दे उसी को भगवान बना दे। श्री चंडीदास जी ने ठीक ही कहा है—"हे भाई ! सुनो, तू सबके ऊपर है और तेरे ऊपर कोई नहीं है।"

इसलिए साहेब कहते हैं कि "क्या मुण्डी भूईं शिर नाये, क्या जल देह नहाये।" अपने बनाये देवी-देवताओं की मनौती एवं प्रार्थना कर जमीन में सिर पटकने से क्या फायदा है ! या मिट्टी-पत्थरादि की पिंडियों के सामने माथा रगड़ने से क्या मिलेगा ! लोग कहते हैं कि गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा आदि में नहाने से सारे पाप कट जाते हैं। साहेब कहते हैं कि हे धार्मिक कहलाने वालो ! तुम लोग संसार के शिक्षित-अशिक्षित भोले लोगों को क्यों धोखा देते हो? पाप तो मन में संस्काररूप से जमे होते हैं वे पानी में नहाने से कैसे कट सकते हैं?

"खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुण रहे छिपाये।" लोग धर्म के नाम पर जीव हत्या करते हैं। ईश्वर को खुश करने के लिए हजारों-लाखों ऊंट, बकरे, भेड़े काट दिये जाते हैं, परन्तु काटने वाले कहते हैं कि हम तो मिस्कीन हैं, गरीब हैं, दीन हैं, ईश्वर के सामने नाचीज हैं। इसका अर्थ यह है कि ये ईश्वर के नाम पर हत्या करने वाले बड़े विनम्र भक्त बनते हैं। कबीर साहेब कहते हैं

. शुनो मानुष भाई, सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाई।

कि यह इनका भक्त बनना, विनयी बनना एक ढोंग है जिससे इनके हत्या के दोष पर लोगों की दृष्टि न जाये। यह खूनी विनय दो चेहरों वाली तस्वीर है। अन्दर में इनके घोर निर्दयता है और बाहर से भक्ति का स्वांग है। यह अपने अवगुणों को छिपाने का तरीका है।

"क्या वजू जप मंजन कीये, क्या महजिद शिर नाये। हृदया कपट निमाज गुजारे, क्या हज मक्के जाये।" नमाज पढ़ने से पहले विधिपूर्वक हाथ, पैर, मुख आदि का धोना वुजू है, माला या तसबीह पर या यों ही किसी नाम, मन्त्र एवं कलमा को जबान या मन से दोहराना जप है, मंजन कहते हैं दांत मांजने के चूर्ण को, परन्तु यहां मंजन मज्जन का तद्भव रूप है, मंजन का शुद्ध रूप है मज्जन। मज्जन कहते हैं स्नान करने को। साहेब कहते हैं कि तुम वुजू करते हो, जप करते हो, स्नान करते हो और मसजिद में जाकर सिर झुका-झुकाकर नमाज पढ़ते हो, परन्तु यह सब करके क्या फल मिला जब ईश्वर के नाम पर बेरहमी का काम करते हो? जिस ईश्वर के नाम में पचासों बार करम और रहम जोड़ते हो, उसी को खुश करने के लिए बे-करम और बे-रहम का काम करते हो तो तुम्हारा सारा बाह्याचार किस मतलब का रहा? हृदय में कपट कतरनी है तो नमाज अदा करने से क्या फायदा? मुख से तो कहते हो 'रहीम' और मन में रखते हो 'बे-रहमी' तो उपासना का क्या मतलब हुआ! जब किसी प्राणी के गले पर छूरी रखकर रेतते हो तो कहते हो कि शुरू करता हूं उस अल्लाह के नाम से जो निहायत रहम वाला है। यह कितना कपट-चाल है? रहीम कभी बेरहमी से खुश नहीं हो सकता। इस ढंग का हिंसात्मक व्यवहार रखकर कभी उपासना सफल नहीं हो सकती। "क्या हज मक्के जाये।" हज एवं हज्ज के अर्थ सुख एवं लाभ भी होते हैं, परन्तु इसका ज्यादातर अर्थ मक्के की यात्रा करना है। परन्तु मक्के जाकर भी वही बात होती है। वहां ईश्वर के नाम पर लाखों जानवर काटे जाते हैं।

हिन्दू वर्ष भर में चौबीस एकादशी व्रत रहते हैं, उन दिनों उपवास रहते हैं और मुसलमान वर्ष में रमजान के महीने में प्रतिदिन दिन भर कुछ नहीं खाते-पीते, केवल रात में खाते-पीते हैं। चलो, साल में कुछ दिन दोनों तपस्या कर लेते हैं। वैसे स्वास्थ्य की दृष्टि से पन्द्रह-पन्द्रह दिनों में उपवास रखने का नियम अच्छा है, परन्तु एकबारगी एक महीना तक दिन में न खाना, केवल रात में खाना एक अजीब बात है। परन्तु इतना तो दोनों को समझना चाहिए कि केवल चौबीस एकादशी के दिन तथा रमजान महीने के तीस दिन ही पवित्र नहीं हैं, किन्तु वर्ष के सारे दिन एक समान पवित्र हैं। हमारा अंधविश्वास कहीं ऐसा नहीं जुड़ जाना चाहिए कि दूसरे दिनों को हम अपवित्र या घटिया मान लें।

हिन्दू और मुसलमान मंदिर और मसजिद को लेकर बड़ा लट्ठमलट्ठ करते रहते हैं। ये दोनों कहीं-कहीं कुछ ईंट-पत्थर के रोड़े जोड़ लेते हैं, और इनके ईश्वर वहां आकर जम जाते हैं फिर चाहे उनको लेकर इनसान के खून की नदी बहे तो भी इनके ईश्वर वहां से नहीं हटते। ये हिन्दू और मुसलमान के ईश्वर और देवी-देवता कितनी सार्वजनिक जमीनों पर, किन्हीं की व्यक्तिगत जमीनों पर, राहों और सड़कों पर ऐसे जमकर बैठते हैं कि मजाल है इन्हें कोई हटा सके। भले जनता को, राहगीरों को कष्ट हो, परन्तु ये वहां से नहीं हटेंगे। यदि कहीं सरकार इन्हें हटाना चाहे तो धर्म और इसलाम खतरे में है कहकर नारे लगाये जाते हैं, सरकार की छवि खराब करने का प्रयत्न किया जाता है। कितने ही मंदिर और मसजिद इनसानी दोस्ती की राह में रोड़े ही नहीं खाईं और पर्वत बनकर खड़े हो जाते हैं। इतना ही नहीं, इनको लेकर मैदाने-जंग में इनसान का खून भी बहने लगता है। ईश्वर और देवता को रहने की जगह न मिलने से ये दयावान हिन्दू और मुसलमान उनके लिए मंदिर और मसजिद बनाते हैं तब कहीं बेचारे ईश्वर और देवता अपने सिर छिपाने की जगह पाते हैं। साहेब कहते हैं कि यदि खुदा मसजिद में रहता है तो मसजिद के बाहर के मुल्क में कौन रहता है? क्या उसमें शैतान रहते हैं? और यदि तीर्थ, मंदिर तथा मूर्तियों में ईश्वर तथा देवता रहते हैं तो उनसे बाहर के संसार में कौन रहता है? इतनी-सी अक्ल लोगों में नहीं आ रही है। ईश्वर का असली स्थान न हिन्दू खोजते हैं और न मुसलमान खोजते हैं। जो इनसान से लेकर सूक्ष्म कीट तक के दिलों में बसा है उसे ये मंदिर-मसजिद की दीवारों के बीच में बन्द कर देना चाहते हैं।

"पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लाह मुकामा। दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।" हिन्दू द्विजातियों में संध्योपासना में यह विधान है कि सुबह पूर्व तरफ मुख करके, दोपहर उत्तर तथा शाम को पश्चिम तरफ मुख करके संध्योपासना की जाये। संध्योपासना में सूर्य का महत्त्व होता है। सूर्य जिधर हो उधर मुख करके उपासना करनी चाहिए। परन्तु साधारण हिन्दू जनता न यह विधान जानती है और न विधिपूर्वक संध्योपासना करती है। कोई कर्मनिष्ठ ब्राह्मण कहलाने वाला लाखों में होगा जो एक-दो समय कर लेता होगा। ज्यादातर हिन्दू सुबह से दोपहर तक स्नान करने के बाद पूर्व तरफ मुख करके बैठ जाते हैं और कुछ पूजा कर लेते हैं। मुसलमान जिस तरफ मुख करके नमाज पढ़ते हैं उसे क़िबला कहते हैं और वह मक्का में स्थित काबा है। इस प्रकार मुसलमानों में मक्का एवं काबा मुख्य पूज्य स्थल माना है। काबा भारत से पश्चिम है। इसलिए वे पांचों वक्त पश्चिम मुख करके नमाज पढ़ते हैं। उनकी मसजिदें भी ऐसी ही बनती हैं जिससे लोग जब दीवार की तरफ मुख

करके खड़े हों तो उधर काबा पड़ता हो। कबीर साहेब कहते हैं कि इन ऊपरी बातों को लेकर कोई यह न समझ ले कि पूर्व में हिन्दुओं के ईश्वर हरि रहते हैं तथा पश्चिम में मुसलमानों के ईश्वर अल्लाह रहते हैं। ये काबा-कैलाश, मंदिर-मसजिद बहुत बाहरी हैं। इनमें परम सत्ता को देखने वाले भोले बालक के समान हैं। साहेब कहते हैं "दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।" हे लोगो ! अपने दिल में खोजो, केवल अपने दिल में खोजो। यह जो सभी दिलों में चेतन निवास करता है यही परम तत्त्व है। इसी को ईश्वर, अल्लाह, राम, रहीम, गॉड कुछ भी कह सकते हो। लोग ऊपर वाले को खोजते हैं, भीतर वाले पर ध्यान नहीं देते। ऊपर वाला तो केवल कल्पित है, भीतर वाला अनुभूत स्वसत्ता है, बल्कि कहना चाहिए कि वही सबका अनुभविता, कल्पक एवं ज्ञाता है। "दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।" यह कबीर साहेब के महासूत्रों में से एक है। जो सभी के दिल में चेतनरूपी भगवान को समझता है, वह किसी दिल को दुखा नहीं सकता। धोखा यही है कि लोग पत्थर के बने मंदिर-मसजिद में तो भगवान होने का भ्रम कर लेते हैं, किन्तु प्राणियों के दिल में उसे नहीं देख पाते। इसी का फल है कि वे मंदिर-मसजिद-जैसी बाहरी चीजों की सुरक्षा के लिए लड़ते हैं और ईश्वर के असली स्थान जो प्राणियों के दिल हैं उन्हें दुखाते हैं। कबीर साहेब की पूरी वाणियों में इसी सत्य एवं तथ्य पर जोर है कि ईश्वर प्राणियों के हृदय में है, क्योंकि यही वास्तविकता है और यही मानवता तथा सच्चे धर्म—करुणा के लिए प्रेरक है। यद्यपि यह बात सभी मजहबों एवं संप्रदायों की किताबों में लिखी है, तथापि लोग अपने अज्ञान, अहंकार तथा मिथ्या स्वार्थ में पड़कर उन बातों से अपनी नजरें घुमाकर वही रास्ता अपनाते हैं जो इनसान के लिए बुरा है।

"वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे।" कबीर साहेब की खरी बातें सुनकर लोग उन्हें उलाहना देने पहुंच गये और कहने लगे कि आप तो वेद तथा किताब को झूठा कहते हैं। साहेब ने उन्हें समझाया कि वेद-किताब को कौन झूठा कहता है? झूठा तो वह है जो उन पर विचार नहीं करता; और आंख मूंदकर प्रमाण मानता है। सभी मजहब वाले अपनी-अपनी किताबों को ईश्वरप्रदत्त, आप्तवचन एवं स्वतः प्रमाण मानते हैं। नाना मत के धर्मशास्त्र नाम की पुस्तकों में हजारों वर्षों के बीच में जो कुछ सही-गलत लिखा गया है उन सब को प्रभुवाणी, आप्तवचन एवं स्वतः प्रमाण के नाम पर लोगों के गले जबर्दस्ती उतारने की चेष्टा की जाती है। धर्मशास्त्रों में कितनी ऐसी बातें हैं जो भ्रमपूर्ण एवं बिलकुल गलत हैं। कितनी बातें ऐसी हैं कि जब वे लिखी गयीं तब उपयोगी रही होंगी, परन्तु आज वे बिलकुल असंगत हैं, फिर भी वे धार्मिक कहे

जाने वाले लोगों द्वारा जनता पर मढ़ी जाती हैं। साहेब कहते हैं कि मैं वेद, कुरान, बाइबिल तथा समस्त धर्मशास्त्रों को आदर देता हूं और यह चाहता हूं कि उनमें आयी हुई बातों को आंख मूंदकर न माना जाये, किन्तु उन पर विचारकर जो सत्य हों, कारण-कार्य-व्यवस्था के अनुकूल युक्तिसंगत, विश्व के नियमों से समर्थित तथा आज के लिए प्रासंगिक हों, उनका जीवन में उपयोग किया जाये। और जो उनमें युक्ति तथा विवेक-विरुद्ध हों, आज के संदर्भ में अनुपयुक्त तथा हानिकारी हों, उन्हें छोड़ दिया जाये। इस प्रकार वेदों-किताबों तथा धर्मशास्त्रों की बातों में मैं विचार करने की राय देता हूं। मैं यह भी नहीं कहता हूं कि वेद-किताब झूठे हैं। मैं कहता हूं कि वे झूठे हैं जो उनकी बातों पर विचार न कर आंख मूंदकर मानते हैं। अब कोई यदि बारम्बार यही जोर देता है कि मेरे धर्मशास्त्र में लिखा है, यह प्रभुवचन है, किंतु वे ऐसी बातें होती हैं, जो सत्यज्ञान तथा मानवता—दोनों में बाधक होती हैं और यदि ऐसी बातें ईश्वर तथा वेद-किताब के नाम पर कोई जबर्दस्ती गले उतारने के चक्कर में पड़ता है, तब मैं कहता हूं "वेद कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फन्दे परु आप बिचारा" या "नौधा बेद कितेब हैं, झूठे का बाना।" अतएव इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि मैं वेद-किताब को झूठा कहता हूं। मैं वेद-कितेब को आदर देता हूं, परन्तु उनकी बातें विचारपूर्वक मानने तथा न मानने की राय देता हूं।

"सब घट एक एक कै लेखे, भय दूजा के मारे।" सभी देहों में एक-एक जीव निवास करते हैं। इन्हीं जीवों को चेतन, आत्मा आदि कहते हैं। अपने शुद्ध रूप में यही परमात्मा हैं। इन्हें कष्ट देने से भय करो। किसी का दिल न दुखाओ। इस पंक्ति में यह महत्त्वपूर्ण बात है कि सभी देहों में एक-एक आत्मा हैं जो एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं। कबीर साहेब यथार्थवादी हैं। वे हर बात में तथ्य कहते हैं। लोग कहते हैं कि सब में एक ही आत्मा है। साहेब कहते हैं कि यह बात गलत है। सब देहों की आत्माएं एक दूसरे से अलग हैं। हां, सभी जीवों एवं आत्माओं के लक्षण एक हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि सब देहों में रहने वाले चेतन जीवों के गुण एक हैं, परन्तु व्यक्तित्व सबके अलग-अलग हैं। इस पंक्ति में दूसरी बात है कि दूसरों को कष्ट देने से भय करो। पहली बात तो यह है कि यह मानवता नहीं है कि दूसरों को कष्ट दिया जाये, दूसरी बात है कि

. बीजक, शब्द 32।

. बीजक, शब्द 113।

. केन उपनिषद् के ऋषि भी कहते हैं "भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।" (2/5)
अर्थात—विवेकी पुरुष प्राणी-प्राणी में सत्य को समझकर इस लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।

यदि हम किसी को कष्ट देंगे तो कष्ट पायेंगे। इसलिए हमें दूसरों को कष्ट देने से विरत होना चाहिए।

"जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।" संसार में जितने औरत तथा मर्द पैदा होते हैं वे सब तुम्हारे रूप हैं। यहां सभी जीवों की तात्त्विक एकता पर प्रकाश डाला गया है। साहेब कहते हैं कि स्त्री और पुरुष तो केवल शरीर के लक्षण हैं, किन्तु उनमें निवास करने वाले जीव एक समान हैं। उनके मूल लक्षणों में कोई अन्तर नहीं है। कबीर साहेब जैसे तथाकथित ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलिम में एकत्व देखते हैं वैसे स्त्री-पुरुष में भी एकत्व देखते हैं। वे विप्रमतीसी के आखिर में एक ही लपेट में कह जाते हैं कि सब दिलों के भीतर रमने वाले चेतन तत्त्व को क्या कहोगे? उसे काला कहोगे कि गोरा, लाल कहोगे कि पीला, गरम कहोगे कि ठंडा, अवर्ण कहोगे कि सवर्ण, हिन्दू कहोगे कि तुरुक, बूढ़ा कहोगे कि बालक, नारी कहोगे कि पुरुष? जरा, इस पर विचार करो। साहेब यहां कहते हैं कि सब तुम्हारे स्वरूप हैं। इसके पहले की पंक्ति में सद्गुरु ने चेतन जीव के व्यक्तित्व की भिन्नता पर प्रकाश डाला था और इस पंक्ति में सब चेतनों के गुणों की एकता पर प्रकाश डालते हैं और वे कहते हैं कि उसमें नारी-पुरुष का भी भेद नहीं है। लिंग-भेद देह के लक्षण हैं, जीव सबमें समान एवं सजाति हैं।

"कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा।" पोंगरा कहते हैं बालक, बच्चा एवं पुत्र को। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि मानते हैं कि हमारे राम, कृष्ण, मुहम्मद, ईसा आदि ईश्वर के अवतार, पैगम्बर एवं पुत्र हैं। साहेब कहते हैं कि ठीक है, मैं उनको अपने गुरु-पीर मानता हूं। कबीर साहेब इस ग्रन्थ में अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद का बारम्बार खंडन कर चुके हैं। इसलिए यहां वे पुनः खंडन के माध्यम से नहीं कहते हैं, किन्तु मंडन के माध्यम से अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद का निषेध कर देते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि आप लोग राम तथा कृष्ण को अवतार मानो, मुहम्मद को पैगम्बर मानो, ईसा को ईश्वर-पुत्र मानो, आप लोगों की मर्जी है। मैं तो उन्हें अपना गुरु-पीर मानता हूं। यहां कबीर साहेब उक्त महापुरुषों को गुरु-पीर कहकर उनका महान आदर करते हैं और साथ-साथ इसी के माध्यम से परोक्षरूप में अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद का खंडन कर देते हैं।

सद्गुरु ने इस शब्द के शुरू में ही कह दिया है "अल्लाह राम जियो तेरी नाँई।" सद्गुरु कबीर जीव से अलग ईश्वर नहीं मानते हैं। परन्तु यहां अंतिम पंक्ति में अल्लाह तथा राम के पोंगरे को वे अपना गुरु तथा पीर कह देते हैं। यही उनके संत-हृदय की पहचान है। अल्लाह और राम दोनों का अर्थ है

ईश्वर। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों के संतोष के लिए अल्लाह और राम अरबी तथा संस्कृत के शब्दों का प्रयोग एक साथ करते हैं। लोगों को केवल अपनी राय दी जा सकती है, किन्तु उनके विचारों को बलपूर्वक बदला नहीं जा सकता। कबीर साहेब ने पूरे शब्द में अपने विचार कह दिये। उन्होंने बता दिया कि मनुष्य की आत्मा ही ईश्वर है, भगवान है, परमात्मा है, वह उसे छोड़कर बाहर कुछ नहीं पायेगा। परन्तु इतना कहने के बाद भी वे जानते थे कि कुछ ही लोग इस बात को समझ सकेंगे। शेष लोग तो अपनी लकीर पर ही चलते रहेंगे। वे मानेंगे कि आत्मा से अलग परमात्मा है और राम-कृष्ण उसके अवतार हैं, मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं तथा ईसा उसके पुत्र हैं। इसी प्रकार अन्य मत वाले भी मानते रहेंगे। साहेब कहते हैं कि ठीक है भाई ! आपके अवतार तथा पैगम्बर को मैं आदर देता हूं। मैं उन्हें अपना गुरु-पीर मानता हूं। वे हमारे पूर्वज हैं, आदरणीय हैं। परन्तु मैं किसी को अवतार तथा पैगम्बर नहीं मानता। मनुष्य के ऊपर कोई ईश्वर नहीं है जो अपना दूत भेजकर संसार में कोई अपना मतवाद चलाता हो। सारे सम्प्रदाय-प्रवर्तक महापुरुष केवल मानव हैं। उन्हें अपने समय में लोक-कल्याण की जो सूझ-बूझ आयी उसे उन्होंने जनता के सामने रखा। जनता ने एवं हर महापुरुष के अनुयायियों ने अपने-अपने महापुरुष को अवतार, पैगम्बर, ईश्वर-पुत्र आदि बना दिया। इसके पीछे ही सारी सांप्रदायिकता पनपती रही। श्रद्धा अच्छी बात है, परन्तु अधिक श्रद्धा हिंसा पैदा करती है। जब कुछ लोग किसी महापुरुष को एकलौता सत्य का ठेकेदार, तथाकथित अवतार एवं पैगम्बर मान लेते हैं, तब उससे हटकर दूसरे की बात भी सुनना नहीं चाहते। वे अपने कथित पैगम्बर को स्वर्ग का द्वार तथा दूसरे को नरक का द्वार मानने लगते हैं। धर्म के नाम पर सारी जाहिली इसी से पैदा होती है। अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद असत्य तो हैं ही, अहितकर भी हैं। ये किसी एक में अतिश्रद्धा उत्पन्न कर दूसरे की अवहेलना कराने वाले बन जाते हैं। इसलिए साहेब कहते हैं कि जिसे आप लोग अवतार तथा पैगम्बर मानते हैं, उन्हें मैं गुरु-पीर मानता हूं। गुरु-पीर केवल मनुष्य होता है।

अवतार तथा पैगम्बर के पीछे तो यह झांसा रहता है कि उसकी सब बातें माननी पड़ेंगी। वह जो कुछ कहता है वह सब-का-सब बिलकुल तय है, क्योंकि वह सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान सत्ता का सन्देशवाहक है। परन्तु गुरु-पीर की बातों में ऐसा नहीं है। गुरु-पीर मानव है। उसकी बातों पर विचार किया जा सकता है। गुरु के गलत आचरण तथा गलत बातों को त्याग देने का अधिकार है। हमें चाहिए कि हम अपने पूर्वजों पर श्रद्धा रखें, परन्तु उनकी गलत बातों को न लें, उनकी केवल अच्छी बातों को लें। श्रुति के ऋषि भी कहते हैं—"जो

हमारे अच्छे आचरण हैं उन्हें ग्रहण करो और जो गलत आचरण दिखें उन्हें न लो।"

संसार के महापुरुषों को कबीर साहेब कहते हैं कि वे हमारे गुरु-पीर हैं— यह अर्थ किसी को बुरा भी लग सकता है और वह कह सकता है कि कबीर साहेब तो स्वयं परम गुरु थे। वे दूसरे किसी को अपना गुरु नहीं कह सकते। परन्तु ऐसे विचार वाले यह ध्यान रखें कि कबीर साहेब उदार सन्त थे। वे अपने श्रोता तक को गुरु कह देने के लिए तैयार हो जाते हैं जो सत्य को समझता है "कहहिं कबीर जो अबकी बूझै, सोई गुरू हम चेला।" फिर अपने पूर्वजों को गुरु-पीर कह देना तो बहुत ही शोभनीय है। इस कथन से कबीर साहेब की महत्ता घटती नहीं, किन्तु बढ़ती है। और यह भी तथ्य है कि सभी महापुरुष अपने पूर्वजों से कुछ-न-कुछ पाते ही हैं। उनकी अच्छाइयों से तो उन्हें मिलता ही है उनकी गलतियों से भी सावधानी मिलती है। और फिर जिस लहजे में यहां सद्गुरु ने "सो गुरु पीर हमारा" कहा है, वह बड़ा मोहक, शालीनतापूर्ण एवं सर्वजन प्रेरक है।

बाह्याडंबर छोड़कर सारतत्त्व पर ध्यान दो

शब्द-98

आव बे आव मुझे हरि को नाम, और सकल तजु कौने काम 1
कहाँ तब आदम कहाँ तब हव्वा, कहाँ तब पीर पैगम्बर हुवा 2
कहाँ तब जिमी कहाँ असमान, कहाँ तब बेद कितेब कुरान 3
जिन दुनियाँ में रची मसीद, झूठा रोजा झूठी ईद 4
साँचा एक अल्लह को नाम, जाको नइ नइ करो सलाम 5
कहुँधौं बिहिस्त कहाँ ते आई, किसके कहे तुम छुरी चलाई 6
कर्ता किरतम बाजी लाई, हिन्दू तुरुक की राह चलाई 7
कहाँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहो तब किरतम किन उत्पाती 8
नहिं वाके जाति नहीं वाके पाँती, कहहिं कबीर वाके दिवस न राती 9

शब्दार्थ—आव= आ, आओ। बे= अरे। आदम= यहूदी, ईसाई, इसलामी आदि सभी सामी मत वालों द्वारा माना गया सृष्टि का प्रथम पुरुष। हव्वा= हौवा, आदम की पत्नी, सामी मत वालों द्वारा मान्य सृष्टि की आदि माता, जगज्जननी। मसीद= मसजिद। रोजा= रमजान महीने में दिन का उपवास।

. यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। (तैत्तिरीय उपनिषद्, 1/11)

. बीजक, शब्द 1।

ईद=मुसलमानों का त्योहार। बिहिस्त=बिहिश्त, स्वर्ग। कर्ता=ईश्वर। किरतम= कृत्रिम, निर्मित, शास्त्र, मत, मजहब आदि। बाजी=खेल, धोखा, चालाकी।

भावार्थ—अरे भोले ! इधर आ और सुन ! मेरी समझ से तू केवल हरि का नाम ले, हरि के तत्त्व को समझ, शेष सारे बाह्याडंबरों को छोड़ दे। ये दिखावे के धर्म किस काम के हैं? 1 तब आदम कहां थे और हौवा भी कहां थीं? तब पीर-पैगम्बर भी कहां पैदा हुए थे? 2 तब जमीन और आसमान भी कहां थे और तब वेद, किताब और कुरान भी कहां थे? 3 जिन्होंने दुनिया में मसजिद बनायी वे तब कहां थे? सच पूछो तो रोजा व्यर्थ है और ईद भी व्यर्थ है 4 सच्चा तो एक अल्लाह का नाम है जिसको तुम झुक-झुककर सलाम करते हो 5 कहो भला, ये बिहिश्त कहां से आ गयी जिसको पाने के लिए तुम कुर्बानी का नाम लेकर जीव-हत्या करते हो? किसकी आज्ञा से तुमने मासूम जानवरों पर बेरहमी से छूरी चलायी है? 6 इन सारे कृत्रिम आडंबरों के मूल में ईश्वर का नाम लेकर और उसके द्वारा इन्हें प्रमाणित बताकर तो मनुष्य के साथ छलावा ही किया गया है और इसी छलावा की आड़ में हिन्दू, तुरुक आदि के अनेक मजहब फैलाये गये हैं जो एक सत्य को निरंतर काटने में लगे रहते हैं 7 तब उसमें दिन कहां था, रात कहां थी? फिर तब बनावटी बातें एवं नाना आडंबर किसने पैदा किये? 8 कबीर साहेब कहते हैं कि जो सबका प्रेमास्पद एवं परम प्राप्तव्य निज आत्मस्वरूप है न उसमें जाति है और न पांति है, न उसमें दिन है और न रात है 9

व्याख्या—स्वतंत्रचेता, विशालहृदय, पूरी मानवता को एक में समेट लेने की इच्छा रखने वाले परम संत कबीर का हृदय छटपटाता था कि आदमी कैसे उस तत्त्व को समझे जिससे उसके सारे आपसी भेदभाव मिट जायें और संसार में इनसानियत की धारा बहने लगे। मजहबों के बाह्याडंबर ही मनुष्य-मनुष्य के बीच में दीवार बनते हैं। धर्म के असली रूप शील, क्षमा, प्रेम, दया, करुणा, अहिंसा, संयम, परहेजगारी आदि हम जितना ही धारण करें उतना स्वयं सुखी होंगे और दूसरों को सुख पहुंचायेंगे।

कबीर साहेब के समय में हिन्दू और मुसलमान—दो परंपराएं मुख्य थीं जो अपने-अपने बाहरी आडंबरों को लेकर आपस में लड़ रही थीं। लड़ाई के कारण दोनों के केवल बाहरी आचार थे और वही आज भी हैं, जैसे मंदिर-मसजिद, मुहर्रम, ईद, बकरीद, घंटा, अजान आदि। यह ठीक है कि सभी मनुष्य केवल उच्च ज्ञान को नहीं समझ सकते। यह जरूरी है कि उनके मनोरंजन एवं उपासना-पूजा के लिए कुछ सरल ढंग हो, तीज-त्योहार हो, ईद-

बकरीद हो, परन्तु यदि इन सब बातों को लेकर आपस में ईर्ष्या-द्वेष की आग जले तथा लट्ठमलट्ठ हो तो ये सब किस काम के?

इस शब्द में ज्यादातर मुसलमानों के बाह्याडंबर पर कहा गया है। हिन्दू-मुसलमान तथा सभी ईश्वरवादी मत यह मानते हैं कि पहले यह दुनिया नहीं थी। किसी काल में यह बनी। कबीर साहेब कहते हैं कि जब दुनिया नहीं थी, तब आदम, हौवा और पीर-पैगंबर भी कहां थे? तब तो वेद, कुरान तथा कोई भी धर्मशास्त्र नहीं था। इन सबका अर्थ यह हुआ कि पीर-पैगंबर तथा धर्मशास्त्र की बातें सब पीछे आयी हैं। पहले कभी दुनिया नहीं थी या सदैव से थी, दोनों ही दृष्टियों से यह सिद्ध होता है कि सारी मजहबी भावनाएं, अवतारवाद, पैगंबरवाद, ईश्वरीय किताब आदि की बातें सदा से नहीं थीं। हिन्दू हो या मुसलमान, यहूदी हो या ईसाई या अन्य मत-मजहब, सबके अपने इतिहास हैं। सभी मजहबों, वादों तथा पुस्तकों के निर्माण एवं रचना का अपना-अपना काल है। उसके पहले उनकी बातें नहीं थीं। इसलिए किसी मजहब एवं संप्रदाय की किताब, वाद एवं नियम अनादि-अनन्त नहीं हैं और न वे सारी दुनिया के केन्द्रबिन्दु हैं।

यहूदी, ईसाई, मुसलमानादि सामी[.] मत वाले सृष्टि का प्रथम मानव आदम को मानते हैं। यहोबा (ईश्वर) ने सोते हुए आदम की बाईं पसली निकालकर हौवा नाम की नारी बनायी और वही आदम की पत्नी बनी तथा सृष्टि की प्रथम नारी। इसकी कथा बाइबिल में लिखी है। पीछे इनमें मूसा, ईसा, मुहम्मद आदि कई महापुरुष ईश्वर के संदेशवाहक-पैगंबर माने गये। कबीर साहेब सामी मत वालों से कहते हैं कि तुम्हारे मतानुसार पहले केवल ईश्वर था और कुछ नहीं था। तो सादे ढंग से उसी ईश्वर को ही क्यों नहीं जपते हो? आदम, हौवा, पीर, पैगंबर, किताब, कुरान आदि का घमंड लेकर क्यों समाज को तोड़ते हो? मसजिद तुमने बनायी, रोजा, नमाज, ईद-बकरीद तुमने कायम किये तब इन्हीं सब कृत्रिम बातों को लेकर मानव समाज में दरारें क्यों बना रहे हो? जो आदम, हौवा, पैगंबर, कुरान, मसजिद, रोजा, ईद-बकरीद को माने और उसके अनुसार चले वही सच्चा धर्मी है और जो इन सब को न मानता हो, इनका न पालन करता हो, वह धर्मी नहीं है ऐसी संकुचितता क्यों! सच्चा तो अल्लाह का नाम है, इसलिए उसी को श्रेय दो। आडंबर में क्यों उलझते हो जो तुम्हारा ही बनाया है। तुम्हारे मतानुसार ही अल्लाह स्वयंभू है; परन्तु पीर-पैगंबर, मसजिद, रोजा, ईद वगैरह तो तुम्हारे बनाये हैं।

. बाइबिल के अनुसार 'साम' नाम के व्यक्ति 'नूह' के पुत्र थे। अरब, यहूदी, मिस्री आदि 'साम' की ही संतान माने जाते हैं। इसलिए यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि के मजहब सामी मजहब कहलाते हैं।

तुमने बिहिश्त की कल्पना कर ली और उसके पीछे यह लगा दिया कि कुरान, मुहम्मद तथा इसलाम के द्वारा ही उसे पाया जा सकता है। यहां अल्लाह जो सार्वभौमिक धारणा है उसकी उपेक्षा कर दी गयी और कृत्रिम बातों को ऊपर ला दिया गया। अल्लाह को तो राम, ईश्वर आदि अन्य नामों से दूसरे लोग भी जपते हैं, परन्तु कुरान, मुहम्मद और इसलाम सब नहीं स्वीकार सकते। इनसान को चाहिए कि वह धर्म के ऐसे आधारबिन्दु पर जोर दे जहां पर सब इकट्ठे हो सकें। बिहिश्त के पीछे एक भयंकर धारणा लगा दी गयी—कुर्बानी के नाम पर जीवहत्या। साहेब कहते हैं कि तुम केवल एक ईश्वर के भक्त बनते हो, तो यह बताओ कि तुम किसकी आज्ञा से मूक प्राणियों पर छूरी चलाते हो? क्या ईश्वर ने आज्ञा दी है? ईश्वर ऐसी आज्ञा कभी नहीं दे सकता। वह अपने फरजंदों की हत्या करने की आज्ञा कैसे दे सकता है? वह निहायत रहम वाला है, फिर उससे बेरहमी की आज्ञा हो भी कैसे सकती है? अतएव यह जीवहत्या कर स्वर्ग पाने की बात भी तुम्हारी बनावटी है। इसमें तुम्हारा भ्रम तथा जीभ-स्वाद कारण है।

"कर्ता किरतम बाजी लाई, हिन्दू तुरुक की राह चलाई।" चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या दूसरे ईश्वर वाले, सबने अपने-अपने बनाये नियमों, किताबों, अवतारों, पैगंबरों को ईश्वर से जोड़ रखा है। सब यही कहते हैं कि हमारी किताब ईश्वरीय है, हमारा महापुरुष ईश्वर का अवतार, पैगंबर आदि है, हमारे मत के सारे नियम ईश्वरप्रदत्त हैं। साहेब कहते हैं कि यह कर्ता कृत्रिम की बाजी है, अर्थात अपने सारे कृत्रिम आडंबरों को कर्ता से जोड़ने का गोरखधंधा है। जब अपने बनाये आडंबर ईश्वर से जोड़ दिये जाते हैं तब वे प्रामाणिकता के जामा पहन लेते हैं। तब वहीं एक दूसरे मत से आस्तिक-नास्तिक, दीनदार-बेदीन तथा पवित्र-अपवित्र का घृणित व्यवहार चलता है।

"कहाँ तब दिवस कहाँ तब राती, कहो तब किरतम किन उत्पाती।" ईश्वरवादानुसार तो सृष्टि के पहले दिन-रात तथा उनमें होने वाले सारे व्यवहार ही नहीं थे, तब इन कृत्रिम बातों को किसने पैदा किया? वस्तुतः सारी कल्पनाएं मनुष्यों की हैं।

आत्मा में कोई जाति-पांति और दिन-रात नहीं है। उसी प्रकार जैसी ईश्वर की अवधारणा है उसके अनुसार ही उसकी भी कोई जाति-पांति नहीं है और न उसमें रात-दिन तथा उनमें होने वाले व्यवहार हैं। इसलिए जब वह सार्वभौमिक है तब उसमें बाह्याडंबर न जोड़कर उसे सार्वभौमिक ही रहने दो। जो सार्वभौमिक है उसे मत-मजहब एवं बाह्याचार की संकुचित डिबिया में न बंद करो।

जो लोग आत्मा से अलग ईश्वर मानते हैं, इस पद में सद्गुरु कबीर ने उन्हें उसी ढंग से समझाया है। इस पूरे पद का सार यही है कि सत्य को बाह्याचार एवं आडंबर में विखंडित मत करो। यदि हर मत वाले अपने बाह्याचार को गौण स्थान दें और केवल सत्य पर जोर दें तो सत्य सार्वभौमिक होने से सब में समन्वय तथा एकता होगी, मानव-समाज के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है।

वस्तुतः हर मनुष्य का प्राप्तव्य उसका अपना आत्मस्वरूप है, और वह शुद्ध चेतन है। वही ईश्वर है, वही अल्लाह है "दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।" इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए किसी सांप्रदायिकता की आवश्यकता नहीं है, किन्तु सच्चे सद्गुरु की शरण की आवश्यकता है।

जीवन की नश्वरता

शब्द-99

अब कहाँ चलेउ अकेले मीता, उठहु न करहु घरहु की चिन्ता 1
खीर खाँड़ घृत पिण्ड सँवारा, सो तन लै बाहर कै डारा 2
जो शिर रचि रचि बाँधहु पागा, सो शिर रतन बिडारत कागा 3
हाड़ जरे जस जंगल लकड़ी, केश जरै जस घास की पूली 4
आवत संग न जात सँगाती, काह भये दल बाँधल हाथी 5
माया के रस लेइ न पाया, अन्तर यम बिलारि होइ धाया 6
कहहिं कबीर नर अजहु न जागा, यम का मुगदर माँझ शिर लागा 7

शब्दार्थ—खाँड़ = मीठा। पिण्ड = शरीर। बिडारत = विदीर्ण करना, फोड़कर बिखेरना। पूली = गट्ठा। यम = मौत।

भावार्थ—संसार के प्राणी-पदार्थों को अपने मानने वाले हे मित्र ! अब तुम अकेले किधर के लिए चल दिये? उठकर अपने घर-परिवार एवं स्वजनों की चिन्ता करो न ! 1 खीर, खांड़ और घी खाकर जिस शरीर को तुमने बहुत चिकना बनाया था, उस तेरे लालित-पालित शरीर को लोगों ने उठाकर बाहर डाल दिया है 2 तुम जिस सिर में संवार-संवारकर बड़े कौशल से पाग बांधते थे, उस रत्नतुल्य सिर को कौवे फोड़-फोड़कर बिखेर रहे हैं 3 तुम्हारी पुष्ट हड्डियां जंगल की लकड़ी की तरह जल रही हैं और बाल घास के गट्ठे की तरह स्वाहा हो रहे हैं 4 न संसार में आते समय साथ में आये हैं और न जाते समय साथ चलेंगे, फिर फौज-फक्कड़ तथा हाथी-घोड़े बांधने से तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ! 5 तू इच्छानुसार माया का आनन्द नहीं ले पाया,

इतने में मौत बिल्ली बनकर तेरे ऊपर टूट पड़ी 6 सद्गुरु कबीर कहते हैं कि संसार में इस प्रकार मौत का तांडव देखकर भी मनुष्य सावधान नहीं होता और देखते-देखते उसके सिर पर मौत का मुगदर लग जाता है 7

व्याख्या—आदमी संसार में आकर घोर माया-मोह में लिप्त हो जाता है। वह घर-परिवार सम्हालने की चिन्ता में इतना पड़ जाता है कि यह भूल ही जाता है कि यहां से अचानक जाना है। इस नाशवान संसार से सर्वथा अनासक्त होकर अपने अविनाशी स्वरूप-बोध में रमना जीवन का फल है, परन्तु इसका उसे पता ही नहीं रहता। यदि पता भी पा जाये तो भी वह अपने आप को संसार में इतना जोड़ लेता है कि जीवनभर अविनाशी आत्माराम से बेभान ही रहता है।

जो संसार के प्राणी-पदार्थों को दृढ़ कर अपना मानता है, उन्हीं के मोह में डूबा रहता है और ऐसा करते-करते एक दिन अचानक इस संसार से सदैव के लिए चला जाता है, उसको लक्ष्य करके सद्गुरु कहते हैं कि हे दीवाने ! तू तो मानता था कि यह घर मेरा है, परिवार मेरा है, ये मित्र-सम्बन्धी मेरे हैं। तू इनमें लीन होकर सत्संग के लिए थोड़ा भी समय नहीं निकाल पाता था। तू कहता था कि घर-परिवार को सम्हालने में ही मेरे समय चले जाते हैं। ये मेरे अपने लोग हैं। इनके लिए मेरी अपनी जिम्मेदारियां हैं। मेरे बिना ये कैसे रहेंगे। परन्तु हे मोह-मदिरा पीकर उन्मत हुआ आदमी, तू इस संसार से उठकर अकेले कैसे चल दिया? अपने स्वजनों के प्रति पूरी जिम्मेदारी निभाये बिना बीच ही में तू यहां से कहां चला गया, तेरे इतने-इतने साथी, और तू चलते समय किसी एक को भी साथ न ले जा सका। तेरा नकली नक्शा चेष्टाहीन होकर जमीन पर पड़ा है। तू अपने प्यारे स्वजनों के विलाप करते हुए मुख की ओर भी नहीं देखता है। जिनके लिए तू अपनी जान देता था उनके लिए तू इतना विरत हो गया है। उठो न ! घर की चिन्ता करो। तुम्हारे अपने माने हुए स्वजन रो रहे हैं। उनके आंसू पोंछो। उन्हें सांत्वना दो। उन्हें स्नेह देकर उनकी रक्षा का आश्वासन दो। परन्तु हाय ! यह सब अब सम्भव नहीं है। जो यहां से एक बार उठ गया, वह कभी लौटकर नहीं आया। अदना जीवों की बातें छोड़ो, जो लोग संसार में बहुत प्रसिद्ध हैं क्या वे लौट सके? जिन लोगों को जनता ने भगवान एवं पैगम्बर माना, अपना परम प्रेमास्पद माना, वे भी यहां लौटकर नहीं आ सके। आने का कोई चारा नहीं है।

हम अपने माने हुए शरीर को अनेक पौष्टिक खाद्य पदार्थों का सेवनकर बलवान बनाने के चक्कर में पड़े रहते हैं। जब तक शरीर है इसे उचित खान-पान के द्वारा स्वस्थ रखना देहधारी का कर्तव्य भी है। परन्तु कितने मोहग्रस्त लोग खीर, खांड़ एवं घृत से ही नहीं अनेक भस्म एवं कीमती-कीमती रस-

रसायन सेवनकर इस शरीर को अजर-अमर या कम-से-कम इसे बहुत दिनों तक सुरक्षित रखने की दुराशा करते हैं। परन्तु अनेक यत्न से बहुत लालित-पालित यह शरीर अचानक छूट जाता है। शरीर छूटने की संभावना होते ही लोग उसे खाट से उतारकर जमीन पर लेटा देते हैं और प्राण निकलते ही "ले चल ले चल करते भाई" जीव के निकल जाने पर सब यही कहते हैं कि ऐ भैया, जिस हंसा से नाता था, वह चला गया, अब कोई मिट्टी को रखकर क्या करेगा !

हम अपने माने हुए शरीर के एक-एक अंग के प्रति रागवान होते हैं। आदमी अनेक वस्त्रों एवं अलंकारों से इन्हें सजाता है। शरीर की भयंकर परिणामशीलता का उसे होश नहीं रहता। बहुत प्रकार से सजाये जाने वाले इस शरीर की अन्तिम दशा क्या होती है यह किसी से छिपी हुई नहीं है। यह यदि मैदान में पड़ा रहे तो जानवर फोड़-फोड़कर इसकी दुर्गति कर देते हैं, यदि इसे पानी में डाल दें तो यह कछुआ-मछली आदि का आहार हो जाता है, यदि मिट्टी में गाड़ दिया गया तो यह सड़ जाता है तथा इसे कीड़े-मिट्टी खा लेते हैं और यदि इसे आग में रख दिया गया तो भक्क से जलकर मिनटों में राख हो जाता है। ऐसी है यह अपनी मानी गयी सुरक्षित काया। इसी पर केन्द्रित हैं हमारे सारे अभियान ! कितने धोखे की टट्टी में आदमी जी रहा है !

धन है, जमीन है, मकान है, परिवार है, मित्र हैं, फौज-फक्कड़ है, घोड़े-हाथी हैं, कार-मोटर हैं, मान-अधिकार हैं और पता नहीं कितना-कितना अपना माना हुआ सब कुछ है। परन्तु ध्यान रहे, इनमें से एक वस्तु भी हमने साथ में लायी नहीं है और न चलते समय एक वस्तु साथ में चलेगी। फिर इनका अहंकार करने से क्या फल होगा ! सपने में हम भिखार हैं या राजा, जाग जाने पर क्या हानि-लाभ ! संसार के ये सपने मनुष्य को छलते हैं। हम मूढ़ हैं जो इन सपनों में छले जाते हैं। संसार की मानी गयी सारी उपलब्धियां अन्ततः झूठी हैं। मोह-मूढ़ मनुष्य संसार के प्राणी-पदार्थों को अपने छाती-पेटे लगाये रखने का हठ करता है जो उसके कभी नहीं हो सकते।

आदमी सांसारिक प्राणी-पदार्थों एवं भोगों से बड़ी लम्बी-लम्बी आशाएं करता है। वह संसार में डूबकर तथा छककर आनन्द लेता है, परन्तु तृप्ति पाये बिना संसार से चला जाता है। वह तृप्त हो भी नहीं सकता। चाहे मनुष्य लाखों वर्ष तक भोगों को भोगने का अवसर पा जाये, परन्तु उसे तृप्ति नहीं मिलेगी। भोगों में किसी को भी तृप्ति नहीं मिलती। जैसे घी डालने से आग बुझती नहीं है, किन्तु उलटे प्रज्वलित होती है, वैसे भोगों से इच्छाएं बुझती नहीं हैं, किन्तु बढ़ती हैं। अधिकतम लोगों को तो भोग मिलते ही नहीं हैं, कुछ लोगों को

मिलते हैं, परन्तु इच्छानुसार नहीं मिलते। और तृप्ति तो किसी की भी नहीं होती। इतने में देहाभिमानीरूपी चूहे पर मौतरूपी बिल्ली कूद पड़ती है। मौत सभी देहाभिमानियों को उनकी अधूरी इच्छाओं के बीच में से ही उठा लेती है। संसार का हर आदमी करने और भोगने की लालसा लेकर ही यहां से जाता है। ऐसा पुरुष दुर्लभ है जिसे ऐसा लगता हो कि मुझे जो कुछ करना था कर लिया और जो कुछ पाना था पा लिया। कृतकार्य और कृतकाम मनुष्य धन्य है। जीवन में पूर्ण सफल वही है जो कृतकार्य एवं कृतकाम है, अर्थात जिसने सारी कामनाएं त्याग दी हैं।

तुम समर्थ हो, माया-मोह की दीनता छोड़ो

शब्द-100

देखउ लोगा हरि केर सगाई, माय धरि पूत धियऊ संग जाई 1
सासु ननद मिलि अचल चलाई, मँदरिया के गृह बैठी जाई 2
हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा 3
कहहिं कबीर ये हरि के बूता, राम रमेते कुकुरि के पूता 4

शब्दार्थ—हरि= ज्ञानस्वरूप चेतन। सगाई= रिश्ता, नाता, मित्रता। माय= माता, माया। धियऊ= पुत्री, बुद्धि। सासु= संशय। ननद= कुमति। अचल= निश्चल चेतन। मँदरिया= मदारी, बाजीगर, मन। बहनोई= जीजा, वहन करने तथा धारण करने वाला। राम= आत्मतत्त्व। सारा= सत्य। हरि= ज्ञानतत्त्व। हरि के बूता= चेतन की शक्ति, ज्ञानशक्ति। राम= चेतनात्मा। कुकुरि= मुरगी, कुतिया। पूता= पुत्र, बच्चा।

भावार्थ—हे लोगो! यह मनुष्य जो स्वरूपतः हरि है, ज्ञानस्वरूप है, इसकी भूल तो देखो, यह अपना रिश्ता कहां लगा रहा है, यह कहां मित्रता कर रहा है, इस पर ध्यान दो। जैसे पुत्र माता को पकड़ ले तथा पिता पुत्री के साथ आसक्त हो जाये तो यह अनर्थ है, वैसे जिस माया से जीव के जन्मादि बंधन होते हैं उसी में वह पुनः आसक्त होता है और अपने द्वारा पैदा की हुई बुद्धि को मलिन बना उसके साथ पतित होकर अनर्थ कर रहा है 1 संशयरूपी सासु तथा कुमतिरूपी ननद मनरूपी बाजीगर के पास जा बैठीं और उन्होंने स्वरूपतः निश्चल चेतन जीव को चंचल बना दिया। अर्थात मन के संशय और कुमति ने जीव को विचलित कर दिया 2 जैसे मानो ऋष्य शृंग कह रहे हों कि श्री राम की बहिन शांता से मेरा विवाह होने से मैं राम का बहनोई हूं, राम मेरे साले हैं और जिससे राम पैदा हुए हैं वह पुत्रेष्टियज्ञ मेरे द्वारा ही होने से मैं ही मानो राम का पिता हूं और राम मेरे पुत्र हैं; वैसे ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि वस्तुतः हम

चेतन ही ज्ञान-विज्ञान के वहन एवं धारण करने वाले हैं और आत्माराम ही हमारा सार-स्वरूप है। हम ही समस्त ज्ञान-विज्ञान के पिता हैं तथा ज्ञान हमारा पुत्र है 3 कबीर साहेब कहते हैं कि यह सारा ज्ञान-विज्ञान चेतन की शक्ति है। राम तो कुकुरी के बच्चे में भी रम रहा है, फिर मनुष्य की बात तो महान है। वह विवेक-साधनसंपन्न है। वह माया को जीतकर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकता है 4

व्याख्या—कबीर साहेब अपनी बातें व्यंग्यात्मक ढंग से कहने में बहुत माहिर हैं। वे इस शब्द में पहला व्यंग्य जीव की स्वरूपतः उच्चता तथा दूसरी तरफ उसकी घृणित जगह लगाव को लेकर करते हैं। वे कहते हैं "देखउ लोगा हरि केर सगाई" यह जीव, यह मनुष्य हरि है, परमात्मा है, उच्चतम सत्ता है। जीव का शुद्ध स्वरूप ज्ञानमात्र एवं पूर्णकाम है। पूर्णकाम ही तो हरि है; परंतु यह मूलतः हरि स्वरूप जीव कहां अपनी सगाई करता है, यह कहां-कहां अपने रिश्ते-नाते जोड़ता है उस पर ध्यान देने से "नाम बड़े दर्शन छोटे" कहावत की याद आती है। यह मूलतः महान होते हुए भी मलिन वस्तुओं में रमता है क्योंकि इसे अपने स्वरूप का बोध नहीं है।

"माय धरि पूत धियऊ संग जाई" जन्मदात्री माता से यदि पुत्र वासनात्मक व्यवहार करे और पिता अपनी पुत्री से इस ढंग से पेश आये तो ये महान घृणित कार्य हैं। इससे घृणित और क्या हो सकता है? जीव माया से ही तो देहधारण करता है। यहां माया ही मानो माता है जिससे जीव के जन्मादि चक्कर चलते हैं, परन्तु वह उलटकर पुनः उसी में आसक्त होता है। माया में आसक्त होना मानो माता के साथ दुर्व्यवहार करना है। पिता से पुत्री पैदा होती है। अपनी पुत्री के साथ दुर्व्यवहार कभी क्षम्य नहीं हो सकता। मनुष्य से ही बुद्धि पैदा होती है, इसलिए बुद्धि मनुष्य की मानो पुत्री है और मनुष्य अपनी बुद्धि का ही दुरुपयोग करता है अथवा अपनी बुद्धि को मलिन बनाकर उसके साथ बहता है।

"सासु ननद मिलि अचल चलाई, मदरिया के गृह बैठी जाई।" संसार में यह अधिक देखा जाता है कि सासु और ननद बहू को परेशान करती हैं। साहेब ने इस ग्रन्थ में सासु-ननद को विवाद का पर्याय ही मान लिया है। साहेब-कथित सासु-ननद व्यक्ति नहीं हैं, किन्तु प्रतीकात्मक हैं। वे हैं क्रमशः संशय तथा कुमति। मन है मदारी अर्थात जादूगर। इस जादूगर मन से पैदा हुए संशय और कुमति अचल जीव को चंचल कर दिये हैं। इस मन-मदारी ने संशय और कुमति को भेजकर जीव को भ्रमित कर दिया है। संशय से ग्रसित होने पर जीव स्थिर नहीं हो पाता, इधर कुमति उसको उलटा पाठ पढ़ाकर हितकर को अहितकर तथा अहितकर को हितकर सिद्ध करती है। जीव स्वरूप से अचल

है। कल्पना करो, यदि तुम्हारे मन में इच्छा, वासना, संदेह एवं भ्रम न हों तो तुम्हारे चंचल होने का कोई कारण ही नहीं है। जीव स्वभावतः अचल है, शांत है, तृप्त है। वह तो मन के उद्वेग से ही चंचल होता है। इस अचल एवं शांत जीव को मन के संशय एवं कुमति ने विचलित कर दिया है। अतएव जिसे शांति प्रिय हो उसे चाहिए कि वह अपने मन से संदेह एवं कुमति को निकाल दे। शुद्ध बोध से संशय समाप्त हो जाता है तथा निष्कपट सेवा-सत्संग से कुमति समाप्त हो जाती है। मनुष्य को व्यवहार तथा अध्यात्म दोनों में संशय रहता है। व्यावहारिक संशय यह है कि जीवन-निर्वाह कैसे होगा, बुढ़ापा तथा रोग में कौन सहयोग करेगा, ये स्वजन द्वेषी न हो जायें, शत्रु हमारी हानि न कर दें इत्यादि। इस संशय का समाधान इस विवेक में है कि देह के साथ प्रारब्ध है वह अटल है। हस्ती से कीट तक सबका देह-निर्वाह होता है तो हमारा क्यों नहीं होगा! आदमी पहले से व्यर्थ में चिन्ता करता है, समय आने पर सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है। समय सारी समस्यारूपी रोग की औषध है। हम स्वयं विचार से रहें तो हमारा कोई शत्रु नहीं है और यदि हम गलत व्यवहार करने लगेंगे तो हमारी रक्षा कोई नहीं कर सकता। प्रारब्ध, परिश्रम तथा पवित्र कर्मों पर जिसे विश्वास हो जाता है उसके व्यावहारिक संशय नष्ट हो जाते हैं। आध्यात्मिक संशय है कि मेरा स्वरूप क्या है? जड़ है कि चेतन? मैं किसी का अंश या प्रतिबिंब हूं या स्वतः? मेरा आश्रय मैं स्वयं ही हूं कि अलग है? जब शुद्ध विवेक उदय होता है तब यह बोध हो जाता है कि मैं किसी का अंश, प्रतिबिम्ब एवं टुकड़ा नहीं, किंतु स्वयं पूर्णस्वरूप हूं। मेरा आश्रय अलग कहीं नहीं, किन्तु मेरी अपनी आत्मा ही है। मैं जड़ से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन हूं। सारी वासनाओं को छोड़कर मैं स्वयं मुक्तस्वरूप हूं। इस प्रकार जिसे ठीक से निजस्वरूप का बोध हो जाता है उसका आध्यात्मिक संशय नष्ट हो जाता है। दूसरी बात है कुमति। यह संतों-गुरुजनों की सेवा, भक्ति, सरलता, निष्कपटता एवं सत्संग से नष्ट हो जाती है। इस प्रकार संशय और कुमति के नष्ट हो जाने पर जीव परम विश्रांति पाता है।

"हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।" ऋष्य शृंग की पत्नी शांता थी जो वाल्मीकीय रामायण के दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार रोमपाद की पुत्री थी; परन्तु वाल्मीकीय रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ के अनुसार राजा दशरथ की पुत्री थी। अधिक प्रसिद्धि यही है कि दशरथ की पुत्री शांता को अंगदेश के राजा रोमपाद ने गोद ले लिया था। कारण यह है कि पीछे

. वाल्मीकीय रामायण 1/9/13; 1/11/19।

. पूर्वी बिहार भागलपुर के आस-पास का क्षेत्र अंगदेश कहलाता था।

के रामायणों तथा पुराणों में ज्यादातर यही लिखा गया कि शांता दशरथ की पुत्री थी। रोमपाद दशरथ के मित्र थे। वे निःसंतान थे, इसलिए दशरथ ने अपनी पुत्री शांता को उन्हें गोद दे दिया था। परन्तु रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में स्वयं दशरथ को 'अनपत्य' अर्थात संतानहीन बताया गया है। इस रामायण के अनुसार दशरथ की साढ़े तीन सौ पत्नियां थीं और किसी से संतान नहीं थी। इसका अर्थ है कि दशरथ में ही संतान देने की योग्यता नहीं थी। इसलिए उन्हें 'अनपत्य' कहा गया। दशरथ तथा अंगदेश के राजा रोमपाद से मित्रता थी। दशरथ अधिक प्रसिद्ध होने से पीछे की रामायणों एवं पुराणों में शांता दशरथ की पुत्री ही बतायी जाने लगी। आज की जनश्रुति यही है कि शांता दशरथ की पुत्री थी जिसे रोमपाद ने गोद लिया था। इतना तो सब कहते हैं कि शांता ऋष्यशृंग की पत्नी बनी।

इस प्रकार अनेक रामायणों और पुराणों तथा जनश्रुति के अनुसार शांता दशरथ की पुत्री होने से श्रीराम की बहिन थी। इसलिए ऋष्यशृंग कह सकते हैं कि मैं राम का बहनोई हूं तथा राम मेरे साले हैं। ऋष्यशृंग के ही द्वारा यज्ञ करने पर रामादि चारों भाई पैदा हुए थे, तो वे मानो राम के पिता हुए और राम उनके पुत्र हुए। यहां इसे प्रतीकात्मक रूप से लिया गया है। यहां का सार अर्थ है कि ज्ञानी कहता है कि मैं ज्ञान-विज्ञान का वहन एवं धारण करने से ज्ञान का बहनोई हूं; ज्ञान की बहिन शांता अर्थात शांति मेरी पत्नी है, ज्ञानी सदैव शांति में रमण करता है। जो ज्ञान का वहन करता है, जो ज्ञान को धारण करता है, वह निश्चित ही शांति में रमण करता है। राम उसका सार होता है। सार कहते हैं मूलतत्त्व एवं सत्य को।

"हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा" ज्ञानी कहता है कि मैं पिता हूं और हरि मेरा पुत्र है। यदि हरि का अर्थ आत्मभिन्न ईश्वर माना जाये तो अर्थ होगा कि ज्ञानी कहता है कि मैं ईश्वर का पिता हूं और ईश्वर मेरा पुत्र है। ज्ञानी मनुष्य है और मनुष्य ही ने अपनी कल्पना से ईश्वर को जन्म दिया है। इसलिए ज्ञानी एवं मनुष्य पिता है तथा ईश्वर मनुष्य का पुत्र है। परन्तु यहां हरि का तात्त्विक अर्थ है ज्ञान। ज्ञानी अर्थात जीव पिता है और ज्ञान उसका पुत्र है। जीव ही से ज्ञान पैदा होता है।

"कहहिं कबीर ये हरि के बूता" हरि चेतन है, बूता बल एवं शक्ति है। सद्गुरु कहते हैं कि सारा ज्ञान-विज्ञान चेतन की शक्ति है। हरि के अर्थ चेतन

. वाल्मीकीय रामायण 1/11/5।

. वाल्मीकि दाक्षिणात्य 2/34/13।

. वाल्मीकि दाक्षिणात्य 1/11/3।

तथा ज्ञान दोनों हैं। वस्तुतः चेतन एवं ज्ञान एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। इसलिए हरि का इस शब्द में जहां जिस अर्थ से संगति बैठती है वैसा किया गया है। संसार की सारी विचार-पद्धतियां चेतन एवं ज्ञान के ही बलबूते का फल है। "राम रमेते कुकुरी के पूता।" राम तो कुकुरी के पूत में भी रम रहा है, फिर मानव में तो कहना ही क्या ! वह तो विवेक-साधनसंपन्न भूमिका में है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपने हरिस्वरूप, रामस्वरूप एवं शुद्ध-बुद्ध चेतनस्वरूप को समझे और घृणित माया की सगाई का त्याग करे।

इस शब्द में सद्गुरु ने बताया कि यह जीव, यह मनुष्य स्वयं हरि एवं परमात्मा है। परन्तु इसने मलिन माया से मोह कर लिया है। इसलिए संशय और कुमति से ग्रसित होकर चंचल हो गया है। इसे मनरूपी जादूगर ने नचा डाला है। साहेब मनुष्य को साहस देते हैं कि तुम ज्ञान-विज्ञान के धारक हो, शांति तुम्हारी अभिन्न प्रिया है, तुम्हारा स्वरूप ही राम है, तुम्हीं सारे ज्ञान-विज्ञान के जनक हो, सारा ज्ञानक्षेत्र तुम्हारी शक्ति का चमत्कार है। तुम माया को जीतकर अपने स्वरूप में स्थित हो सकते हो। अपनी शक्ति की याद करो।

मन की विपरीतता को समझकर उसे छोड़ो

शब्द-101

देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझै बिरला कोई 1
धरती उलटि आकाशै जाय, चिउँटी के मुख हस्ति समाय 2
बिना पवन सो पर्वत उड़े, जीव जन्तु सब वृक्षा चढ़े 3
सूखे सरवर उठे हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा 4
बैठा पण्डित पढ़े पुरान, बिनु देखे का करत बखान 5
कहहिं कबीर यह पद को जान, सोई सन्त सदा परमान 6

शब्दार्थ—जिय= जी, जीव, जान, मन, चित्त, तबीयत, जीवट, यहां का अर्थ है मन। यह पद= यह उलटवांसी शब्द। हिलोरा= तरंग। चकवा= एक पक्षी जो जाड़े के दिनों में जलाशयों के किनारे पाया जाता है और जिसके विषय में यह प्रसिद्धि है कि रात में जोड़े से उसका वियोग हो जाता है, चक्रवाक। बखान= वर्णन, बड़ाई, गुणकथन। यह पद= यह उलटवांसी शब्द। परमान= प्रमाण, सत्य।

रूपक—देख-सुनकर मन में बड़ा आश्चर्य होता है। इस उलटे दिखते हुए शब्द के भाव को कोई बिरला ही समझेगा। धरती उलटकर आकाश में उड़ी जा रही है, चींटी के मुख में हाथी डूबे जा रहे हैं, बिना पवन के पर्वत उड़ रहे हैं, सभी जीव-जन्तु पेड़ों पर चढ़कर आश्रय ढूंढ़ रहे हैं, सूखे सरोवर में तरंगें उठ

रही हैं, बिना जल के चकवे-पक्षी क्रीड़ा-आनन्द कर रहे हैं, पण्डित व्यासगद्दियों पर बैठकर पुराण पढ़ते हैं और बिना देखी बातों की बड़ाई करते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि इस पद के अभिप्राय को जो समझकर हृदयंगम करेंगे, वे संत सदैव प्रमाणित एवं सत्य-पथ के पथिक होंगे।

भावार्थ—धर्म के नाम पर चलने वाली लम्बी-चौड़ी बातों को देख-सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है। मैं उन्हें व्यंजना एवं संकेत में कहता हूं, इसलिए कोई बिरला समझता है 1 धरती उलटकर आकाश में जा रही है। अर्थात देवता, ईश्वर, स्वर्गादि की धार्मिक कही जाने वाली अजीबोगरीब बातें सुनकर तथा उन्हें सत्य मानकर धरती पर के मनुष्यों के मन आकाश में उड़ने लगते हैं और उन्हें पाने के लिए छटपटाने लगते हैं। यह तो चींटी के मुख में हाथी समाने-जैसी बात हुई। अर्थात मनुष्य के मन में आकाश-पाताल के कुलावे मिलने लगे 2 इतना ही नहीं, बिना पवन के पर्वत उड़ने लगे। अर्थात बिना विचार के बड़े-बड़े विद्वान-ज्ञानी कहलाने वाले लोग भी हवाई-महल बनाने लगे एवं कल्पनाओं में उड़ने लगे। पर्वतों को उड़ते देखकर जैसे भयभीत हो छोटे-छोटे जीव-जन्तु पेड़ों पर चढ़कर अपने रहने का आश्रय खोजने लगे, वैसे बड़े-बड़े विद्वान एवं ज्ञानियों को कल्पनाओं में उड़ते देखकर अशिक्षित सामान्य लोग भी अपनी रक्षा के लिए नाना देवी-देवताओं एवं भूत-प्रेतादि का आश्रय खोजने लगे 3 इतना ही क्या, सूखे सरोवर में तरंगें उठ रही हैं और बिना जल के चकवे क्रीड़ा कर रहे हैं। अर्थात अपनी आत्मा से भिन्न कहीं कोई देव, ईश्वर एवं स्वर्ग न होने पर भी उनके लिए लोगों के मन में तरंगें उठती हैं और बिना सार के वे उनके कल्पना-लोक में क्रीड़ा करते हैं 4 इन सब के मूल में है कि पंडित लोग व्यासगद्दियों पर बैठकर पुराण बांचते तथा उनकी कथा कहते हैं और बिना देखी तथा बिना अनुभव की हुई बातों की बड़ाई करते हैं 5 कबीर साहेब कहते हैं कि मेरे इस व्यंजनात्मक शब्द का भाव जो समझ लेगा वह अनर्गल बातों को छोड़कर सत्य-पथ का राही हो जायेगा। सत्य-पथ का राही ही प्रामाणिक संत है 6

व्याख्या—धार्मिक कहे जाने वाले नाना मतों के पुराणों एवं धर्मशास्त्रों में स्वर्ग के तथा उसमें रहने वाले देवी-देवताओं, हूरों-गिल्मों तथा ईश्वर के ऐसे लुभावने वर्णन हैं जिन्हें सुनकर अशिक्षित ही नहीं शिक्षित और विद्वान लोग भी वहां पहुंचकर उनका आनन्द लेने के सपने देखने लगते हैं। हिन्दू, मुसलिम, ईसाई आदि हर मजहब के पंडित अपने-अपने पुराणों को पढ़ते तथा उनमें लिखी अजीबोगरीब बातों एवं मोहक और आश्चर्यचकित कर देने वाले विषयों का वर्णन करते हैं। वे मुट्ठी भींज-भींजकर उन बातों की बड़ाई करते हैं; परन्तु

वह सब उनका "बिनु देखे का करत बखान" रहता है। इन नाना मतों के पण्डितों ने न तो आज तक किसी देव तथा फ़िरिश्ते से भेंट की है, न ईश्वर से और न किसी स्वर्ग को देखा है; परन्तु इन सब की बड़ाई इस ढंग से करते हैं कि मानो ये उन सब को देखकर आये हैं। इन्हीं नाना मत-मजहबों के पंडितों के बहकावे में आकर लोगों के मन में ऐसी बातों में अंधविश्वास हो गया है जिनमें न कारण-कार्य-व्यवस्था है, न जिनसे विश्व के शाश्वत नियमों से कोई प्रयोजन है। सद्गुरु कहते हैं कि हमें इन लोगों के व्यवहार तथा बातें देख-सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है।

इन लुभावनी बातों में पड़कर इस धरती के लोगों का मन आकाश के सातवें लोक एवं सातवें तपक पर घूम रहा है। ब्रह्मलोक, साकेतलोक, गोलोक, सत्लोक, बैकुंठलोक, शिवलोक, विष्णुलोक, बिहिश्त जहां हूरें, गिल्में, शराब, अप्सराएं, देवता, ईश्वर तथा सारे भोगों को पाने के झूठे आश्वासन दिये गये हैं वहां आदमी जाना चाहते हैं। धरती पर प्रेम तथा सदाचार का व्यवहार कर स्वर्ग बसाना चाहिए था, परन्तु आदमी ने राग-द्वेष, हिंसा, छलावा आदि का व्यवहार कर धरती को नरक बना दिया है। वह उलटी बात सोचता है, धरती छोड़कर आकाश की ओर उड़ता है। सद्गुरु कहते हैं कि आकाश में कुछ नहीं है। हमें धरती पर ही प्रेम तथा संयम से स्वर्ग का अनुभव करना होगा। हमें धरती के जीव देवी-देवता के रूप में दिखने चाहिए। इनसे अलग कहीं देवी-देवता नहीं हैं। सबके साथ अहिंसा, प्रेम और भलाई का व्यवहार ही स्वर्ग-सुख है। अपनी आत्मा ही सत्यलोक, स्वर्गलोक एवं ब्रह्मलोक है। परन्तु पंडित लोग मनुष्यों को बाहर भटका रहे हैं। चींटी के मुख में हाथी समाने लगे तो यह अचरज होगा। मनुष्यों के मन के कल्पनालोक का विशाल साम्राज्य चींटी के मुख में हाथी समाना है। शरीर, उसके सौंदर्य, बल, उपभोग्य कभी स्थायी एवं अनन्त नहीं हो सकते, अतएव कल्पित स्वर्गादि में उन्हीं को पाने की असम्भव कल्पना उसी प्रकार है जैसे चींटी के मुख में हाथी समाना।

बिना पर्वत के पवन उड़ रहे हैं। बड़े-बड़े विद्या तथा ज्ञान के अभिमानी लोग कल्पनाओं के लोक में उड़ रहे हैं। सभी मजहबों के मुल्ला, पंडित, पादरी कल्पनालोक के विलासी हैं। सभी मन के दिवास्वप्न में भटक रहे हैं। साहेब कहते हैं कि ये सब बिना विचार के उड़ रहे हैं। विद्याभिमानी, ज्ञानाभिमानी तथा मताभिमानी लोग ईश्वर, देव, स्वर्ग और स्वर्ग में अनन्तकाल तक मिलने वाले भोगों की कल्पना में उड़ते हैं, तो साधारण और अशिक्षित लोग कल्पित भूत-प्रेत तथा देवी-देवता की पूजा-वंदना कर अपनी सुरक्षा का आश्रय ढूंढ़ते हैं। यही मानो जीव-जन्तु का वृक्षा चढ़ना है। पर्वत आकाश में उड़ते हैं तब जीव-

जन्तु वृक्ष पर ही चढ़कर संतोष करते हैं। पढ़े-लिखे लोगों की कल्पना की उड़ान बहुत ऊंची है, तो अशिक्षितों की थोड़ी ऊंची है। परन्तु पर्वत और चींटी, बड़े कहलाने वाले तथा छोटे कहलाने वाले सब बिना विवेक मन की कल्पना में भटक रहे हैं।

"सूखे सरवर उठे हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा" यही तो कबीर साहेब की उलटवांसी है, जो लोगों की उलटी क्रिया देखकर बन जाती है। अपनी चेतना एवं आत्मारूपी सागर को छोड़कर लोक के विषय हों या कल्पित परलोक के, सब सूखे सरोवर हैं; परन्तु उनके लिए मनुष्यों के मन में तरंगें उठ रही हैं। लोक के विषय-भोग नीरस तथा अर्थहीन हैं और परलोक के भोग केवल काल्पनिक हैं। परन्तु उन्हीं की कल्पना में जीव क्रीड़ा कर रहा है। यह बिना जल के चकवा का क्रीड़ा करना है।

"कहहिं कबीर यह पद को जान" कबीर साहेब कहते हैं कि हमारे इस उलटवांसी पद के अभिप्राय को समझने की चेष्टा करो। मेरा सारा व्यंग्य उन पर है जो अपने चेतनस्वरूप को भूलकर, अपने आत्मदेव से विमुख होकर बाहर भटक रहे हैं। जो मन की कल्पनाओं को छोड़ देता है वह अपने आत्मारूपी देव को पा जाता है। मन की कल्पनाएं ही तो मनुष्य को लोक-परलोक के बाहरी दृश्यों से जोड़ती हैं! अतएव जो मन की सारी कल्पनाओं को छोड़ देता है वह स्वयं को पा जाता है। यह स्वयं स्वरूप चेतन ही प्रमा है, चेतना है, बोध है, और इसको पा जाने वाला सदैव प्रमाणित संत है।

"सोई सन्त सदा परमान" ज्ञान के विषय में जिसकी निर्णय-दृष्टि है वही संत है और उसी की बात सदैव प्रमाणित मानी जायेगी। राजा सगर की पत्नी को एक ही बार में साठ हजार बच्चे पैदा हो गये , राजा प्रियव्रत ग्यारह अरब वर्ष राज्य किये , काकभुशुंडि एक ही आश्रम पर सत्ताईस कल्प अर्थात एक खरब, सोलह अरब, चौसठ करोड़ वर्ष से रहते थे , शिव जी ने सत्तासी हजार वर्ष तक ध्यान किया इन-जैसी हजारों बातें जो विश्वनियमों के विरुद्ध तथा कारण-कार्य की व्यवस्था से परे हैं, इनके होने में कोई प्रमाण नहीं है। ये सब मनुष्य के मन में भ्रम तथा अज्ञान पैदा करने वाली बातें हैं। संत ऐसी बातों को छोड़ देते हैं। वे उन्हें ही प्रामाणिक ज्ञान मानते हैं जो विश्वनियमों के अंतर्गत घटने वाले तथा विवेकयुक्त हों। संत वही है जो प्रामाणिक बातें माने। अंततः तो सभी को

. वाल्मीकीय रामायण 1/38/17-18।

. भागवत 5/1/29।

. इहां बसत मोहि सुन खगईसा। बीते कलप सात औ बीसा॥ (मानस 7/114/5)

. बीते संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अविनासी॥ (मानस 1/60/1)

प्रमाणित करने वाली व्यक्ति की आत्मसत्ता ही है जो परम प्रमाणित है। संत मन के विस्तार को छोड़कर अपने चेतनस्वरूप में सदैव रमते हैं। यह आत्मस्वरूप ही प्रामाणिक सत्यलोक, ब्रह्मलोक एवं निजलोक है। इस स्थिति में पहुंचकर सारी विपरीतताओं का अंत है।

हृदय-घर के स्वामी आत्मदेव को पहचानो

शब्द-102

हो दारी के ले देउँ तोहि गारी, तैं समुझि सुपन्थ बिचारी 1
घरहुक नाह जो अपना, तिनहुँ से भेंट न सपना 2
ब्राह्मण क्षत्री बानी, तिनहुँ कहल नहिं मानी 3
योगी जंगम जेते, आपु गहे हैं तेते 4
कहहिं कबीर एक योगी, वो तो भरमि भरमि भौ भोगी 5

शब्दार्थ—हो= हे। दारी= दासी, बुंदेलखंड में स्त्रियों को दी जाने वाली एक गाली, कुलटा नारी, पुंश्चली, 'अपनो पति छाँड़ि औरनिसों रति ज्यों दारनि में दारी'—स्वामी हरिदास; माया। गारी= गाली। नाह= स्वामी। बानी= बनिया, वैश्य। आपु= स्वयं, आपा, अहंकार।

भावार्थ—हे माया के गुलाम! ले, मैं तुम्हें गाली देता हूं। तू विचारकर अच्छे मार्ग को समझ ले! 1 जो अपने हृदय-घर का स्वामी चेतन आत्मा है उससे तो तू स्वप्न में भी भेंट नहीं करता, अर्थात कभी भी निजस्वरूप का चिन्तन नहीं करता 2 ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये द्विजत्व के अहंकारी निर्णय वचन को नहीं मानते 3 जितने योगी, जंगमादि मतवादी हैं, ये भी अपने-अपने संप्रदाय का अहंकार पकड़कर बैठे हैं 4 कबीर साहेब कहते हैं कि षटदर्शनियों में जो एक योगी हैं ये तो योग के नाम पर भटक-भटककर भोगी ही बने हैं 5

व्याख्या—कबीर साहेब विविध ढंग से संसार को समझाते हैं। वे यहां अपने श्रोताओं को गाली देकर समझाते हैं। यह गाली कोई क्रोधपूर्वक नहीं है, किन्तु स्नेहपूर्वक है। जैसे कोई अपने बच्चे को खेलाते समय उसे स्नेह से मुन्ना, बच्चा, बप्पा, बदमाश, बेईमान आदि अनेक शब्द कह देता है, वैसे यहां सद्गुरु ने अपने श्रोताओं को स्नेहपूर्वक 'हो दारी के' कहा है। ऊपर शब्दार्थ में आपने देख ही लिया है कि 'दारी' के अर्थ क्या हैं। दारी दासी या कुलटा नारी है।

यहां दारी शब्द से माया का अभिप्राय है। यह जीव माया का हो गया है। अर्थात यह माया का गुलाम हो गया है। कबीर साहेब के सामने श्रोता इकट्ठे हुए। उन्होंने देखा कि लोग ज्ञान की बातें सुनकर भी माया का मोह छोड़ नहीं

पाते हैं। इसलिए उन्होंने स्नेहपूर्वक कहा कि आओ बैठो, मैं तुम लोगों को गाली देने जा रहा हूं, धिक्कारने एवं लानत-मलामत करने जा रहा हूं। तुम लोग माया के गुलाम हो गये हो। तुम लोग दारी के हो गये हो, माया के दास हो गये हो। स्नेहपूर्वक अपने श्रोताओं को दी गयी यह गाली तो बहुत मधुर है। ईसा की सोलहवीं शताब्दी के प्रस्थानभेद के लेखक प्रकांड पंडित तथा संन्यासी मधुसूदन सरस्वती अन्त में श्रीकृष्ण के रसिकरूप के उपासक हो गये थे, तो श्रद्धाविह्वल हो उन्होंने श्रीकृष्ण को प्रेम से गाली दे डाली। वे कहते हैं—"यह ठीक है कि अद्वैत ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले मुमुक्षु मेरी उपासना करते हैं, यह भी ठीक है कि आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके मैं स्वराज्य के सिंहासन पर आरूढ़ हो चुका हूं; किन्तु क्या करूं एक कोई गोप-वधुओं का प्रेमी शठ है, उसी हरि ने बलपूर्वक मुझे अपना दास बना लिया।"

यहां सद्गुरु कबीर श्रोताओं को प्रेमपूर्वक उलाहना देते हुए कहते हैं कि तुम लोग ज्ञान की बातें हजार बार सुनकर भी आध्यात्मिक दिशा में अपेक्षित सुधार नहीं करते हो, यह तुम्हारी प्रबल मायासक्ति का लक्षण है। हे कल्याणार्थियो ! तुम विचार करो और उस सुपंथ को समझने का प्रयास करो, जिस पर चलकर तुम्हारा जीवन आनंदमय हो। वही काम, वही व्यवहार तथा वही रास्ता ठीक है जिससे मन मलिनताओं से मुक्त होकर सदैव प्रसन्न बना रहे। मन की मलिनता दुख है और मन की पवित्रता सुख है।

"घरहुक नाह जो अपना, तिनहुँ से भेंट न सपना।" जो घर का अपना मालिक है उससे तुम्हें सपने में भी भेंट नहीं है। घर है हृदय, उसमें चेतनदेव एवं आत्मदेव निवास करता है। वही तुम्हारा स्वरूप है, वह तुम्हीं हो। वही घर का स्वामी है। वही तो हृदय-मंदिर का मालिक है। इतना ही नहीं, वही अपने आप का स्वामी है। उसको सीधा कहें तो तुम्हीं अपने स्वामी हो। परन्तु तुम अपने इस दिव्यस्वरूप का कभी भूलकर स्मरण नहीं करते। तुम स्वयं अपने कर्मों के विधाता हो, अपने आप का स्वामी हो। अपने आप के आश्रय हो। तुम्हारा अपना आत्मस्वरूप ही आश्रय और आश्रित दोनों है। अर्थात तुम स्वयं अपने आपके निधान हो। तुम अपने आप में परमपूर्ण हो; क्योंकि तुम्हारा मौलिक स्वरूप शुद्ध-बुद्ध एवं निष्काम है। परन्तु खेद की बात यह है कि तुम इस अपनी दिव्यता को नहीं समझते हो और अपनी पूर्णता के लिए जगह-जगह भटकते हो। तुम स्वयं सभी भगवानों के भगवान, परमात्माओं के परमात्मा तथा

. अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥
(कल्याण, भक्तचरितांक, पृ. 494, सन् 1952)

ब्रह्म के ब्रह्म हो, परन्तु अपनी इस परम ऊंचाई को न समझकर भगवान, परमात्मा तथा ब्रह्म के लिए दर-दर ठोकरें खाते हो। अतः हे साधक! बाहर भगवान, परमात्मा तथा सुख खोजने की मृगतृष्णा छोड़ो। तुम बाहर से लौटकर अपने आप में पूर्ण प्रतिष्ठित होओ।

"ब्राह्मण क्षत्री बानी, तिनहुँ कहल नहिं मानी।" ये ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अपने द्विजत्व के अहंकार में डूबे हैं। ये निर्णय के वचनों पर ध्यान नहीं देते। यहां कबीर साहेब उक्त तीनों वर्णों को ही ऐसा कहते हैं, अन्तिम चौथे वर्ण को नहीं कहते। इससे ऐतिहासिक क्षेत्र पर प्रकाश पड़ता है। कबीर साहेब पूरी मानवता के पक्षधर थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णव्यवस्था-जनित सुविधाओं तथा प्रतिष्ठाओं के उपभोक्ता थे। कबीर साहेब कहते थे कि पूरा मानव-समाज मूलतः समान सब दिशाओं में उन्नति करने, सुविधाओं को पाने तथा प्रतिष्ठा का अधिकारी है। किसी कुल-परिवार पर किसी व्यवस्था का प्रतिबन्ध न होना चाहिए कि वह अपनी योग्यता के अनुसार अपनी उन्नति ही न कर सके। विदित है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा बनिया के बाद शूद्र कहे जाने वाले बंधुओं पर अनेक प्रतिबन्ध थे। वे पढ़ नहीं सकते थे, किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकते थे, मंदिर में प्रविष्ट नहीं हो सकते थे, संन्यास नहीं ले सकते थे, वरासन पर बैठ नहीं सकते थे। वे केवल मोटी सेवा का काम कर सकते थे। प्रथम त्रिवर्ण उसी चौथे वर्ण से सारा काम कराकर तथा सारा उपार्जन कराकर सारी सुविधा का भोग कर रहा था, परन्तु वह जिससे सुविधा पा रहा था, उस अन्तिम चतुर्थ वर्ण को सदैव उपेक्षित बनाये रखने के लिए अपने तथाकथित धर्मशास्त्रों में नये-नये नियम-कानून बनाये जा रहा था। वर्णव्यवस्था का ऐसा क्रूर पंजा था कि उसने धर्म का जामा पहनकर चौथे वर्ण के मुंह पर मौन की पट्टी बांध दी थी। वर्णव्यवस्था के भ्रामक और क्रूर नियम ने प्रथम के त्रिवर्ण में मिथ्या अहंकार तथा अन्तिम चौथे वर्ण में झूठी हीनभावना की ग्रन्थि पैदा कर दी थी जिससे समाज का आज भी पूर्ण उद्धार नहीं हो पाया है। पहले कभी मनुष्यों की योग्यता के अनुसार उन्हें काम में नियुक्त किया जाता रहा हो, और वर्णव्यवस्था जन्मजात न होकर केवल काम का बटवारा रहा हो, परन्तु इधर हजारों वर्ष से जो उसका रूप है वह अत्यन्त घृणित है। इस वर्णव्यवस्था ने हिन्दू समाजरूपी शरीर में पक्षाघात का काम किया है। इससे भारतीय समाज को लकवा मार गया। वर्णव्यवस्था ने मनुष्य के मौलिक अधिकार को छीन लिया। आचार और ज्ञान से कोई प्रयोजन न रखते हुए वर्णव्यवस्था की यह मानसिकता है कि ब्राह्मण नामधारी बड़ा है, क्षत्रिय उससे छोटा है, वैश्य उससे छोटा है, शूद्र उससे छोटा है तथा अतिशूद्र

एवं अंत्यज उससे छोटा है। शूद्र या अतिशूद्र कहा जाने वाला व्यक्ति आचार और ज्ञान की कितनी ही ऊंचाई पर चढ़कर भी वर्णव्यवस्था के अनुसार श्रेष्ठ एवं पूज्य नहीं हो सकता और ब्राह्मण नामधारी शीलभ्रष्ट होकर भी श्रेष्ठ एवं पूज्य है। इस अज्ञानपूर्ण क्रूर मानसिकता एवं व्यवस्था ने मानव के मूल अधिकार को छीन लिया।

कबीर साहेब इस व्यवस्था के घोर विरोधी थे। वे कहते थे कि पूरा मानव-समाज मूलतः एक समान है। सब एक ही प्रकृति से रचे गये हैं तथा सब में एक ही समान चेतन तत्त्व निवास करता है। अतएव पूरे मानव-समाज के लिए यह छूट होनी चाहिए कि जिसमें जैसी योग्यता हो अपनी-अपनी उन्नति करे, जैसा कि इस बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वतन्त्र भारत में छूट है। मानव के मूल अधिकार की सुरक्षा के लिए आज भारतीय संविधान है, यह मानो कबीर के विचारों की विजय है। इसके साथ-साथ मनुष्यों की मानसिकता में भी परिष्कार होना चाहिए। कबीर साहेब के इन मानवतावादी विचारों से द्विजातियों को अपने गलत अधिकारों को छिन जाने का भय था। वे देख रहे थे कि वर्णव्यवस्था के पक्षधरों के केन्द्र काशी में ही कबीर ऐसी आग लगा रहा है जिससे द्विजातियों की सुविधा, श्रेष्ठता एवं शोषण-तन्त्र में जबर्दस्त धक्का पहुंचने वाला है। अतएव तथाकथित प्रथम तीनों वर्णों के लोग कबीर से कतराते थे। इसी विशेषता को लेकर सद्गुरु ने यहां कहा—"ब्राह्मण क्षत्रिय बानी, तिनहुँ कहल नहिं मानी।" परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि इन त्रिवर्णों में कोई उदार था ही नहीं। इनमें से अनेक लोग कबीर साहेब के विचारों के प्रभाव में आये और कितने लोग तो उनके शिष्य बन गये। कबीर के अनुयायी ब्राह्मण सर्वाजीत पंडित, क्षत्रिय वीरसिंह बघेल, वैश्य धनपति श्रीजुड़ावन (श्री धर्म साहेब) तो बड़े-बड़े नाम हैं, इन त्रिवर्णों में से उदार चिन्तक लोग कबीर-विचारों में रंगकर समाज को उस दिशा में ले जाने का प्रयास करते रहे। द्विजातियों के पीछे वर्णव्यवस्था द्वारा लगाये गये पक्षपातपूर्ण नियम बुरे हैं न कि द्विजातियों में उदारतापूर्वक सोचने वालों का अभाव है। कबीर के विचार-पवन को पाकर हजारों-लाखों के अंतर्मन की मानवता की आग सुलगती गयी और वे जो चाहते थे उसका बहुत कुछ अंश आज भारत में संविधान का रूप ले लिया है। उन्होंने छुआछूत की भावना को पाप कहा था तो आज संविधान है कि यदि कोई किसी को अछूत कहता है तो वह न्याय द्वारा दण्डित हो सकता है। जनता, जो बड़ी तथा असली सरकार है उसमें भी उदारता के विचार दिनोदिन बढ़ते जा रहे हैं।

"योगी जंगम जेते, आपु गहे हैं तेते।" साहेब कहते हैं कि ये योगी, जंगमादि षटदर्शनी एवं नाना मतवादी अपने-अपने सांप्रदायिक अहंकार में पड़े

नाना मान्यताओं में उलझे हैं। सब अपनी मान्यता को सर्वोपरि मानकर स्वरूपज्ञान एवं आत्मज्ञान से दूर पड़े हैं। "कहहिं कबीर एक योगी, वो तो भरमि-भरमि भौ भोगी।" साहेब कहते हैं कि जो एक योग-संप्रदाय के लोग हैं वे केवल भटकाव में हैं और योग के नाम पर भोगी बने हैं। कबीर साहेब के समय में योगियों का बड़ा प्रचार था। उनका समाज बहुत बढ़ गया था। जो बहुत बढ़ता है उसमें विकृति भी बहुत आती है। लगता है कि कबीर साहेब के समय में योगियों में अच्छे साधकों का बड़ा अभाव हो गया था। सब दिखावा, प्रतिष्ठा एवं धन-धान्य में लीन हो गये थे। इसीलिए कबीर साहेब ने अपनी वाणियों में उन्हें बारम्बार कोसा है। इस शब्द में भी एक बार योगी-जंगम कहकर षटदर्शनियों के साथ योगियों को याद करते हैं और दूसरी बार अन्तिम पंक्ति में केवल उन्हीं को यादकर उन्हीं की भर्त्सना करते हैं।

इस पूरे शब्द में एक ही मुख्य बात है घर के मालिक के दर्शन "घरहुक नाह जो अपना, तिनहुँ से भेंट न सपना।" जो अपने घर का मालिक हो उससे स्वप्न में भी न भेंट करना कितनी कृतघ्नता है! जो अपने हृदय-मंदिर का आत्मदेव है उसी को भूले रहना कितना बड़ा अपराध है! इसी का फल है हमारा दुखी बने रहना। साहेब स्नेह से कहते हैं कि हे माया के दास, छोड़ माया का मोह, सुविचारित पंथ को पकड़, स्वरूपसाक्षात्कार एवं आत्मसाक्षात्कार कर। वर्णाभिमान, आश्रमाभिमान एवं संप्रदायाभिमान तेरे आत्मसाक्षात्कार में रोड़े हैं। सारे अभिमानों को छोड़ और अपने चेतनस्वरूप आत्मदेव में रमण कर!

क्या काशी क्या मगहर ऊसर?

शब्द-103

लोगा तुमहीं मति के भोरा 1
ज्यों पानी पानी मिलि गयऊ, त्यों धुरि मिला कबीरा 2
जो मैथिल को साँचा ब्यास, तोहर मरण होय मगहर पास 3
मगहर मरै, मरै नहिं पावै, अन्तै मरै तो राम लजावै 4
मगर मरे सो गदहा होय, भल परतीत राम सो खोय 5
क्या काशी क्या मगहर ऊसर, जो पै हृदय राम बसै मोरा 6
जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहि कहु कौन निहोरा 7

शब्दार्थ—भोरा= भोला, सरल, मूर्ख। धुरि= धुर, पक्का, निश्चल। मैथिल= मिथिला का, मिथिला निवासी। ब्यास= व्यास, पंडित। मगहर= गोरखपुर के पश्चिम बस्ती जिले का एक कस्बा जो आजकल गोरखपुर-

लखनऊ रेलवे लाइन पर पड़ता है। अन्तै= अलग। राम लजावै= अपने गलत आचरण से अपनी आत्मा को लज्जित करना। गदहा= गधा। भल= बिलकुल। ऊसर= वह जमीन जिसमें रेह हो तथा कुछ पैदा न हो। जो पै= यदि। निहोरा= एहसान, सहारा।

भावार्थ—हे लोगो ! तुम लोग ही बुद्धि के भोले हो 1 जैसे पानी में पानी मिल जाने पर उसे अलग नहीं किया जा सकता, वैसे यह कबीर अपने रामस्वरूप में निश्चलतापूर्वक मिल गया है अब इसे कोई अलग नहीं कर सकता 2 यदि तुम मिथिला के सच्चे पंडित हो तो तुम्हारा मरना भी मगहर के ही पास होना चाहिए 3 क्योंकि यदि व्यक्ति मगहर—मग=मार्ग, हर= ज्ञान—अर्थात ज्ञान-मार्ग में शरीर छोड़ता है तो वह वस्तुतः मरने नहीं पाता है, किन्तु अमरत्व पाता है, और यदि ज्ञान-मार्गरूपी मगहर छोड़कर शरीर त्यागता है तो अपने गलत आचरण से मानो अपनी अंतरात्मा को लज्जित करता है 4 जो मगहर-गांव में मरता है वह गधा होता है ऐसा मानकर आप लोगों ने रामभजन का विश्वास बिलकुल खो दिया है 5 यदि मेरे हृदय में आत्माराम की स्थिति है अर्थात मैं निरंतर आत्माराम में रम रहा हूं तो मेरा शरीर काशी में छूटे, मगहर में छूटे या ऊसर जमीन में छूटे इससे क्या अन्तर पड़ता है ! 6 यदि मुक्ति के लिए कबीर काशी में शरीर छोड़ता है तो रामभजन के सहारा का क्या अर्थ रहा ! 7

व्याख्या—कबीर साहेब सभी प्रकार के अन्धविश्वासों को तोड़ने वाले थे। उनके सारे विचार तर्कपूर्ण थे। उन्होंने जीवनपर्यंत भारत तथा भारत के बाहर भ्रमण करते हुए भी काशी अपना मुख्य निवास स्थान रखा। एक सौ अठारह-उन्नीस वर्ष काशी में बिताकर वे अपनी जरजर अवस्था में मगहर जाना चाहे। सामान्यता यह एक आश्चर्य का विषय हो सकता है, परन्तु कबीर साहेब के प्रखर विचारों को देखते हुए यह कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है।

जीवनपर्यंत काशी में रहकर एक परम सन्त कबीर मरने के लिए सुदूर मगहर में क्यों गये? इस प्रश्न का उत्तर ही यह 103वां शब्द है। परन्तु इन उच्च भावों को न समझकर साधारण लोग ही नहीं, विद्वान कहलाने वाले लोग भी अन्यथा बकते हैं, तो कौन किसका मुख पकड़ लेगा। बचपन में तो एक दंतकथा सुनी जाती थी कि काशी के एक ज्योतिषी पंडित ने कबीर साहेब से कहा कि आपकी मृत्यु मुक्तिदायी काशी में नहीं, किन्तु मगहर में होगी, जहां मरकर मनुष्य गधे की योनि में जाता है। तब कबीर साहेब अपने दोनों पैर कटाकर काशी में बैठ गये कि अब तो मैं काशी से कहीं बाहर नहीं जा सकता।

. अब यह क्षेत्र 'संत कबीर नगर' नामक जिला के नाम से जाना जाता है।

अब तो मैं निश्चित ही काशी में मरूंगा। परन्तु पंडित की बात सत्य हुई, काल घोड़े के रूप में आकर कबीर साहेब को अपनी पीठ पर बैठा लिया और तुरन्त उसने ऐसी दौड़ लगायी कि एक ही बार में वह कबीर साहेब को मगहर में ही ले जाकर छोड़ा और कबीर साहेब ने मगहर में पहुंचकर वहीं शरीर त्याग किया।

उक्त कथा गंवारों की गढ़ी हुई है, परन्तु शहरी और विद्वान कहे जाने वाले लोग इस विषय में गंवारों से भी गंवार बन जाते हैं। कोई तो लिखता है कि कबीर को सिकन्दर लोदी ने दो बार कष्ट देना चाहा और न दे सका, तब वह संभवतः तीसरी बार कबीर को दंड दिया और वे इससे क्षत-विक्षत होकर मगहर चले गये। फिर वे यह भी लिखते हैं कि इस तीसरे दंड का संकेत कबीर के काव्य में नहीं है। कोई लिखता है कि कबीर काशी के पंडित-मुल्लाओं के विरोध से घबराकर अंत में मगहर चले गये। कोई पंडिताऊ विचार वाला लिखता है कि यह कबीर का एक हठ ही था जो मुक्तिधाम काशी छोड़कर मगहर मरने गये।

उक्त सारे प्रलापों का उत्तर तो यह 103वां शब्द ही है, परन्तु विद्वान कहलाने वाले इस पर क्यों ध्यान देने लगे ! उन्हें तो एक नयी कही जाने वाली बात गढ़ लेनी है जो उनकी नयी खोज मानी जाये, चाहे उससे प्रतिपाद्य विषय की हत्या ही हो। सिकंदर लोदी (सन् 1489-1517) ने कबीर साहेब को कोई दंड देना चाहा है इसकी चर्चा या संकेत बीजक भर में कहीं नहीं है। हां, अन्य वाणियों में है जो कबीर साहेब के नाम से जुड़ी हैं। अनंतदास की कबीर-परिचई में भी है। परन्तु इन सबमें यही है कि काशी के मुल्ला-पंडित आदि कुछ लोगों के भड़काने से सिकंदर लोदी ने कबीर साहेब को कष्ट देना चाहा था, परन्तु वह सफल नहीं हुआ। अंततः उसने कबीर की सत्यता से प्रभावित होकर उनसे क्षमा-याचना की और उन्हें धन-जागीर आदि देना चाहा, परन्तु कबीर साहेब सिकंदर लोदी को तो क्षमा कर दिये जो कि उनका पहले से ही क्षमाभाव था; परन्तु लोदी से कोई धन-जागीर नहीं लिये। जब तथाकथित तीसरे दंड की कबीर-वाणी में चर्चा ही नहीं है तब उसकी कल्पना कर विद्वान लोग क्यों अपनी भूल सिद्ध करते हैं ! इसके अलावा क्षत-विक्षत हुआ आदमी वहीं या कहीं आस-पास ही मरना चाहेगा कि काशी से मगहर दौड़ लगाना चाहेगा, जो करीब पौने दो सौ किलोमीटर है, वह भी पैदल तथा बैलगाड़ी के जमाने में।

जो लोग लिखते हैं कि कबीर काशी के ही अपने विरोधियों से घबराकर मगहर चले गये थे वे अपने कथन में कोई प्रमाण नहीं दे पाते। हां, वे यह लिखकर अपनी एक नयी खोज का दंभ अवश्य दिखाते हैं। कबीर शुरू से ही

क्रांतिकारी थे। उनका कुछ विरोध हुआ होगा तो शुरू में अर्थात उनकी नवजवानी में ही। जितने दिन बीते होंगे लोगों के मन में उनके प्रति श्रद्धा बढ़ी होगी। असलियत न जानकर या स्वार्थवश उलझन होती है। असलियत जान जाने पर लोग सत्य के समर्थक हो जाते हैं और इससे स्वार्थी तत्त्व भी दब जाते हैं। कथाओं से पता चलता है कि हिन्दू-मुसलिम के कुछ पुरोहितों तथा राज्य के कुछ अधिकारियों की ओर से पहले कबीर का विरोध हुआ था, आम जनता तो तब भी कबीर के साथ थी। कुछ दिनों में तो एकदम पासा पलट गया था और काशीवासी कबीर के प्रशंसक हो गये थे। उनकी जितनी अवस्था बढ़ती गयी, वे लोगों के अधिकाधिक श्रद्धाभाजन होते गये। फिर पूरा जीवन काशी में बिताकर अन्तिम में मगहर जाने की कोई तुक ही नहीं हो सकती जबकि उस समय के काशीनरेश तक कबीर के श्रद्धालु हो गये थे।

जो लोग लिखते हैं कि कबीर का यह हठ ही है जो मुक्तिधाम काशी छोड़कर मगहर मरने चले गये, वे पंडिताऊ विचार के हैं। वे समझते हैं कि कबीर ने ऐसा कर काशी की प्रतिष्ठा में बट्टा लगाया, परन्तु वे यह नहीं समझते कि कबीर ने ऐसा करके एक अन्धविश्वास एवं असत्य का विरोध किया तथा राम-भजन की प्रतिष्ठा बढ़ायी है। पुरोहिताई विचार वालों को तो राम-भजन के महत्त्व से कुछ लेना-देना नहीं है, उन्हें तो काशी आदि तीर्थों की झूठी महिमा बढ़ाकर तथा जनता की वहां भीड़ जमाकर उनसे पुजवाने की चेष्टा है।

कबीर साहेब काशी छोड़कर मगहर क्यों गये, इसका सुन्दर, स्वस्थ, आत्मविश्वासजनक, ज्ञानपरक तथा सर्व कल्याणकर समाधान स्वतः कबीर के मुख से ही निकले इस 103वें शब्द में प्राप्त है जिसके मूल रूप तथा भावार्थ को आपने ऊपर पढ़ लिया है। अब उस पर थोड़ी व्याख्या का मनन करें।

कबीर साहेब परम सन्त थे, परन्तु वे अन्य संतों की लाइन से हटकर एक क्रांतिकारी, वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले, सत्य के द्रष्टा तथा आधुनिक भाषा में कहा जाये तो रैश्नल विचार के थे। वे किसी अन्धविश्वास एवं गलत बात को सह नहीं सकते थे। उन्होंने एक सौ अठारह-उन्नीस वर्ष की लम्बी उम्र काशी में बितायी थी। वे पूरे भारत के श्रद्धाभाजन ही नहीं, काशी वालों के भी परम श्रद्धेय थे। उन्होंने देखा कि अब शरीर जाने वाला है। लोगों को भ्रम है कि काशी में मरने से जीव का मोक्ष होता है और यदि मगहर में कोई मरता है तो गधा होना पड़ता है। कबीर साहेब-जैसे पारदर्शी दृष्टि वाले के सामने यह सर्वथा झूठी बात कैसे छिपी रह सकती थी। क्योंकि यह सर्वथा तर्कहीन बात है। मोक्ष है वासना का त्याग, वह ज्ञान से होता है और कहीं भी रहकर यह काम किया जा सकता है। फिर यह काम जीवनकाल में ही होता है, मरते समय नहीं। जो

जिन्दगीभर वासना में बंधा हो, वह मरते समय काशी में चला जाये और वहीं शरीर छोड़े तो मुक्त कैसे हो जायेगा ! जिसकी वासना पहले से छूट चुकी है वह मगहर आदि कहीं भी शरीर छोड़े तो वह बंधन में कैसे पड़ जायेगा ! यह ठीक है कि साधारण आदमी यदि किसी ऐसे स्थल में शरीर छोड़ता है जहां से पवित्रता की भावना जुड़ी है तो उसके लिए अन्य जगह से वह अच्छा है। उसका मरते समय कुछ भाव पवित्र हो सकता है। परन्तु इतने मात्र से मोक्ष की कल्पना करना बालकपन है। पौराणिक पंडितों ने मोक्ष को लड्डू मान रखा है कि कहीं दुकान से खरीदो और खा लो। वस्तुतः ज्ञानी वासना का पूर्णतया त्यागकर इसी जीवन में मुक्त हो जाता है। वह सदैव अपने आत्माराम में रमता है। उसका कहीं भी शरीर छूट जाये उसके लिए कोई अन्तर नहीं पड़ता।

मगहर की तरफ गोरखपुर क्षेत्र में कबीर साहेब के समय में सिद्धों तथा नाथपंथियों का प्रचार था, जो बौद्धों का अवशेष था। यदि उधर कोई आकर्षित होता था तो ब्राह्मण-पुरोहितों को कोई लाभ नहीं था। परंतु यदि लोग काशी में आते थे तो पंडितों-पुरोहितों की पुजाई बढ़ती थी, अतएव पंडितों ने काशी की आंख मूंदकर प्रशंसा की। इससे जनता में अविवेक उत्पन्न होगा, पुरोहित-पंडित इसकी परवाह नहीं करता। वह तो देखता है कि उसका स्वार्थ किसमें है। यह दोष केवल ब्राह्मण-पुरोहित-पंडितों में हो ऐसी बात नहीं, किन्तु यह संसार के हर मजहब एवं समाज के पुरोहित-पंडितों में होता है।

कबीर साहेब ने उक्त अन्धविश्वास को सक्रिय एवं प्रायोगिक रूप में तोड़ने के लिए तथा कर्म, भक्ति, ज्ञान, त्याग, आत्मस्थिति एवं राम-भजन की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए अपने मन में निश्चय किया कि मुझे शरीर काशी में नहीं छोड़ना है, किन्तु मगहर में छोड़ना है। देखते हैं कि बाहरी जगह बंध-मोक्ष का कारण बनती है कि अपने मन की स्थिति। कबीर साहेब ने अपने विचार शिष्य-मंडली और संत समाज को बताया, फिर यह बात पानी में तेल की तरह पूरी काशी में फैल गयी। सभी वर्ग के लोग कबीर साहेब के प्रेमी थे। उनमें पंडित समुदाय भी था। बिहार प्रदेश के उत्तरी भाग में मिथिला क्षेत्र पड़ता है। वहां हजारों वर्षों से विद्वान होते आये हैं। उपनिषद् काल में जनक की विद्वत्-मंडली मिथिला में ही लगती थी। कबीर साहेब के समय में भी तथा आज भी मथिला में अच्छे पंडित होते थे तथा हैं। मिथिला के पंडितों का एक अच्छा-खासा समाज काशी में रहता था और वहां अपने पांडित्य का वर्चस्व रखता था। यह बात आज भी है। काशी में आज भी मैथिली ब्राह्मणों एवं पंडितों का अच्छा समाज है। दूसरे पंडितों की अपेक्षा मैथिली पंडित कबीर साहेब के अधिक प्रेमी थे। उन सबने जब सुना कि कबीर साहेब शरीर त्यागने मगहर जा रहे हैं तो वे चकित रह गये। उनका एक समाज कबीर साहेब के आश्रम पर आया और प्रेम में विह्वल होकर

प्रेमप्रलाप में कह डाला है कि महाराज ! आप कैसे भोले हो गये? आपने यह विचार कैसे बना लिया कि मरने के लिए मगहर जाना है? महाराज, काशी में मरने से जीव सहज ही मोक्ष पाता है और मगहर में मरने से गधा होना पड़ता है। फिर आप-जैसे ज्ञानी संत कैसे भोला बन रहे हैं?

मैथिली पंडितों की प्रेम-लपेटी अटपटी बातें सुनकर कबीर साहेब को हंसी आ गयी। उन्होंने स्नेहपूर्वक पंडितों से कहा—"लोगा तुमहीं मति के भोरा" हे पंडितो ! तुम लोग ही भोले हो। मैं तो किसी बात की गहराई में जाकर ही उसे मुख से निकालता हूं। तुम लोग कहते हो कि काशी में मरने से मुक्ति और मगहर में मरने से गधा होना पड़ता है; परन्तु ये दोनों ही बातें व्यर्थ हैं। बंध-मोक्ष तो मन की वासना तथा वासनाहीनता से होते हैं, उनमें काशी या मगहर आदि स्थानविशेष की क्या अपेक्षा है; और मेरे लिए तो तुम लोगों को कोई चिन्ता ही नहीं करनी चाहिए। क्योंकि "ज्यों पानी पानी मिलि गयऊ, ज्यों धुरि मिला कबीरा।" जैसे पानी में पानी मिल जाये, तो क्या कोई पुनः उसे अलग-अलग कर सकता है? इसी प्रकार मैं निश्चलतापूर्वक निजस्वरूपराम में लीन हूं। अब मुझे संसार की कोई भी शक्ति उससे अलग नहीं कर सकती। पानी में पानी मिलने का उदाहरण एक भावनात्मक कथन है। न तो जीव पानी की तरह विकारी है और न उसे अपने स्वरूप से अलग किसी विकारी वस्तु में मिलना है। बूंद-समुद्र का उदाहरण भी भावनात्मक कथन के अलावा कुछ नहीं है। जीव किसी की बूंद नहीं है। इसे किसी समुद्र में मिलना नहीं है। यहां तो केवल इतना ही लेना है कि पानी में पानी मिल जाने से उसे पूर्ववत अलग नहीं किया जा सकता, वैसे जो ज्ञानी अपने स्वरूप में स्थित हो गया है, उसे उससे कोई विचलित नहीं कर सकता। "त्यों धुरि मिला कबीरा" में 'धुरि' का शुद्ध शब्द है 'धुर' और धुर का अर्थ है पक्का एवं निश्चल। जिसकी सारी वासनाएं निवृत्त हो गयीं तथा जो अविचल भाव से अपने स्वरूप में स्थित हो गया, उसे कोई विचलित नहीं कर सकता। उसका चाहे जहां शरीर छूटे वह पहले से ही सब समय मुक्त ही है।

"जो मैथिल को साँचा ब्यास, तोहर मरण होय मगहर पास।" पंडितों को लेने के देने पड़ गये। कबीर साहेब ने उन सबसे कहा—यदि आप लोग मिथिला के सच्चे पंडित हैं तो आप लोगों का मरना भी मगहर के पास होना चाहिए। पंडितों ने कहा—महाराज ! यह तो अच्छी बात हुई। हम लोग आप को मगहर न जाने का अनुरोध करने आये थे और आप हमें ही कहते हैं कि तुम लोग भी मगहर में मरना, लेकिन महाराज, ऐसा क्यों? क्यों हम लोग भी मगहर में मरें?

साहेब ने कहा—"मगहर मरै, मरै नहिं पावै, अन्तै मरै तो राम लजावै।" यदि कोई मगहर में मरता है तो मरने नहीं पाता, बल्कि अमरत्व पाता है। तात्पर्य यह कि मगहर में मरने वाले शरीर तो छोड़ देते हैं, परन्तु उनकी आत्मा बंधनों से मुक्त हो जाती हैं। उनका मोक्ष हो जाता है। यदि कोई मगहर छोड़कर अलग मरता है तो वह मानो अपने गलत आचरणों से अपनी अंतरात्मा को लज्जित करता है।

उक्त बातों को सुनकर पंडितों को बड़ा आश्चर्य हुआ। कैसी है कबीर की खोपड़ी। ये काशी को तो मुक्ति का धाम नहीं मानते, किन्तु मगहर को मुक्ति का धाम मानते हैं। इनकी अजीब बात है। एक साधारण गांव मगहर उसमें मरने वालों को ये बताते हैं कि जीव मुक्त हो जायेगा। पंडितों ने कबीर साहेब से कहा—महाराज ! आपके कथन से तो यही लगा कि हम और आप दोनों बराबर अंधविश्वासी हैं। हम कहते हैं कि काशी में मरने से मुक्ति होती है और आप कहते हैं कि मगहर में मरने से मुक्ति होती है। तो आपके अंधविश्वास से हमारा अंधविश्वास अच्छा है; क्योंकि मगहर साधारण गांव है और आमी नदी के तट पर बसा है, परन्तु काशी प्राचीन धर्म और विद्या का केन्द्र तथा नगर है और गंगा-तट पर बसी है। यदि महाराज, इसमें कुछ रहस्य हो तो बताइए; क्योंकि हम लोगों को विश्वास नहीं पड़ता कि आप मगहर-गांव में मरने से मुक्ति मानेंगे।

कबीर साहेब ने हंसते हुए कहा—पंडितो ! "मगहर मरै, मरै नहिं पावै" जो मगहर में मरता है वह अमरत्व पाता है, तो वह मगहर गांव नहीं है जो गोरखपुर के पश्चिम है। मेरा मोक्षदायी मगहर है ज्ञान-मार्ग। मग कहते हैं मार्ग को और हर कहते हैं ज्ञान को। जो मगहर में मरता है अर्थात ज्ञान-मार्ग में मरता है वह मुक्त हो जाता है, और जो ज्ञान-मार्ग को छोड़कर काशी-प्रयागादि किसी स्थान विशेष में मरकर मुक्ति की आशा करता है वह मानो राम को लज्जित करता है। वह अपने अविवेक के भद्दे कार्य से अपनी अंतरात्मा के ज्ञान की अवहेलना करता है।

"मगहर मरे सो गदहा होय, भल परतीत राम सो खोय।" जो मगहर-गांव में मरेगा वह गधा होगा। यह मानने का तात्पर्य हुआ कि राम-भजन का विश्वास एकदम छोड़ दिया गया। यह बताइए कि मगहर-गांव बड़ा है कि राम बड़ा है। क्या मगहर-गांव इतना बड़ा हो जायेगा कि रामभजन के महत्त्व को ही समाप्त कर देगा। पंडितो ! इस पर ध्यान दो ! मगहर तो एक अदना गांव है। वह किसी का बंधन नहीं बन सकता। जो व्यक्ति निरंतर राम में रम रहा है, जो सब समय स्वरूपस्थिति में डूबा है मगहर आदि कोई जड़ क्षेत्र उसका क्या बिगाड़ सकता है !

"क्या काशी क्या मगहर ऊसर, जो पै हृदय राम बसै मोरा।" यदि मेरे हृदय में आत्माराम की स्थिति है, यदि मैं सब समय राम में, अपनी चेतना में, निज स्वरूप में रम रहा हूं तो मेरा शरीर काशी में छूटे या मगहर में छूटे या ऊसर जमीन में छूटे, क्या अंतर पड़ता है! भोले लोगों ने काशी, प्रयाग, अयोध्या, गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा आदि नगरों, नदियों में निवास एवं स्नान से मोक्ष होने की कल्पना कर डाली है जो एक अज्ञान एवं छलावा है। तीर्थों के पुरोहितों ने जनता को तीर्थ की तरफ घसीटकर उनसे पुजवाने के लिए ऐसी-ऐसी असत्य धारणाएं समाज में फैलायी हैं। यह भी हो सकता है कि कुछ राष्ट्रीय भावना वालों ने राष्ट्रीय एकता के लिए भी यह झूठा प्रलोभन देकर राष्ट्र के हर कोने से मनुष्यों को जोड़ा हो। इसमें उद्देश्य ठीक है, परन्तु मनुष्य आध्यात्मिक ढंग से गुमराह होता है। पंडितों का यह भी लक्ष्य हो सकता है कि तीर्थों की महिमा पढ़-सुनकर जब लोग तीर्थ में आयेंगे, तो उनके कुछ सात्त्विक मनोरंजन, ज्ञान, त्याग, सदाचार आदि बढ़ेंगे और सत्संग पाकर वे कल्याण-मार्ग में सक्रिय रूप से लग भी सकते हैं। अतएव तीर्थों में घूमना-फिरना, आना-जाना ठीक है। वहां राष्ट्रीय भावना, देश का ज्ञान, अपनी संस्कृति-सभ्यता का परिचय, कुछ धार्मिक भाव, सत्संग आदि के लाभ की दृष्टि से जाना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रहे, वहां मनुष्य को छोड़कर न देवता या भगवान बैठा है और न मोक्ष बिकता है। मोक्ष तो है मोह का क्षय, वासना का त्याग। वह सत्संग-विवेक से होगा। विवेक द्वारा जिसका मन वासनाहीन है वह सदैव मुक्त ही है। काशी आदि में मरने से मुक्ति मिलती है यह धारणा मुक्तितत्त्व के अनभिज्ञों की है।

"जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहि कहु कौन निहोरा।" कबीर साहेब ने पंडितों से कहा कि यदि मैं मुक्ति के लिए काशी में शरीर छोड़ता हूं तो रामभजन का निहोरा क्या रहा! मैं काशी के बल पर मुक्ति नहीं मानता हूं, किन्तु रामभजन के बल पर मुक्ति मानता हूं। मुक्ति कोई सौदेबाजी नहीं है, किन्तु मन की वासनाहीन अवस्था है।

कबीर साहेब काशी में अपनी लम्बी उम्र बिताकर बुढ़ापा में शरीर त्यागने के लिए काशी से मगहर क्यों गये? इसका स्पष्ट उत्तर कबीर साहेब के मुख से निकली वाणी में आपने पढ़ा। वे मोक्षतत्त्व के विषय में फैले भ्रम के निवारण के लिए तथा मोक्ष के तात्त्विक स्वरूप की प्रतिष्ठा के लिए जरजर अवस्था में काशी छोड़कर मगहर गये। इसके अलावा अन्य कोई कारण नहीं था। कबीर साहेब ने एक सौ उन्नीस वर्ष, सात महीने तथा पचीस दिन का जीवन व्यतीत कर विक्रम संवत 1575 माघ शुक्ल एकादशी को मगहर में शरीर का त्याग किया।

बगुला भक्तों से सावधान

शब्द-104

कैसे तरो नाथ कैसे तरो, अब बहु कुटिल भरो 1
कैसी तेरी सेवा पूजा कैसे तेरो ध्यान, ऊपर उजल देखो बगु अनुमान 2
भाव तो भुजंग देखो अति बिबिचारी, सुरति सचान तेरी मति तो मंजारी 3
अति रे विरोधी देखो अति रे सयाना, छौ दर्शन देखो भेष लपटाना 4
कहहिं कबीर सुनो नर बन्दा, डाइनि डिम्भ सकल जग खन्दा 5

शब्दार्थ—तरो= उद्धार होना। नाथ= स्वामी। कुटिल= कुटिलता, छल। बगु= बगुला पक्षी जो सफेद होता है तथा जलाशयों के निकट रहकर जलजंतुओं को खाता है तथा अपने छलावा के लिए प्रसिद्ध है। भुजंग=सांप। बिबिचारी= विविचारी, विचारहीन, कुकर्मी। सुरति= सुरत, ध्यान, मन। सचान= बाजपक्षी। मति= बुद्धि। मंजारी= बिल्ली। सयाना=बुद्धिमान, चालाक, धूर्त। छौ दर्शन= योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण। बन्दा= सेवक, दास, भक्त। डाइनि= डाइन, तथाकथित जादू करने वाली स्त्री, डरावनी सूरत की या दुष्टा स्त्री, तात्पर्य में माया। डिम्भ= दंभ, पाखंड। खन्दा= खा लिया, भटका दिया।

भावार्थ—हे स्वामियो ! तुम लोगों का उद्धार कैसे होगा? क्योंकि अब तो तुम लोगों में बड़ा छलावा तथा खोटाई भर गयी है 1 देवताओं तथा ईश्वर के प्रति तुम्हारे द्वारा की जाने वाली सेवा तथा पूजा कैसी दिखावापूर्ण हो गयी है और ध्यान-योग भी कैसे छल से भरा है ! बगुला-पक्षी के समान तुम लोग कपटी हो गये हो जो ऊपर से तो उजले तथा संयत दिखते हैं, परन्तु भीतर से पर-हिंसा की कालिमा से भरे रहते है 2 देखो, तुम्हारे भाव तो सांप जैसे विषधर, अत्यन्त विचारहीन एवं कुकर्मी हैं और तुम्हारी सुरत और बुद्धि हिंसक बाजपक्षी तथा बिल्ली की तरह हैं 3 देखा जाता है कि षटदर्शनी एवं नाना संप्रदायों के लोग एक दूसरे के अत्यन्त विरोधी बने राग-द्वेष का बाजार गरम कर रहे हैं। ये अपने-अपने मतवाद को फैलाने में खूब चालाक हैं और अपने-अपने वेष के अभिमान में लिपटे हैं 4 कबीर साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो, हे भक्तो ! सुनो इस माया और माया के सहायक दंभ ने सारे संसार को खा लिया है 5

व्याख्या—प्रथम पंक्ति में ही आया है "कैसे तरो नाथ कैसे तरो" यह नाथ शब्द नाथपंथियों से सम्बन्ध रख सकता है जिनका उत्तरी भारत में बड़ा प्रचार था तथा आगे चलकर काफी विकृत हो गया था। कबीर साहेब के समय में नाथपंथियों का ज्यादा उज्ज्वल स्वरूप नहीं था, लेकिन यहां उनका भाव केवल

उन्हीं के लिए नहीं है, किन्तु उन समस्त धार्मिकों के लिए है जो धर्म के वेष बनाने में तो आगे हैं, परन्तु करनी में घिनौने हैं। कबीर साहेब ऐसे संदर्भ में प्रायः षटदर्शन का नाम लेते हैं। षटदर्शन में योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण आते हैं। योगी में सिद्ध, नाथ आदि; जंगम में लिंगायत, शिवाचारी; सेवड़ा में जैनी तथा बौद्ध, संन्यासी में दसनामी—तीर्थ, आश्रम, सरस्वती, भारती, वन, आरण्य, पर्वत, सागर, गिरि और पुरी; दरवेश में सामी संप्रदाय—ईसाई, यहूदी, मुसलमान आदि के साधु, पादरी, फकीर आदि; ब्राह्मण में उनकी सभी शाखाओं के आचार्य आते हैं। परन्तु षटदर्शन का लाक्षणिक अर्थ है संसार के समस्त धार्मिक वेषधारी जो विशेषतः धर्मप्रचारक तथा पूज्य हैं।

भीतर कुछ तथा बाहर कुछ ऐसे कपट भरे दोहरे व्यक्तित्व के कबीर साहेब घोर विरोधी थे। वे दिखावे से पूर्ण धार्मिक वेषधारियों पर दुख प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे स्वामी लोगो, आप लोगों का उद्धार कैसे होगा! आप लोगों के वेष तो बड़े पवित्र दिखते हैं, परन्तु भीतर में बड़ी कुटिलता भरी है। धर्म का स्वरूप अन्दर-बाहर एक तथा सरल होता है, परन्तु तुम लोगों में देखा जाता है तो बड़े-बड़े छल-कपट भरे हैं। जो कपटाचार साधारण आदमी में भी निंदनीय है वह तुम धर्माचार्यों में पूर्ण है। तुम्हारे उद्धार की बात ही दूर है, तुम्हारे तो व्यवहार भी पवित्र नहीं हैं। जब तुम खुद इस प्रकार हो, तब संसार का तुम कौन-सा कल्याण कर सकते हो?

"कैसी तेरी सेवा पूजा कैसे तेरो ध्यान" सेवा तथा पूजा में कर्म तथा उपासना के क्षेत्र आते हैं तथा ध्यान में ज्ञान का क्षेत्र आता है। कर्मकांडी तथा उपासक लोग अनेक कल्पित देवी-देवता तथा ईश्वर मानी गयी मूर्तियों की सेवा करते हैं। वे उन्हें सुलाते, जगाते, नहलाते, खिलाते, पिलाते, पंखा करते, आग तपाते, फूल-मालाएं एवं नाना वस्तुएं चढ़ाते, वन्दना तथा आरती करते इस प्रकार सेवा-पूजा में लगे रहते हैं। यद्यपि पूजा-सेवा के उक्त सारे आलंबन काल्पनिक हैं, तथापि कोई केवल चित्त शुद्धि के लिए सच्चे हृदय से करता है तो उसका कुछ-न-कुछ सात्त्विक मनोरंजन होता है। आलंबन कुछ हो, परन्तु उसके विषय में उसका दिल सच्चा होता है। किन्तु जहां हृदय ही कपटपूर्ण है वहां तो सब कुछ दिखावा के लिए किया जाता है। लोग मुझे धार्मिक समझें, भक्त तथा उपासक समझें, लोग धन चढ़ावें इन सबके लिए ही यदि यह सब किया जाता है तो सेवा-पूजा को केवल भोगों का साधन बनाना हुआ। इसी प्रकार लोगों को दिखाने के लिए ध्यान करना और भीतर मान-भोग की कामना रखना, यह सब अनर्थ है। इसीलिए साहेब ऐसे लोगों से पूछते हैं कि तुम्हारे

द्वारा की जाती हुई सेवा-पूजा कैसी है और यह ध्यान भी कैसा है? क्योंकि तुम्हारा जीवनस्तर जब देखा जाता है तब "ऊपर उजल देखो बगु अनुमान" अर्थात तब यही अनुमान होता है कि तुम बगुले के समान ऊपर से तो स्वच्छ धार्मिक हो, परन्तु भीतर काले हो। बगुला-पक्षी जलाशय के निकट बैठता है या जलाशय में भी विचरता है। वह कभी-कभी अर्ध-उन्मीलित नेत्रों द्वारा एक पैर के बल पर ध्यान में बैठा महायोगी लगता है, परन्तु वह यह सब मछलियों को पकड़ने की सुविधा के लिए करता है। इसी प्रकार तुम्हारे द्वारा किये जाते हुए सेवा-पूजा तथा ध्यान आदि लोकदिखावा के लिए हैं, स्वयं सेवा-पूजा पाने के लिए और भौतिक भोगों के लाभ के लिए हैं अतः यह तुम्हारा पतन-पथ है।

"भाव तो भुजंग देखो अति बिबिचारी, सुरति सचान तेरी मति तो मंजारी।" भाव तुम्हारे सांप-जैसे हैं। सांप ऊपर से कोमल, चिकने और सुंदर दिखते हैं, परन्तु उनके मुख में विष होता है। वे अवसर पाते ही मनुष्य को डसकर मार डालते हैं। तुम्हारा भाव भी ऐसा है। तुम केवल देखने में स्वच्छ हो, मन तुम्हारा विषधर है। तुम अत्यन्त विचारहीन, बदचलन तथा कुकर्मी हो। धर्म के नाम पर किस तरह लल्ला-लल्ली बनकर तीर्थों, पुरियों, देव-मंदिरों में दुराचार होते हैं यह सर्वविदित है। रास के नाम पर, लीला के नाम पर, प्रेमा-भक्ति के नाम पर, अमरौली-बज्रौली साधकर योग के नाम पर "भग बिच लिंग लिंग बिच पारा, जो न खसै सो गुरु हमारा" कहकर धार्मिक अपराधी सारा कुकर्म करते हैं। इतना ही नहीं, ज्ञान के नाम पर स्वयं को निर्लिप्त आत्मा एवं ब्रह्म बताकर तथा "भोगे युवति सदा संन्यासी" कहकर धर्म के चोंगाधारी कुकर्म की धारा में बहते हैं। साहेब कहते हैं कि तुम्हारा मन बाजपक्षी के समान शिकार पर ही झपट्टा मारने वाला है। बिल्ली जमीन पर दुबकी पड़ी रहती है और चूहे को देखते ही उस पर कूद पड़ती है। तुम्हारी दशा भी ऐसी ही है। तुम देखने में विनम्र, भक्त, ज्ञानी, योगी आदि बनते हो, परन्तु तुम्हारे आचरण क्रूर, भोगपरायण तथा भौतिकवादी है।

"अति रे विरोधी देखो अति रे सयाना, छौ दर्शन देखो भेष लपटाना।" देखा जाता है कि इन धार्मिक कहे जाने वाले संप्रदायों में परस्पर अत्यंत विरोधी विचार रखने वाले, एक दूसरे से कटा-कटी करने वाले और द्वेष की आग भी उगलने वाले होते हैं। विचारों की भिन्नता तो संसार का स्वभाव है, परन्तु इसको लेकर राग-द्वेष, कलह, लड़ाई-झगड़े, शास्त्रार्थ के नाम पर वाकयुद्ध, हिंसा, हत्या आदि करके इन सांप्रदायिक दरिन्दों ने धर्म को कलंकित कर दिया है। इन सांप्रदायिक स्वामियों में एक-से-एक ऐसे भी सयाने हैं, चालाक एवं महाधूर्त हैं, जो स्वयं को ऐसा प्रदर्शित करते हैं कि ये मानो सर्वज्ञ,

सर्वसमर्थ तथा विशेष अवतार हैं। ये जो चाहें सो कर सकते हैं। इस अपने मिथ्या दैवी एवं ईश्वरीय चमत्कार में वे लोगों को फंसाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। आज भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है। आज भी धार्मिक धूर्तों का एक दल भारत में अवतार बना बैठा है। ये सांप्रदायिक लोग केवल वेष बनाने में लगे हैं। भक्ति, कर्मों की उज्ज्वलता, सच्चरित्रता, ज्ञान, योग, ध्यान, त्याग, शांति आदि को छोड़कर केवल धार्मिक वेष बनाने तथा उसके बल पर पुजवाने के चक्कर में पड़े हैं।

"कहहिं कबीर सुनो नर बन्दा, डाइनि डिम्भ सकल जग खन्दा।" साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! हे भक्तो ! सुनो और सावधान रहो। डाइन और दंभ ने सारे संसार को खा लिया है। इस पंक्ति में डाइन और डिम्भ ये दो शब्द ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। लोगों ने काल्पनिक चुड़ैल को डायन या डाइन कहा है। लोगों का अंधविश्वास है कि कुछ ऐसी स्त्रियां होती हैं जो भूत-प्रेत एवं दैवीशक्ति सिद्ध किये रहती हैं, या वे मंत्र-बल सिद्ध रखती हैं। ऐसी स्त्रियां अपनी इन शक्तियों से जिसको चाहें उन्हें बीमार कर सकती हैं, मार सकती हैं या उनकी बड़ी-से-बड़ी हानि कर सकती हैं। इन्हें लोग डायन या डाइन कहते हैं। लेकिन यह सर्वथा काल्पनिक है। यदि कोई भयंकर एवं क्रूर स्त्री हो उसे ही डाइन कह सकते हैं। चुड़ैल भी एकदम झूठी धारणा है। कुछ स्त्रियों को लोग डाइन या टोनही आदि मानते हैं यह भी केवल अज्ञान का फल है। यहां कबीर साहेब ने तो माया को डाइन कहा है। माया है सांसारिक लिप्सा। सांसारिक भोगों की वासना ही माया है और इसको पूर्ण करने के लिए लोग दंभ करते हैं। दंभ कहते हैं दिखावा को। यहां दंभ अधिक प्रासंगिक है। क्योंकि जो धर्म का चोंगा पहनकर विषयों में डूबे हैं उनका तो प्रतिष्ठित बने रहने का दंभ ही आधार है। वे धर्म एवं वेष का दिखावा करके ही उसकी आड़ में स्वार्थ एवं भोग साधते हैं। साहेब कहते हैं कि हे नर बंदो ! हे मनुष्यो एवं भक्तो ! इन-जैसे स्वामियों से सावधान रहो। जो व्यक्ति स्वयं निष्कपट नहीं, सदाचारी नहीं और अपने सिद्धांतों के लिए सच्चा नहीं, वह स्वयं डूबा है। फिर वह तुम्हारा क्या उद्धार कर सकता है ! ऐसे स्वामियों, धार्मिकों एवं उद्धारकों से सदैव दूर रहना।

ध्यान रहे ! सब समय सच्चे सन्त एवं धर्मपरायण लोग रहे हैं जो जगत में तरण-तारणरूप रहे हैं। उन्होंने स्वयं अपना कल्याण किया है तथा वे संसार के प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। आज भी ऐसे महापुरुषों की कमी नहीं है, हमें सच्चे दिल से खोजी बनना चाहिए। परन्तु धूर्तों का जाल पहले भी ज्यादा था और आज भी ज्यादा है। उनसे सावधान रहकर हमें सच्चे संत और सद्गुरु की खोज कर उनकी शरण लेनी चाहिए।

भूत-प्रेत-योनि केवल भ्रम है

शब्द-105

ये भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया 1
अण्ड न पिण्ड न प्राण न देही, कोटि कोटि जिव कौतुक देही 2
बकरी मुरगी कीन्हेउ छेवा, आगल जन्म उन्ह औसर लेवा 3
कहहिं कबीर सुनो नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवा होई 4

शब्दार्थ—खाया= खोखला कर दिया, दुर्बल बना दिया। जहँड़ाया= ठगाया गया, ठगा गया, हानि उठाया। अण्ड= सूक्ष्म शरीर, बीज। पिण्ड= स्थूल शरीर, देह। प्राण= प्राणवायु, सांस। देही= देह का धारक, जीव। कोटि-कोटि= करोड़ों-करोड़ों। कौतुक= कुतूहल, अचंभा, तमाशा। छेवा= वध, हत्या। औसर= अवसर, मौका, दावं, बदला। लोई= लोगों।

भावार्थ—जो वस्तुतः भ्रममात्र है उस भूत-प्रेत की मान्यता ने मनुष्य के मन को दुर्बल बनाकर उसे खोखला कर दिया है। जो लोग भूत-प्रेत की पूजा-अर्चा में पड़े वे मानो अपने आप को ठगा दिये 1 भूत-प्रेत के न सूक्ष्म शरीर है न स्थूल शरीर, न प्राण है और न जीवात्मा। अर्थात वह कुछ नहीं है, फिर भी करोड़ों-करोड़ों लोग इस तमाशे में अपना सिर पटक रहे हैं 2 ये अंधविश्वासी लोग भूत-प्रेतों के नाम पर बकरी-मुरगी आदि निर्दोष प्राणियों का वध करते हैं। ध्यान रहे, भविष्य जन्म में वे अपना बदला इनसे लेंगे। जो दूसरों का सिर काटता है उसका सिर एक दिन कटता है 3 कबीर साहेब कहते हैं कि हे नर-लोगो ! सुनो, भूत-प्रेत की मान्यता, पूजा आदि करने से उनका भ्रम मन में दृढ़ होता है, अन्यथा वे कुछ नहीं हैं 4

व्याख्या—यह जंगली युग की धारणा है कि आदमी जब मर जाते हैं तब उनमें से जो अशांत आत्माएं हैं वे भूत-प्रेत की योनि में जाकर भटकती हैं। वे पहले से अधिक बलवान हो जाती हैं। वे मनुष्यों को पीड़ित करती रहती हैं। कहा गया कि जो अशांत स्त्रियां हैं वे मरकर चुड़ैल अर्थात प्रेतिन होती हैं और जो अशांत पुरुष हैं वे मरकर प्रेत होते हैं जिन्हें भूत कहते हैं। यदि ब्राह्मण मरकर भूत हुआ तो उसे ब्रह्मराक्षस कहते हैं। मुसलमानों के विश्वासानुसार भूत के लिए जिन या जिन्न शब्द है। यह सब केवल शब्द का अन्तर है। वह मूलरूप में भूत-योनि है जिनकी कल्पना करीब-करीब सभी वर्गों में है और जंगली युग की देन है।

प्रेत का अर्थ है गया हुआ तथा भूत का अर्थ है बीता हुआ। जीव शरीर छोड़कर चला गया यही मानो प्रेत हो गया, और चले जाने के बाद बीत गया तो मानो भूत हो गया। बस, भूत-प्रेत का इतना ही अर्थ है। भूत-प्रेत की कोई योनि

नहीं है। यदि उनकी योनि होती तो उनके वंशजों का पता चलता। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म देहधारियों को देखा जा सकता है, फिर भूत-योनि के देहधारी क्यों नहीं दिखाई देते! किसी खानि के देहधारी की अपनी प्रजनन-प्रक्रिया होती है, आहार-विहार के ढंग होते हैं। भूत-योनि के संबंध में यह सब कुछ भी पता नहीं चलता।

लोग कहते हैं कि भूत-प्रेत हवा के रूप में घूमते हैं और जब चाहते हैं तुरन्त शरीर धारण कर लेते हैं। वे बिल्ली, बैल, भैंसा, हाथी कुछ भी तुरन्त बन जाते हैं और तुरन्त लुप्त भी हो जाते हैं। यह सब मनुष्य का केवल भ्रम है। जब आदमी भूत-प्रेत की भ्रांति से पहले ही भयभीत रहता है तब रात में किसी प्रकार दूर जलते-बुझते प्रकाश, ठूंठ, पेड़ आदि देखकर उन्हें भूत-प्रेत मान लेता है। कभी-कभी अपने दृष्टिदोष से कुछ-का-कुछ दिख जाता है और मनुष्य उसे भूत-प्रेत मान लेता है।

साहेब इस शब्द के शुरू में ही कहते हैं "ये भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया।" यहां भूत के नाम में भ्रम विशेषण है। भूत क्या है? भ्रम। हमारे मन का भ्रम भूत बनकर खड़ा हो जाता है। यह भूत-प्रेत का भ्रम केवल अनपढ़ गंवारों में ही नहीं, किन्तु शिक्षित, विद्वानों तथा शहरी लोगों में भी है। गंवार तो भूत-प्रेत के विषय में मोटे ढंग से कहेंगे कि हमने उन्हें देखा है, परन्तु शिक्षित कहलाने वाले लोग विज्ञान का दुरुपयोग कर उसके बल से भूत-प्रेत सिद्ध करते हैं। वे कहेंगे कि देखो टेलीविजन द्वारा दृश्यों का लुप्तीकरण तथा प्रकटीकरण होता है। दृश्य प्रतिबिम्बों का लघु रेडियो तरंगों द्वारा प्रेषण किया जाता है तथा निकटस्थ या दूरस्थ स्टेशनों पर उन्हीं प्रतिबिम्बों का पुनः निर्माण कर दिया जाता है। इसी प्रकार भूत-प्रेत जब चाहते हैं तब प्रकट होते हैं और जब चाहते हैं तब लुप्त हो जाते हैं। आजकल जितना विज्ञान बढ़ रहा है शिक्षितों का एक वर्ग तो उससे वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर प्रबुद्ध हो रहा है, परन्तु शिक्षितों का एक दूसरा वर्ग अधिकाधिक जड़ होता जा रहा है। यह वर्ग उस विज्ञान को आधार बनाकर अंधविश्वास फैलाता है जिससे वस्तुतः अंधविश्वास मिटाया जा सकता है। आजकल कितनी पत्र-पत्रिकाएं तन्त्र-विशेषांक तथा भूत-प्रेत विशेषांक छापती हैं। इनका खंडन करने वाली पत्र-पत्रिकाएं तो दुर्लभ हैं, हां, इनकी चमत्कारिक कल्पित बातें छाप-छापकर विद्वान कहलाने वाले लोग समाज का आर्थिक तथा बौद्धिक शोषण करते हैं।

साहेब कहते हैं कि इस भ्रमपूर्ण भूत-योनि की भावना ने संसार के लोगों के मन को दुर्बल बना दिया है। इसी दुर्बलता का फल है कि अशिक्षित-शिक्षित लोग कोई कष्ट होने पर भूत-प्रेत का भ्रम कर झाड़-फूंक के चक्कर में पड़े

रहते हैं। लोग औषध-संयम न कर झाड़-फूंक तथा पूजा-पाठ कराने के फेर में पड़कर रोग तथा मौत बुला लेते हैं। साहेब कहते हैं कि "जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया" जो लोग भूत-प्रेत की मान्यता एवं पूजा में पड़े वे ठगा गये। जो व्यक्ति वस्तुपरक बुद्धि का परित्याग कर कल्पित भावनाओं में पड़ेगा वह धोखा खायेगा ही।

"अण्ड न पिण्ड न प्राण न देही, कोटि कोटि जिस कौतुक देही।" अण्ड कहते हैं वीर्य या बीज को, यहां अण्ड का अर्थ सूक्ष्म शरीर है। पिण्ड तो स्थूल शरीर है ही। प्राण का अर्थ साफ है। जिस वायु से श्वसन क्रिया होती है वह प्राण है। देही कहते हैं जो देह को धारण करता है उस जीव को। साहेब कहते हैं कि भूत-प्रेत में ये अंड, पिंड, प्राण तथा जीव कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। जीव तो एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। अतएव बीच में भूत-प्रेत की कल्पना ही निरर्थक है। शीशम, साखू, आम आदि के बीज से खड़ाऊ, फाटक, कुर्सी, टेबल आदि नहीं बन सकते, किन्तु जब वे बीज जमीन में पड़कर पौधे के रूप में उगते हैं, फिर पेड़ होकर वर्षों में उनकी लकड़ियां पकती हैं, तब उन्हें काटकर कुर्सी, टेबल आदि बनाये जा सकते हैं। इसी प्रकार जीव जब शरीर छोड़ता है तब उसके साथ केवल सूक्ष्म-शरीर एवं संस्कार रहते हैं, उनके बल पर वह कुछ भी नहीं कर सकता। न वह क्षण में देह बना सकता है और न किसी को सता सकता है। वह तो जब किसी योनि में देह धारण कर लेता है तब कुछ कर सकता है। अतएव भूत-प्रेत केवल काल्पनिक हैं। परन्तु आश्चर्य है कि करोड़ों-करोड़ों लोग इस तमाशे में अपना सिर पटकते हैं।

"बकरी मुरगी कीन्हेउ छेवा, आगल जन्म उन्ह औसर लेवा।" भूत-प्रेत तथा देवी-देवता की मान्यता वाले उनके नाम पर बकरी-मुरगी काटते हैं। वे कहते हैं कि यह भूत-प्रेत तथा देवी-देवता की तृप्ति के लिए किया जाता है। इनके भूत-प्रेतादि ने आज तक किसी सिंह को खाने की बात नहीं की कि वे अपने भक्तों से कहें कि हमारे नाम पर सिंह चढ़ाओ। यह जीभ का स्वार्थी तथा मूढ़ आदमी बकरी-मुरगी को दीन जानकर उनका वध कर देता है। इस जीव-वध के मूल में मनुष्य का केवल मिथ्या स्वार्थ तथा अंधविश्वास है। साहेब कहते हैं कि जो लोग निरपराध प्राणियों का वध करते हैं उन्हें आगे जन्मों में इसका बदला देना पड़ेगा। तुम जिसको मारोगे वह समय पड़ने पर तुमसे बदला लेगा। पाप करने वालों को देर-सबेर अपने कर्मों के फल तो भोगने ही पड़ेंगे।

"कहहिं कबीर सुनो नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवा होई।" साहेब कहते हैं कि हे नर लोगो ! भूत की भावना, भूत की पूजा तथा भूत की मान्यता करने

से भूत का भ्रम खड़ा होता है। इनकी भावना, मान्यता तथा पूजा-अर्चा छोड़ दो, बस ये कुछ नहीं हैं।

यहां 'नर लोई' शब्द आया है। 'लोई' शब्द जो कबीर साहेब की वाणियों में 'लोगों' के अर्थ में है, कुछ विद्वानों को इस 'लोई' शब्द से एक कल्पित स्त्री का स्वप्न होने लगता है जिसे वे कबीर साहेब से जोड़ने का अपराध करते हैं। परन्तु बीजक में जहां कहीं 'लोई' शब्द आया है 'लोगों' के अर्थ में है। लोगों के अर्थ में 'लोई' शब्द का प्रयोग अन्य कवियों ने भी किया है, जैसे शेख अब्दुल कुद्दूष गंगोही ने कहा "अलखदास आखै सुन लोई।" गोरख बानी में है "बंदत गोरखनाथ सुनो नर लोई।" मधुमालती में "अंत हाथ पछितावा लोई।" इत्यादि।

भूलभुलैया में जीवन मत बिताओ

शब्द-106

भँवर उड़े बग बैठे आई, रैन गई दिवसो चलि जाई 1
हल हल काँपे बाला जीव, ना जानों का करिहैं पीव 2
काँचे बासन टिके न पानी, उड़ि गये हंस काया कुम्हिलानी 3
काग उड़ावत भुजा पिरानी, कहहिं कबीर यह कथा सिरानी 4

शब्दार्थ—भँवर= काले बाल। बग= उजले बाल। बाला जीव= भोला एवं मूढ़ मनुष्य। पीव= दैव। बासन= बरतन, शरीर। हंस= जीव। कुम्हिलानी= मुरझा गया, सूखने लगा। काग उड़ावत= व्यर्थ का काम करते। भुजा पिरानी= वृद्ध होना। यह कथा= जीवन लीला। सिरानी= समाप्त होना।

भावार्थ—भंवरे उड़ गये और बगुले आकर बैठ गये; अर्थात काले बाल सफेद हो गये और देखते-देखते यों ही रात-दिन बीते चले जा रहे हैं 1 यह मूढ़ मानव भावी कर्म-फल-भोगों की दुखद संभावना को लेकर थर-थर कांपता है और सोचता है कि दैव मेरे विषय में पता नहीं क्या करेगा 2 मिट्टी के कच्चे बरतन में देर तक पानी नहीं टिक सकता; अर्थात इस क्षणभंगुर शरीर में प्राण ज्यादा दिन नहीं रुक सकते। एक दिन चेतन हंस इस काया को छोड़कर उड़ जाता है और यह मुरझा जाती है 3 सद्गुरु कहते हैं कि आदमी जीवनभर विषय-सेवन एवं व्यर्थ क्रिया करते-करते बूढ़ा हो जाता है, और इसी में उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है 4

व्याख्या—"भँवर उड़े बग बैठे आई।" यहां भंवर तथा बग रूपक मात्र हैं। भंवरे काले तथा बगुले सफेद होते हैं। यहां भंवरे काले बाल तथा बगुले

. विस्तार के लिए देखें 'कबीर : जीवन और दर्शन' पांचवां अध्याय।

सफेद बाल हैं। मनुष्य के जीवन के आरम्भ से उसके बाल काले होते हैं। जवानी तक प्रायः काले ही रहते हैं। परन्तु कुछ दिनों में उजले होने लगते हैं। शौकीन मनुष्यों की दाढ़ी-मूंछ में जब कहीं-कहीं बाल उजले होने लगते हैं तब वे उन्हें उखाड़ देते हैं और जब कई बाल उजले होने लगते हैं तब वे उन्हें कैंची से काटते हैं, जब अधिक बाल उजले होने लगते हैं तब उनमें से कुछ लोग औषध का प्रयोग करते हैं जिससे बाल काले दिखें। हम कृत्रिम रूप से बालों को भले ही काले बनाये रखें, परन्तु अवस्था के प्रवाह को नहीं रोक सकते। शरीर तो जवानी से बुढ़ापा की ओर निरंतर जायेगा ही। दिन बीतने के बाद रात तथा रात बीतने के बाद दिन बीतते हैं। इस रफ्तार को कौन रोक सकता है "सुबह होती है, शाम होती है। उम्र यों ही तमाम होती है।" रात और दिन रूपी काले और सफेद चूहे हमारे जीवन-वृक्ष को निरंतर काटते हैं। हर प्राणी हर समय मौत की तरफ निरंतर खिसक रहा है। इस प्रवाह को रोकने वाला आज तक संसार में कोई नहीं हुआ। और तथ्य के अनुसार अनुमान होता है कि आगे भी इसे कोई रोक नहीं सकता।

"हल-हल काँपे बाला जीव" यह अबोधी आदमी थर-थर कांपता है कि पता नहीं दैव हमारी क्या दशा करेगा! संसार में सर्वत्र एक कारण-कार्य की व्यवस्था है। मनुष्य के जीवन में भी यह व्यवस्था है। इस व्यवस्था का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जीव जो कुछ भी करता है उसका फल उसे भोगना पड़ता है। डरने और कांपने से फल-भोग नहीं टल सकते। दुखों से बचने का रास्ता सच्चरित्रता है। दूसरों को दुख देने से बचो। ध्यान रहे, तुम दूसरों को असुविधा तथा दुख पहुंचाकर सुखी नहीं हो सकते हो। यदि तुम दूसरे सबका हितचिंतन करते हो और यथासाध्य हित करते हो तो तुम स्वयं सब समय सुखी रहोगे। जो लोग दूसरों की सेवा करके, दूसरों का हित करके यह कहते हैं कि जिसका मैंने हित किया वह मेरा एहसान नहीं माना, किन्तु मेरे उलटा किया, तथा इस बात को लेकर बहुत पीड़ित रहते हैं और कहते हैं कि मैं तो परोपकार करके भी सुखी नहीं हूं, तो ऐसे लोगों द्वारा की गयी पर-सेवा तथा परोपकार के मूल में शुद्ध निष्काम भाव नहीं है। जो पर-सेवा तथा परोपकार करके उसके बदले में सहानुभूति, प्रशंसा तथा कुछ भी चाहता है वह सुखी नहीं हो सकता। आदमी तभी दुखों से मुक्त तथा सुखी हो सकता है जब वह मन, वाणी तथा कर्मों से दूसरों को पीड़ा न दे, प्रत्युत निष्कामभाव से सुख देने का प्रयास करे। परन्तु आदमी ऐसा न कर अपने जीवन में दूसरे का अहित करता है और स्वयं में इन्द्रिय-लंपट रहता है। इसलिए उसका मन सदैव अशांत रहता है। ऐसा आदमी जितना बूढ़ा होता है उतना उद्विग्न तथा अपने भावी संभावित दुखों के

लिए आशंकित होता है। जिसने अपने आप को सब ओर से अनासक्त तथा आत्मस्थ नहीं बनाया उसकी नींव बालू-जैसी रहती है, उसके मन में सदैव भय सवार रहता है।

"काँचे बासन टिके न पानी, उड़ि गये हंस काया कुम्हिलानी।" सद्गुरु यहां जीवन की क्षणभंगुरता के लिए बड़ा सटीक उदाहरण देते हैं। मिट्टी का कच्चा घड़ा हो, यदि उसमें पानी भर दिया जाये तो आप जानते हैं कि उस घड़े के टूटने में देरी नहीं लगेगी। यह शरीर ऐसे ही दुर्बल है। इसके विनशते देरी नहीं लगती। किसी समय विश्वास नहीं किया जा सकता कि यह शरीर कब तक है। वायुयान, ट्रेन, बस, कार, स्कूटर, साइकिल आदि से यात्रा करते, पैदल चलते, बिस्तर पर लेटे, कब यह कच्चा साज बिखर जायेगा, इसे कोई नहीं जानता। जहां जीव निकला, यह शरीर कितना ही सुन्दर, सुगठित, युवक रहा हो तुरंत कुम्हला जाता है। आदमी अपनी देह का कितना अहंकार रखता है और इस पर यह कितना आशा का महल बनाता है, परन्तु वह सब क्षण में भहरा पड़ता है।

"काग उड़ावत भुजा पिरानी, कहहिं कबीर यह कथा सिरानी।" यहां इस पंक्ति का जो प्रथम अंश है "काग उड़ावत भुजा पिरानी" एक मुहावरा जैसा है। काग उड़ावत का अर्थ है व्यर्थ काम करना और भुजा पिरानी का अर्थ है शरीर वृद्ध हो जाना। जैसे कोई आदमी घर का कोई सार्थक काम न करे, वह आलसी हो और दिनभर दरवाजे पर बैठा ढेला लेकर कौए उड़ाता रहे और इसी क्रिया में बूढ़ा हो जाये, तो उसका जीवन व्यर्थ ही बीता हुआ माना जायेगा। यहां इन्द्रिय और मन को जीवनभर विषयों में दौड़ाना यही मानो कौआ उड़ाते जीवन को थकाना है। आदमी जीवन को मन और इंद्रियों की लम्पटता में ही बिता देता है। जो विषयों में क्षीण होते-होते बूढ़ा होता है, उसके जीवन में शांति कहां से आयेगी? कौए जैसे मलिन वस्तुओं को खाते, कर्कश आवाज करते तथा सशंक बने जीवन बिता देते हैं वैसे ये प्रपंची जीव अपने मन, वाणी तथा कर्मों से लम्पट बने जीवन खो देते हैं। इस प्रकार यह जीवन-लीला यों ही समाप्त हो जाती है।

विषयों को छोड़कर अपने स्वामित्व में प्रतिष्ठित होओ

शब्द-107

खसम बिनु तेली को बैल भयो 1
बैठत नाहिं साधु की संगत, नाधे जन्म गयो 2
बहि बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, यम को दण्ड सह्यो 3
धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो 4

खसमहि छाँड़ि विषय रंग राते, पाप के बीज बोयो 5
झूठी मुक्ति नर आश जीवन की, उन्ह प्रेत को जूँठ खयो 6
लख चौरासी जीव जन्तु में, सायर जात बह्यो 7
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, उन श्वान को पूँछ गह्यो 8

शब्दार्थ—खसम=स्वामी, पति, निजस्वरूप चेतन। नाधे=जुते हुए। पचहु=पचना, जी-तोड़ मेहनत करना, परेशान होना। यम=मलिन वासना, बुरे संस्कार, अशुद्ध मन। खसमहि=निजात्म देव को। राते=आसक्त हुए। प्रेत को जूठ=अनेकों द्वारा अनेक बार भोगी हुई यह जड़-प्रकृति। सायर=समुद्र।

भावार्थ—इस देह में रहने वाले मन, बुद्धि, इंद्रियादि के स्वामी निजात्मदेव के परिचय बिना आदमी तेली के बैल के समान हो गया है जो कोल्हू में जुता हुआ निरंतर चलता है और इसी में उसका जीवन जाता है। संसारी आदमी की दशा भी यही है। वह कभी साधु-संगत में नहीं बैठता 1-2 वह अपने देहेन्द्रिय-भोगों के मिथ्या स्वार्थ में पड़ा हुआ चरित्रभ्रष्ट होकर निस्तेज होता है और इन सबके लिए जी तोड़ परिश्रम करता एवं परेशान होता है और इन सबके फल में वह मलिन वासनाओं एवं दुष्ट संस्कारों द्वारा निरंतर प्रताड़ित होता है 3 इसने धन, स्त्री, पुत्र तथा राजकाज के लिए अपने सिर पर दुनियाभर का बोझ उठा रखा है 4 यह अपने आत्मदेव की बोधस्थिति छोड़कर विषयों के रंग में ही डूब गया और उनके लिए कर्तव्य-अकर्तव्य सब कुछ करके इसने अपने हृदय-क्षेत्र में पाप के बीज बो लिये 5 निज चेतनस्वरूप की स्थिति छोड़कर जहां तक मनुष्यों को बाहर मुक्ति की आशा दी जाती है वह सब झूठी है। इस झूठी मुक्ति की आशा में पड़कर मनुष्य मुरदे का जूठा खाता है। यह सारी जड़ प्रकृति अनेकों की भोगी हुई होने से मानो मुरदे का जूठा है 6 चौरासी लाख योनिरूपी समुद्र में सब जीव बहे जा रहे हैं 7 सद्गुरु कबीर कहते हैं कि खेद है कि ये मूढ़ मनुष्य कुत्ते की पूंछ पकड़कर इस विशाल संसार-सागर से तरना चाहते हैं; अर्थात मन की कल्पनाओं का सहारा लेकर उबरना चाहते हैं 8

व्याख्या—मनुष्य माया में लिप्त होकर किस तरह संसार में पिस-पिस कर जीवन बिताता है और इन सबका उसे क्या फल होता है इन सब विषयों पर इस शब्द में बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है। शब्द की पहली पंक्ति है "खसम बिनु तेली को बैल भयो" खसम अरबी भाषा का शब्द है। इसके अर्थ शत्रु तथा स्वामी दोनों होते हैं। यहां स्वामी अर्थ है। 'तेली का बैल' मुहावरा है जिसका अर्थ होता है रात-दिन पिसने वाला व्यक्ति। यह मुहावरा क्यों बना, इसका उत्तर सरल है। तेली अपने तेल पेरने के कोल्हू में बैल को जोत देता है, उसकी

आंखों पर पट्टी बांध देता है और उसे एक बार हांक देता है, फिर वह उस कोल्हू में अपने आप चलता रहता है। तेली के बैल के लिए कोई रात या दिन का नियम नहीं रहता। वह घर के भीतर ही कोल्हू में जुता निरन्तर चलता रहता है। संसारी मनुष्य की दशा यही है। उसे यह पता नहीं है कि मेरी आत्मा ही सभी ज्ञान-विज्ञान का पति है। वह अपने स्वामित्व को छोड़कर इंद्रियों का गुलाम बना हुआ संसार में नधा चलता रहता है। वह एक बार संसार में जुत जाता है और जीवनभर सांसारिकता में पिसता रहता है। तेली के बैल की तरह उसे कभी फुरसत नहीं मिलती। तेली के बैल को तो चाहे फुरसत मिल भी जाये, परन्तु सांसारिकता में डूबे मनुष्य को फुरसत नहीं मिलती। संस्कृत भाषा के अनुसार ख+सम—ख= आकाश तथा सम= समान अर्थ होता है। खसम अर्थात आकाश के समान। आकाश के समान सब तरह के भावों से रहित। साहेब कहते हैं कि आकाश के समान निर्मलता के बिना तुम तेली के बैल बन गये हो। जिसका मन आकाश के समान निर्मल है वह सांसारिक घनचक्कर में क्यों पड़ेगा !

"बैठत नाहिं साधु की संगत, नाधे जन्म गयो।" जैसे तेली का बैल कोल्हू में नधा हुआ जीवन बिताता है, वैसे मनुष्य सांसारिक धन्धे में जुता हुआ समय बिताता है। उसे फुरसत नहीं कि कभी साधु-सन्तों की संगत में बैठ जाये और उनके शीतल वचनों से अपने आप को शीतल कर ले। मनुष्य की बुद्धि जड़ हो जाने से वह सांसारिक स्वार्थ को तो लाभ समझता है, इसलिए उसके लिए वह रात-दिन धन्धे में नधा रहता है, परन्तु यह नहीं समझता कि मन की शांति परम लाभ है। इसे न समझने से ही वह साधु-संगत के लिए समय नहीं निकालता। समय तो सबके लिए समान है। राजा हो या चपरासी दिन-रात में सबके लिए चौबीस घंटे ही होते हैं। जो लोग कहते हैं कि क्या करें हमें समय नहीं मिलता, इसलिए सत्संग में नहीं जा पाते, वे गलत कहते हैं। यह बात ठीक है कि ऐसी विवशता कभी-कभी हो सकती है, परन्तु यदि वह बराबर यही मानता है कि क्या करें समय नहीं मिलता, तो वह धोखे में है। हम अपने समय को कहां लगाना चाहते हैं, यह हमारे विचारों तथा हानि-लाभ निश्चय पर निर्भर करता है। यदि हमें मानसिक शांति का लाभ निश्चय हो जायेगा, तो निश्चित ही सत्संग के लिए समय निकालेंगे।

"बहि बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, यम को दण्ड सह्यो।" रात-दिन काम-धन्धे में ही लगे रहना बह-बहकर मरना है। अथवा सांसारिकता में इतना डूब जाना कि अपने नैतिक-नियमों एवं मर्यादा में न रह पाना, पदे-पदे पथभ्रष्ट होना बह-बहकर मरना है। जीवन में संयम और चरित्र सब कुछ है। जो

विषयों में अधिक डूब जाता है उसका यह सब खो जाता है। यही उसका बह-बहकर मरना है। "पचहु निज स्वारथ" अपनी इंद्रियों के भोगों के स्वार्थ में डूबकर रात-दिन जी तोड़ मेहनत करना तथा परेशान होना पचना है। किसी दिशा में अटूट परिश्रम करना उस दिशा में उन्नति का साधन है, किन्तु विषयों की तृष्णा में पड़कर रात-दिन दुनियादारी में नधे रहना आत्मशांति के लिए ठीक नहीं है। भौतिक उन्नति के लिए श्रम करना चाहिए यह ठीक है, परन्तु आत्मशांति के लिए भी दूसरी दिशा में समय निकालना चाहिए। आदमी केवल भौतिक पदार्थों का बंडल नहीं है। उसकी इस भौतिक देह के भीतर चेतन आत्मा भी है जो उसका सार स्वरूप है। शरीर के लिए भौतिक पदार्थ चाहिए, किन्तु आत्मा के लिए शांति चाहिए। आत्मज्ञान तथा आत्मशांति की अवहेलना कर केवल भोगों और दुनियादारी में डूबा आदमी अनेक मलिन वासनाओं एवं कुसंस्कारों से आबद्ध हो जाता है। ये मलिन वासनाएं एवं कुसंस्कार ही यम बन जाते हैं जिनका दण्ड जीव को रात-दिन सहना पड़ता है। मनुष्य के मन के भीतर जो काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा, मोह, भय, चिंता, विकलता आदि उसे नोचते रहते हैं यही तो यम का दंड है जो हर संसारी जीव रात-दिन सह रहा है।

"धन दारा सुत राज काज हित, माथे भार गह्यो।" इस दुनिया में आकर आदमी धन-परिवार तथा संसार में इतना भूल जाता है कि उसे यह होशहवास ही नहीं रहता कि मैं कौन हूं तथा जीवन का लक्ष्य क्या है! आदमी अपने स्वरूप को भूलकर धन, घर, स्त्री, पुत्र, बंधु-बांधव ही सब कुछ मान लेता है। यह ठीक है कि मनुष्य का इन सबके लिए अपना उत्तरदायित्व होता है। उसे पहले तो अपने माने हुए शरीर के लिए ही कुछ करना पड़ता है। इसके बाद उसको स्वजन माने गये लोगों के लिए करना पड़ता है। घर, धन तथा सांसारिक पसारा को भी देखना पड़ता है, क्योंकि उन्हीं में उसका तथा उसके आश्रयीजनों का निर्वाह होना है। परंतु उसे यह भी विचारना चाहिए कि क्या मेरे इतने ही कर्तव्य हैं। उसे यह समझना होगा कि उसका सबसे बड़ा कर्तव्य होगा अपनी आत्मा का उद्धार करना। इस संसार में जीव का कुछ भी अपना नहीं है। उसने जिस धन-परिवार में उलझकर अपने उद्धार का काम दरकिनार कर रखा है वह उसके बंधनों के कारण बनते हैं, कल्याण के नहीं। संसार के धन-परिवार के प्रति मेरे मन के लोभ-मोह ही मेरे लिए फांसी बनते हैं। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि जीव अकेला आया है और अकेला ही जायेगा। इसलिए यहां मिले हुए सारे प्राणी-पदार्थों के भुलावे को छोड़कर आत्म-उद्धार के विषय में सचेष्ट रहना चाहिए।

"खसमहि छाँड़ि विषय रंग राते, पाप के बीज बोयो।" देह, इंद्रिय, मन, बुद्धि तथा सारे ज्ञान-विज्ञान का पति एवं स्वामी जीव ही है। जीव को चाहिए कि वह अपने स्वामीपने को समझे। वह यह समझे कि मैं मन-इंद्रियों का दास नहीं हूं, किन्तु इनका स्वामी हूं। मुझे चाहिए कि मैं मन और इंद्रियों को जीतकर रहूं। परन्तु जीव को अपने स्वरूप की पहचान नहीं है। वह अपने स्वामीपने को नहीं जानता। इसलिए वह अपने स्वामीपने को छोड़कर इंद्रियों के विषयों के रंग में लीन हो जाता है। "खसमहि छाँड़ि विषय रंग राते" का यही अभिप्राय है। यहां रंग का अर्थ है भावना और राते का अर्थ है आसक्त होना। जीव अपनी सर्वोच्च गरिमा को न समझकर विषयों की भावनाओं में ही सदैव डूबा रहता है। साधक भी जितने क्षण विषयों की भावना में रहता है उतने क्षण अपने स्वरूपज्ञान की प्रतिष्ठा से अलग हो जाता है, फिर संसारी जीव की क्या बात, जो हर क्षण विषयों की भावना ही में आकंठ डूबे हैं। जो व्यक्ति जितना अधिक विषयों में डूबेगा वह उतना अधिक पाप के बीज बोयेगा। विषय-वासना स्वयं में ही महापाप है। जिस भावना के आने पर व्यक्ति अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित न रह जाये और विचलित होकर मलिन-मन तथा मलिन-क्रिया वाला हो जाये, वही तो सबसे बड़ा पाप है। मन की मलिनता एवं मन की चंचलता गुरुतर पाप है। यह मन जितना अधिक विषयलीन होता है उतना अधिक पर-अपकार, पर-हिंसा आदि का पाप करता है। संसार के सारे कुकर्मों एवं पापों के मूल में है विषयासक्ति। अतएव सद्गुरु बड़े मनोवैज्ञानिकतापूर्वक कहते हैं कि जीव अपने स्वामित्व से वंचित होकर विषयों में डूबता है और यही मानो वह पाप के बीज बोता है।

"झूठी मुक्ति नर आश जीवन की, उन्ह प्रेत को जूँठ खयो।" पापी-पुण्यात्मा, रागी-विरागी सबके मन में मुक्ति का महत्त्व है। इस प्रकार मुक्ति का महत्त्व देखकर लोगों ने अपनी धारणा के अनुसार गलत-सही सारी इच्छित वस्तुओं एवं उद्देश्यों की प्राप्ति को ही मुक्ति बतलाना शुरू कर दिया। कुछ लोगों ने काया-कल्प कर तथा औषध सेवनकर शरीर को अमर बनाने की दुराशा ही मुक्ति मान ली। कुछ लोगों ने काम-भोग को मुक्ति मान लिया। वैयाकरणों ने शब्द-शोधन को तथा संगीतज्ञों ने जीवनभर संगीत में डूबे रहने को मुक्ति मान लिया। कुछ लोगों ने किसी कल्पित लोकविशेष, सातवें स्वर्ग एवं सातवें आसमान पर पहुंचने की दुराशा को मुक्ति मान लिया। कुछ लोगों ने यह कल्पना की कि भगवान है। उसका एक लोक है। उसके लोक में बसना सालोक्य, उसके पास बसना सामीप्य, उसके आकार का हो जाना सारूप्य तथा उसमें लीन हो जाना सायुज्य मुक्ति है। कुछ लोगों ने माना कि मैं बूंद हूं और

समुद्र मुझसे अलग है; अतः उसमें मिल जाना मुक्ति है। इस प्रकार अपनी आत्मा से अलग विषयों एवं अवधारणाओं में स्थिति ही को मनुष्य ने मुक्ति मान लिया। साहेब कहते हैं कि यह मुक्ति झूठी है। जहां तक तुम अपने चेतनस्वरूप से अलग विश्राम एवं मुक्ति मानते हो, वह सब झूठा है; क्योंकि संसार के विषय तथा मन की धारणा तुम्हारा स्वरूप नहीं बन सकते। निज चेतनस्वरूप के अलावा सब कुछ नाशवान, छूटने वाला तथा विजाति है; अतएव वह सब हमारी स्थिति, विश्राम एवं स्थायी ठहराव का आश्रय नहीं बन सकता। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि तुम आत्मस्थिति के अलावा जहां तक मुक्ति की व्याख्या एवं मान्यता करते हो, सब झूठा है। निजस्वरूप की स्थिति छोड़कर मुक्ति की आशा झूठी है। अपनी चेतना एवं आत्मा के अलावा चाहे वह स्थूल विषय हो या मन की अवधारणा, सब जड़ विजाति प्रकृति है, और यह प्रकृति असंख्य पुरुषों द्वारा असंख्य बार भोगी गयी होने से जूठी है। "प्रेत को जूँठ" का अर्थ है मरे हुओं का जूठा। असंख्य लोग जिसे भोग-भोगकर मर चुके हैं, वह जड़ प्रकृति प्रेत का जूठा है। झूठी मुक्ति की आशा वाले उस जूठी जड़-प्रकृति में किसी-न-किसी प्रकार रमना ही मुक्ति मानते हैं जिसे असंख्यों ने भोगा है। अतएव सद्गुरु जूठी जड़ प्रकृति से वैराग्य कराकर साधक को संकेत देते हैं कि वह जड़ प्रकृति से लौटकर अपने स्वरूप में स्थित हो। मेरी अपनी आत्मस्थिति किसी अन्य की जूठी नहीं हो सकती। क्योंकि आत्मस्थिति का उपभोक्ता स्वतः आत्मा ही है, दूसरा नहीं। इसलिए आत्मस्थिति एवं स्वरूपस्थिति ही विवेकियों का प्राप्तव्य है। स्वरूपस्थिति ही मोक्ष है।

"लख चौरासी जीव जन्तु में, सायर जात बह्यो।" भारतीय लोकधारणा के अनुसार संसार में सब चौरासी लाख योनियां हैं। चौरासी लाख से कम हों या अधिक हों, यहां 'चौरासी लाख' का लाक्षणिक अर्थ समझना चाहिए संसार की सारी योनियां। ये संसार की असंख्य योनियों का समुच्चय मानो विशाल समुद्र है जिसमें सब जीव निरंतर बहे जा रहे हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि हे सन्तो! इस विशाल संसार-सागर से तरने के लिए लोगों ने कुत्ते की पूंछ पकड़ी है। श्वान की पूंछ पकड़कर नदी पार करना भी कठिन है, फिर उससे समुद्र कैसे पार किया जा सकता है? श्वान की पूंछ एक मुहावरा है जिसमें दुराशा की व्यंजना है। श्वान की पूंछ न कभी सीधी होती है तथा न उसे पकड़कर समुद्र पार किया जा सकता है। इसी प्रकार मन के कुटेवों, विषय-वासनाओं तथा दुर्गुणों को रखकर न कोई सुखी हो सकता है तथा न मन की अवधारणाओं के सहारे कोई संसार-सागर से मुक्त हो सकता है। इसके लिए तो मन की सारी वासनाओं को त्यागकर, मन को भी अपने से अलग समझकर उसका द्रष्टा हो जाना चाहिए तथा मन को छोड़कर अपने आप में स्थित हो जाना चाहिए।

सद्गुरु ने इस शब्द में इस बात पर जोर दिया है कि जीव अपने स्वामित्व को भूलकर विषयों में तथा संसार के प्रपंचों में बह रहा है। इस बात पर लक्ष्य रखकर उन्होंने विषयों तथा सांसारिकता से हटने की ओर तीव्र व्यंजना की है, और दो बार खसम शब्द कहकर साधक को याद दिलाया है कि तुम अपने स्वामीपने को समझो। मन-इन्द्रियों की गुलामी तथा नाना कल्पित अवधारणाओं को छोड़कर अपने आत्मदेव-चेतनदेव में स्थित होओ।

अपरिपक्व साधक का मनोभाव

शब्द-108

अब हम भैलि बहुरि जलमीना, पूर्वल जन्म तप का मद कीन्हा 1
तहिया मैं अछलेउँ मन बैरागी, तजलेउँ मैं लोग कुटुम राम लागी 2
तजलेउँ मैं काशी मति भई भोरी, प्राणनाथ कहु का गति मोरी 3
हमहिं कुसेवक कि तुमहिं अयाना, दुइमा दोष काहि भगवाना 4
हम चलि अइलि तुम्हारे शरणा, कितहुँ न देखों हरिजी के चरणा 5
हम चलि अइलि तुम्हारे पासा, दास कबीर भल कैल निरासा 6

शब्दार्थ—भैलि= हो गया। जलमीना= जल के बिना व्याकुल मछली की तरह। तहिया= साधना के आरंभ काल में। अछलेऊँ= था। भोरी= भ्रमित। अयाना= न जानने वाला, न समझने वाला।

भावार्थ—एक सगुणोपासक साधक कहता है कि—मैं कुछ दिनों पूर्व अच्छा साधक था, परन्तु मुझे यह अहंकार हो गया कि मैं पूर्वजन्मों का तपस्वी एवं दिव्य संस्कारी हूं, इसलिए मेरा पतन नहीं हो सकता। इस मद में पड़कर मैंने साधना ढीली कर दी। फल यह हुआ कि अब मैं पुनः जल के बिना तड़पती हुई मछली के समान शांति से दूर हो गया हूं 1 जब मेरी साधना की शुरुआत थी, तब मैं हृदय से सच्चा विरक्त था। मैंने राम की प्राप्ति के लिए लोग-कुटुम्ब सबका परित्याग कर दिया था 2 लेकिन अभिमान के कारण मेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी और मैंने सत्संग और ज्ञान की नगरी काशी का परित्याग कर दिया। हे प्राणनाथ! कहिए, मेरी क्या दशा होगी? 3 मेरे द्वारा की जाती हुई आपकी सेवा ठीक नहीं है या आप मेरी सेवा को समझ ही नहीं पा रहे हैं? हे भगवान दोनों में किसका दोष है! 4 मैं तो आपकी शरण में चला आया हूं, परन्तु आप हरि जी के चरणों के दर्शन कहीं नहीं हो रहे हैं 5 मैं तो आपके पास चला आया हूं, परन्तु आपने मुझे बिलकुल निराश कर दिया है 6

व्याख्या—उपर्युक्त शब्द में "तजलेउँ मैं काशी मति भई भोरी, प्राणनाथ कहु का गति मोरी।" पंक्ति के आधार पर कुछ लोग कल्पना करने लगते हैं कि कबीर साहेब जब काशी से मगहर चले गये तब उनको इस काम पर पश्चाताप होने लगा और उसी पश्चाताप में उन्होंने यह शब्द तथा इस शब्द में यह पंक्ति कही है। परन्तु कबीर साहेब के विषय में इस ढंग से सोचना उनके गहन-गम्भीर तत्त्व को न समझना है। यदि उन्हें काशी से मगहर जाने से पश्चाताप होता, तो वे पुनः लौटकर काशी आ सकते थे। कबीर साहेब कोई कच्चे तागे से नहीं बने थे, किन्तु फौलादी थे। वे भावुकता एवं हठ में काशी से मगहर नहीं चले गये थे, किन्तु वे अपनी स्वरूपस्थिति की परिपक्वता में पूर्ण थे। उनके लिए सब समय काशी, मगहर, ऊसर समान थे। कबीर-जैसे उच्चतम स्थिति प्राप्त पुरुष की व्याख्या करने के लिए कम-से-कम उच्चतम ख्याल तो होने ही चाहिए। अपनी मंचीय कविता तथा अखबारी विवेचन-छाप से कबीर-जैसे स्थितप्रज्ञ पर कुछ नहीं लिखना चाहिए और न बोलना चाहिए। कबीर का मोक्षधाम न तो काशी आदि बाह्य प्रदेश हैं और न उनका हरि चरण-हाथ वाला है जिसके दर्शन के लिए उन्हें बे-ताब होना पड़े। उनका हरि उनकी अंतरात्मा है और उनका मोक्षधाम वासनाहीन स्थिति है। इसलिए उन्हें अपने जीवन में न कोई पश्चाताप है न शिकायत है। वे तो कहते हैं—"यदि तुम मेरे समान पूर्ण संतुष्ट होना चाहते हो तो सबकी आशा-वासना छोड़ दो, और मेरे समान सर्वथा निष्काम हो जाओ, फिर सब सुख तुम्हारे पास है।"

इस 108वें शब्द का भाव किसी अपरिपक्व सगुणोपासक की कल्पना है। जिसका चित्रण सद्गुरु ने बड़े मार्मिक ढंग से किया है। कबीर साहेब के पास अनेक प्रकार के लोग आते थे; और ऐसे अनेक अवसर पड़ते थे; जब उनके मानसिक बिम्बों को लेकर कबीर साहेब के कंठ से कविता निकल पड़ती थी। अतएव यह पूरा 108वां शब्द किसी अपरिपक्व साधक के मनोभाव का चित्रण है।

दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना

शब्द-109

लोग बोले दूरि गये कबीर, ये मति कोइ कोइ जानेगा धीर 1
दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना 2
जेहि जिव जानि परा जस लेखा, रजु का कहै उरग सम पेखा 3

. जो तू चाहे मूझको, छाँड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥ बीजक, साखी 298॥

यद्यपि फल उत्तम गुण जाना, हरि छोड़ि मन मुक्ति उनमाना 4
हरि अधार जस मीनहि नीरा, और जतन कछु कहैं कबीरा 5

शब्दार्थ—मति= समझ, राय, अभिप्राय। धीर= स्थिर-चित्त, विवेकवान। मर्म= भेद। आना= दूसरा। लेखा= अंदाज, विचार। रजु= रस्सी। उरग= सांप। पेखा= देखा। हरि= अंतरात्मा, चेतनदेव। उनमाना= अनुमान, कल्पना।

भावार्थ—लोग कहते हैं कि कबीर बहुत दूर पहुंच गये हैं। परन्तु इस 'दूर' का अभिप्राय कोई बिरला स्थिरचित्त विवेकवान ही समझ सकता है 1 दशरथ-सुत श्रीराम की तीनों लोकों में प्रसिद्धि है; परन्तु राम-ऐसा नाम जिस सार्वभौमिक उपासनीय तत्त्व का है उसका रहस्य कुछ दूसरा ही है 2 जिस व्यक्ति में जैसी समझ होती है, जो जैसा अनुमान करता है, वैसा राम के विषय में कह देता है। देखो, कितने लोग अपने दृष्टि-दोष से रस्सी को सांप समझ लेते हैं 3 यद्यपि दशरथ-सुत श्रीराम में श्रद्धा होने से फल उत्तम होंगे, क्योंकि जाना जाता है कि उनमें अनेक उत्तम गुण थे; परन्तु लोगों की भूल यह है कि उनका मन अपनी अंतरात्मारूपी राम को छोड़कर दशरथ-सुत राम की भक्ति में एवं उनमें मिलकर मुक्ति की कल्पना करने लगता है 4 परंतु कबीर तो मुक्ति के लिए कुछ दूसरा ही साधन बता रहे हैं, वह है जलमीनवत निरंतर अपनी आत्मारूपी हरि में रमण करना 5

व्याख्या—इस शब्द में सद्गुरु ने मोक्ष के आश्रय-भूत परमतत्त्व का सुन्दर एवं सटीक विवेचन किया है। वे इस शब्द में पहली पंक्ति कहते हैं "लोग बोले दूरि गये कबीर, ये मति कोइ कोइ जानेगा धीर।" लोग कहते हैं कि कबीर बहुत दूर पहुंच गये हैं। परन्तु यहां बहुत दूर पहुंच जाने का अर्थ क्या हो सकता है? क्या कोई कल्पित धाम, साकेतलोक, ब्रह्मलोक, सत्यलोक, गोलोक, शिवलोक आदि? नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। कहीं कोई लोक नहीं है जहां कबीर पहुंच गये हैं। कबीर तो अपने चेतन स्वरूप में स्थित हैं, वे अपनी आत्मा में लीन हैं। वे सांसारिक विषयों से अलग हो गये हैं। यही मानो वे दूर पहुंच गये हैं। जो मन की सारी कल्पनाओं को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित है वही मानो दूर चला गया है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं "ये मति कोइ कोइ जानेगा धीर" कबीर दूर चले गये, इस कथन का अभिप्राय कोई परम विवेकी ही समझ सकेगा। परमतत्त्व में स्थित पुरुष का कोई अन्य लोक नहीं होता। श्रुति कहती है—"हमारा यह आत्मा ही हमारा अपना लोक है। इसलिए ज्ञानी उसी आत्मलोक की प्राप्ति की अभिलाषा रख, घर से बे-घर हो प्रवर्जित होता है।"

. नोऽयमात्माऽयं लोकः एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति।
(बृहदारण्यक उपनिषद् 4/4/2)

कबीर साहेब आत्मा को राम कहते हैं जिसके विषय में वे आगे प्रकाश डालते हैं।

"दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।" दशरथ-सुत राम का नाम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। यहां तीन लोक लक्षणा मात्र है। इसका अर्थ है कि राम के नाम से दशरथ-सुत लोगों में ज्यादा प्रसिद्ध हैं। परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि जो राम सबका उपासनीय है वह कुछ दूसरा ही है। वस्तुतः वह है सबकी अपनी अंतरात्मा। कहा है—"योगीजन जिसके विषय में रमण करते हैं, वह राम है।" सद्गुरु ने पीछे अनेक स्थलों पर बताया है कि श्रीराम-कृष्ण आदि मनुष्य थे। वे कभी थे। उनको बीते बहुत दिन हो गये। वे तुम्हारा कल्याण नहीं कर सकेंगे। तुम्हारा कल्याण आत्मज्ञान तथा आत्मस्थिति से होगा। कोई भी देहधारी पहले हुआ हो या वर्तमान में विद्यमान हो, यदि वह पवित्र आचरण वाला है तो उससे अच्छी प्रेरणा ली जा सकती है, परन्तु मोक्ष उसके या अन्य किसी के प्रेम का न फल हो सकता है और न उनमें हमारी स्थिति हो सकती है। सारी वासनाओं का त्यागकर निज चेतनस्वरूप में स्थिति ही मोक्ष है। इसके अलावा किसी देहधारी में अनुराग मात्र मोक्ष कैसे हो सकता है ! वह तो उलटकर बन्धन बन जायेगा।

कबीर साहेब के काल से करीब चार सौ वर्ष पूर्व से ही दशरथ-सुत राम की परमात्मा के रूप में समाज में प्रतिष्ठा हो चली थी। ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व जब वाल्मीकीय रामायण का एक छोटा रूप बना, तब उसमें श्री राम को एक उच्च गुणसंपन्न राजकुमार के रूप में चित्रित किया गया था। परन्तु इसके पहले श्रीकृष्ण भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। अतएव उनकी देखा-देखी ईसा के सौ साल पहले श्रीराम चारों भाई विष्णु के अंशावतार के रूप में मान लिये गये। परन्तु श्रीराम पूर्ण परमात्मा के रूप में ईसा के एक हजार वर्ष बाद माने गये। वाल्मीकीय रामायण में श्रीराम को दशरथ, कौसल्या, भरत, लक्ष्मण, सीता आदि में से कोई भी ईश्वर नहीं जानता है। श्रीराम वन जाते समय भरद्वाज आश्रम पर जाते हैं और वे भरद्वाज को पांच। बार भगवान कहते हैं। वे सुतीक्ष्ण को भी भगवान कहते हैं, और अगस्त्य को भगवान तथा अपना गुरु कहते हैं "गुरुर्नः।" वन में सभी ऋषि श्रीराम को प्रिय अतिथि मानते हैं, कोई

. रमन्ते योगिनो यस्मिन् इति रामः।
. रमैनी 75, शब्द 8, 18, 110 आदि।
. वाल्मीकीय रामायण, 2/54/13,16, 24, 26 तथा 37।
. वाल्मीकीय रामायण, 3/7/6, 3/8/5।
. वही, 3/12/23।
. वही, 3/13/10।

उन्हें भगवान नहीं कहता। वाल्मीकीय रामायण में कहीं भी श्रीराम के लिए भगवान शब्द का प्रयोग नहीं दिखता। अतएव श्रीराम को ईश्वर मानने की कल्पना बहुत पीछे हुई है।

कबीर साहेब तत्त्वविवेकी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले पुरुष थे। उनको यह बात बड़ी असंगत लगी कि संसार में पैदा हुआ कोई क्षणभंगुर मनुष्य संसार का कर्ता-धर्ता है। इसके अलावा मोक्ष-विचार में तो साफ है कि व्यक्ति का अपना आत्मस्वरूप ही उसका निधान हो सकता है न कि कोई दूसरा देहधारी। इसलिए साहेब ने यह अमर वाक्य कहा "दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।" कबीर साहेब की यह पंक्ति उत्तरी भारत में प्रचलित थी, काशी में तो गूंज रही थी। कबीर साहेब के बाद गोस्वामी तुलसीदास जी हुए। उनका भी कार्यक्षेत्र काशी रहा। गोस्वामी जी श्रीराम को परब्रह्म परमात्मा मानने में अग्रणी रहे। अतएव उन्हें कबीर साहेब की यह पंक्ति बहुत खटकी। इसलिए उन्होंने अपने रामचरितमानस में नये-नये उपोद्घात रचे। शिव-पार्वती संवाद, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद तथा काकभुशुंडि-गरुड़ संवाद की वाल्मीकीय रामायण में गंध भी नहीं है। परन्तु श्रीराम को परमात्मा सिद्ध करने के लिए उन्होंने इन सारे संवादों की रचना कर डाली। गोस्वामी जी ने इन संवादों के आधार में इन पात्रों के द्वारा श्रीराम को अवतार न मानने वालों को कीट-कीट कर गालियां दीं। यहां केवल एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा जहां गोस्वामी जी ने सद्गुरु कबीर की दशरथसुत वाली पंक्ति को अपने मन में रखकर शिव-पार्वती के काल्पनिक संवाद के सहारे कबीर साहेब का नाम बिना लिये उन्हें या उन-जैसे चिन्तकों को गाली दी है।

गोस्वामी जी के अनुसार पार्वती ने शिव जी से पूछा—"वह उपासनीय राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र ही हैं या अजन्मा, निर्गुण तथा अगोचर कोई दूसरा है? यदि वह राजा दशरथ का पुत्र है तो ब्रह्म कैसे, जिसकी पत्नी के वियोगजनित पीड़ा में बुद्धि अत्यन्त बावली हो गयी है। एक तरफ उसका भ्रमित चरित्र देखकर तथा दूसरी तरफ उसकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि चकित हो गयी—

*रामु सो **अवध नृपति सुत** सोई। की अज अगुन अलख गति कोई*
*जौं **नृपतनय** त ब्रह्म किमि, नारि बिरह मति भोरि।*
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमित बुद्धि अति मोरि

(रामचरितमानस, 1/108)

गोस्वामी जी के अनुसार इसका उत्तर शिव जी इस प्रकार देते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' में इस संदर्भ में इन्हीं पंक्तियों को उद्धृत करते

हुए लिखा है "इसके उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास जी ने शिव जी के मुख से जो उत्तर दिलवाया है वह ध्यान से सुनने लायक है"—

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोहबस कहेहु भवानी
*तुम जो कहा **राम कोउ आना**। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना*
कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जो मोह-पिसाच।
पाषंडी हरिपद बिमुख, जानहिं झूठ न साँच 114
अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई विषय मुकुर-मन लागी
लंपट कपटी कुटिल बिसेखी। सपनेहु संत-सभा नहिं देखी
कहहिं ते बेद-असम्मत बानी। जिन्हके सूझ लाभु नहिं हानी
मुकुर मलिन और नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना
जिनके अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे
जिन्ह कृत महा मोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिय नहिं काना
अस निज हृदय बिचारि, तजि संसय भजु रामपद।
सुनु गिरिराज कुमारि, भ्रमतम रबिकर बचन मम 115

× × ×

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना
हरख-बिसाद ज्ञान-अज्ञाना। जीव-धर्म अहमिति-अभिमाना
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना
पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि, प्रकट परापर नाथ।
***रघुकुल-मनि मम स्वामि सोइ,** कहि सिव नायेउ माथ 116*

× × ×

*सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि **अवधपति** सोई*
यहि बिधि जग हरि-आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई
जौ सपने सिर काटै कोई। बिन जागैं दुख दूरि न होई
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई
आदि-अन्त कोइ जासु न पावा। मति-अनुमान निगम अस गावा
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेखा
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी
जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहिं धरहिं मुनिध्यान।
***सोई दसरथ-सुत** भगत हित, कोसलपति भगवान 118*

गोस्वामी जी के इन मोटे अक्षरों पर ध्यान दीजिये—**अवध नृपति-सुत, नृपतनय, राम कोउ आना, रघुकुल-मनि मम स्वामी सोई, अवधपति** तथा **सोइ दसरथ-सुत**—ये शब्द तथा भाव कबीर साहेब की इसी पंक्ति-जैसे भाव के उत्तर में लिखे गये हैं—"दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना। रामनाम का मर्म है आना।"

प्रश्न होता है कि क्या कबीर साहेब की उक्त पंक्ति का उत्तर गोस्वामी जी दे सके हैं? वे उत्तर तो नहीं दे सके हैं, हां, उन्होंने कबीर साहेब का नाम लिये बिना उन्हें या उन-जैसे तत्त्वचिंतकों को करीब दो दर्जन गालियां दे डाली हैं। यह बात तो पहले ही निवेदित की गयी है कि आदि वाल्मीकीय रामायण में शिव-पार्वती संवाद है ही नहीं। पूरी वाल्मीकीय रामायण में शिव जी कहीं श्रीरामचन्द्र के भक्त नहीं हैं। हां, श्रीराम शिव जी के भक्त अवश्य हैं। लंका से लौटते समय जब श्रीराम रामेश्वर आये हैं तब उन्होंने सीता जी से कहा है—"यहां पर पहले महादेव जी ने मेरे ऊपर कृपा की थी"—अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद विभुः।" परन्तु गोस्वामी जी कल्पनाशील एवं प्रतिभावान हैं। वे अपनी कल्पनाशक्ति एवं प्रतिभा का दुरुपयोग कर असत्य कहानी गढ़ते हैं और एक राजपुत्र श्रीराम को अनंत ब्रह्मांडनायक सिद्ध करने के लिए वेद-शास्त्र, इतिहास, विवेक सब कुछ को एक तरफ रखकर अपनी जिद्द पर अड़ जाते हैं। चारों वेदों तथा वैदिक छहों शास्त्रों में तथा समस्त वैदिक साहित्य में अवधपति श्रीराम की कहीं चर्चा ही नहीं है, फिर उनके परब्रह्म होने की चर्चा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इतिहास देखिए तो ईसा के हजार वर्ष बीतने पर श्रीराम को पूर्ण परमात्मा मानने की बात पुराणों तथा अध्यात्म रामायण में आयी है। विवेक तो साक्षी हो ही नहीं सकता कि एक क्षणभंगुर मनुष्य अनंत विश्व का स्रष्टा, पालक तथा संहर्ता है। फिर भी गोस्वामी जी इस बात के पीछे पड़ गये हैं, और वे एक झूठ सिद्ध करने के लिए अनेक भोली बातें करते तथा काल्पनिक कहानियां गढ़ते हैं। गोस्वामी जी मानते हैं कि जो श्रीराम को परमात्मा नहीं मानता वह 'बेद-असम्मत बानी' कहता है। गोस्वामी जी जब वेद नहीं पढ़े थे, तो उनको ऐसा दावा नहीं करना चाहिए था और यदि वेद पढ़े थे, तब वे ऐसी वेद-विरुद्ध बातें क्यों करते हैं? वस्तुतः कबीर साहेब का अवतारवाद-विरोधी विचार ही वेदसम्मत है, गोस्वामी जी का अवतारवाद वेदसम्मत नहीं है। इसके लिए पाठक स्वयं वेद पढ़कर जान सकते हैं। आजकल तो वेद हिन्दी में भी उपलब्ध हैं। अवतारवाद न मानने वालों को या श्रीराम को जगत-नियंता न मानने वालों को गोस्वामी जी का इस तरह उत्तेजित होकर गाली देना उनके अपने ही सिद्धांत

. वाल्मीकीय रामायण, युद्धकांड, सर्ग 123, श्लोक 20।

की दुर्बलता के लक्षण हैं। फिर यह सब गालियां उन्होंने शिव के मुख से दिलवाकर शिव को दूषित करने का भी दोष किया है। गोस्वामी जी को कबीर साहेब-जैसे चिंतकों तथा भविष्य के स्वतन्त्र-चिन्तकों से भी बहुत भय था, इसीलिए उन्होंने आतंकित होकर ये सारे अलीक तथा अशुद्ध वचन कहे हैं।

श्रीरामचन्द्र संसार के हर्ता-कर्ता हैं और साधकों द्वारा उपासनीय हैं, यह धारणा मुट्ठीभर लोग ही मान सकते हैं, किन्तु सबके हृदय में रमने वाला चेतन ही राम है, वही सबका अपना उपासनीय है, इस बात का विरोध संसार में कोई नहीं कर सकता। गोस्वामी जी का अवधनृपति-सुत, नृपतनय तथा दशरथसुत एक संप्रदाय विशेष का उपास्य हो सकता है, परन्तु कबीर साहेब का हृदय-निवासी राम सबका उपासनीय रहेगा। कबीर साहेब का राम मतवाद के जोश का फल नहीं है, किन्तु सबका अपना अनुभूत सत्य है। अतएव "दशरथसुत तिहुँ लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना।" यह केवल कबीर का ही अकाट्य वचन नहीं है, किन्तु विश्वसत्ता की शाश्वत स्वीकृत है। कबीर मतवाद की बात नहीं करते हैं, किन्तु विश्वसत्ता के शाश्वत नियम की बात करते हैं। राम नाम के दशरथ-पुत्र हुए यह ठीक है। आज भी बहुत व्यक्ति राम नाम से जाने जाते हैं, परन्तु हर व्यक्ति का उपासनीय राम उसकी अपनी अंतरात्मा एवं शुद्ध चेतनस्वरूप है।

"जेहि जिव जानि परा जस लेखा, रजु का कहै उरग सम पेखा।" सद्गुरु इस पंक्ति में नाना संस्कारों के मनुष्यों की मानसिक योग्यता पर विचार करते हुए बड़ी उदारता से कहते हैं कि जिस व्यक्ति की जैसी बुद्धि होती है, जो अपने मन में जैसी कल्पना करता है, उसका वैसा उपास्य बन जाता है। किसी के कल्पित भूत-प्रेत ही उपास्य हैं, किसी के देवी-देवता, किसी के चांद-सितारे-सूरज आदि हैं, किसी के उपास्य कल्पित देहधारी परमात्मा। दृष्टिदोष होने पर रस्सी सांप दिखती है, इसी प्रकार बुद्धि भ्रमित होने पर देह ही को राम मानकर उसकी उपासना होने लगती है। किसी व्यक्ति के हाथ, पैर, मुंह, आंख, नाक, कान, ओष्ठ, छाती, पेट, नाभि, कमर आदि में कमलों तथा कामदेव आदि की उपमा देकर उनमें ध्यान, रति आदि करने की राय बहुत स्थूल बुद्धि की बात तथा साधना-पथ में केवल क, ख, ग है। परन्तु क्या किया जाये, जिसकी जैसी बुद्धि।

"यद्यपि फल उत्तम गुण जाना, हरि छोड़ि मन मुक्ति उनमाना।" यद्यपि श्रीराम में श्रद्धा रखने से फल उत्तम हैं; क्योंकि उनमें सर्वविदित अनेक सद्गुण हैं, तथापि लोग श्रद्धातिरेक में पड़कर श्रीराम को परमात्मा मान लेते हैं और सोचते हैं कि उनकी भक्ति करने से वे हमें मुक्ति दे देंगे, अपने धाम में बुला

लेंगे। इस प्रकार लोग अपने आत्मारूपी हरि की स्थिति से वंचित हो जाते हैं। सद्गुरु ने इस पंक्ति में मुख्य दो बातें कही हैं। पहली बात है कि महाराज श्रीराम में अनेक अच्छे गुण हैं, इसलिए उनमें श्रद्धा रखने के फल अच्छे हैं, दूसरी बात है कि श्रद्धातिरेक में पड़कर उन्हें पूजने की वस्तु न बनाओ, किन्तु अपनी आत्मारूपी हरि को समझो।

हम पहली बात को लें। सदैव सद्गुण आदरणीय हैं। हम अपनी पूर्व परम्परा को आदर देते हैं, परन्तु जो उनमें शुभ होते हैं उन्हीं को। हर परंपरा के पूर्वजों में बुरे लोग भी होते हैं। उनको लोग आदर नहीं देते। सत्ता उन्हीं को आदर देती है जो शुभ है। श्रीराम केवल हमारे पूर्वज हैं इसी से हम उनका आदर नहीं करते हैं, किन्तु इसलिए हमें उनमें श्रद्धा रखनी चाहिए, क्योंकि उनमें अनेक ऐसे सद्गुण हैं जो हमारे लिए प्रेरणाप्रद हैं। उन्हें शाम को राजगद्दी देने की बात सुनाकर सुबह वनवास सुनाया गया, परन्तु वे इससे व्यथित न होकर सहर्ष वन जाने के लिए उसी क्षण तैयार हो गये, और जनता के लाख मनाने पर भी वन चले गये। भरत के बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्होंने अयोध्या लौटने का विचार नहीं किया और कहा कि पिता की आज्ञा में चौदह वर्ष के लिए मेरा वनवास है, अतः उसे मैं पूरा करके ही लौटूंगा। उन्हें वन में नाना कष्ट मिले, परन्तु वे अपने प्रण पर अडिग रहे। उन्होंने भाई भरत के लिए राज्य छोड़ दिया। अतएव माता-पिता की आज्ञाकारिता, भ्रातृस्नेह, राजलिप्सा का त्याग, गुरुजनों, ऋषियों एवं संतों के प्रति विनम्रता, प्रजा के प्रति शील का व्यवहार ये सब ऐसे सद्गुण हैं जो मानव मात्र के लिए उपयोगी हैं। इसलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं कि श्रीराम में श्रद्धा रखने के फल उत्तम हैं, क्योंकि उनमें अनेक श्रेष्ठ गुण हैं। हमें यह गर्व होना चाहिए कि श्रीराम जैसे महान पुरुष हमारे पूर्वज हैं।

गलत वहीं होने लगता है जहां श्रद्धा का अतिक्रमण एवं श्रद्धातिरेक होने लगता है। हम यह मानने लगते हैं कि श्रीराम तो अनंत ब्रह्मांडनायक हैं, उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता हैं। उनके एक-एक रोम में अनंत ब्रह्मांड लटके हैं। वे विश्वनियंता प्रभु हैं, वे तो सर्वसमर्थ ईश्वर हैं, तब उन्होंने बड़े-बड़े काम

. शूर्पणखा-विरूपण तथा छिपकर वालीवध श्रीराम के व्यक्तित्व के धप्पे हैं। शूर्पणखा-विरूपण शायद वाल्मीकीय रामायण के पहले संस्करण में नहीं था। सीता वनवास तथा शंबूक हत्या वाल्मीकीय के उत्तर कांड का विषय है जो शुद्ध प्रक्षेप अंश हैं। शंबूकहत्या किसी घृणित मन वाले लेखक की कल्पना है। उसने श्रीराम के जीवन से उसे जोड़कर उनके तथा मानवता के साथ घोर अपराध किया है। इस संदर्भ को समझने के लिए 'रामायण-रहस्य' में आठवें अध्याय का 38वां संदर्भ 'शंबूक' तथा "कबीर पर शुक्ल की और मेरी दृष्टि" में 'शंबूक' पर हुई चर्चा को अवश्य देखें। शंबूकहत्या घृणित ब्राह्मणवादी व्यवस्था की कल्पना है और रामायण में पीछे का प्रक्षेप है।

किये। हम वैसे कहां कर सकते हैं ! हम तो उनको पूजकर, उनका नाम संकीर्तन कर मुक्त होंगे।

श्रीराम ने जीवन में कुछ त्याग किया तब वे महान हुए, यह न सोचकर उलटा सोचा जाता है कि वे ईश्वर थे तब बड़े काम कर सके। जब हम किसी को ईश्वर बनाकर उन्हें पूजा की वस्तु मान लेते हैं तब मानो उन्हें दफना देते हैं। सद्गुरु कहते हैं "हरि छोड़ि मन मुक्ति उनमाना" हम अपने शुद्ध चेतनस्वरूप-हरि को छोड़कर श्रीराम आदि की आराधना करके मुक्ति की कल्पना करने लगते हैं। श्रीराम हों या श्रीकृष्ण, वे एक देहधारी थे। उनकी देह बीत गये हजारों वर्ष हो गये। उनकी देह तो आज मिलने वाली नहीं हैं। उनकी आत्मा भी अपने कर्मों के अनुसार गति पायी होंगी। अतः उनसे भी मुलाकात नहीं हो सकती। आज श्रीराम, श्रीकृष्ण या किसी महापुरुष के केवल प्रेरक गुणों से हम प्रेरणा ले सकते हैं। प्रथम साधना में मन रोकने के लिए हम ध्यान का कुछ स्थूल आलंबन लेते हैं, उनमें हम राम, कृष्णादि के काल्पनिक चित्र को भी अवलम्ब बना सकते हैं। परन्तु वे गृहस्थ पुरुष थे। आलम्बन का अच्छा साधन वैराग्यवान पुरुष हैं। इसीलिए योगदर्शन ने बताया है "वीतरागविषयं वा चित्तम्" अर्थात वीतराग पुरुष का चित्त से ध्यान रखने से मन एकाग्र होता है। परन्तु यह सब अन्तिम साधना नहीं है, क्योंकि बाहर का कोई भी आलम्बन हो वह जड़-विजाति तथा छूटने वाला है। अंततः तो मन के सारे संकल्पों को छोड़कर अपनी आत्मा में ही रमना होगा। हम अपनी चेतना एवं आत्मारूपी हरि को छोड़कर बाहर मुक्ति का अनुमान करने लगते हैं, यही हमारी भूल है। व्यक्ति की स्थिति उसके अपने चेतनस्वरूप में ही होगी, यही मोक्ष है। बाहर किसी में प्रेम लगाना या बाह्य वस्तुओं को ध्यान का विषय बनाना मोक्ष नहीं है।

"हरि अधार जस मीनहि नीरा, और जतन कछु कहैं कबीरा।" कबीर साहेब कहते हैं कि मैं तो मोक्ष के लिए श्रीराम-श्रीकृष्णादि किसी देहधारी की कल्पना में तन्मय होना नहीं बताता। मैं इन सबसे हटकर कुछ दूसरा ही उपाय बताता हूं, वह है "हरि अधार जस मीनहि नीरा" जैसे मछली निरन्तर पानी में रहती है, पानी में रमने से ही उसका जीवन है, वैसे निजात्म में रमना ही मोक्ष है। अपनी चेतना को छोड़कर बाहर कहीं भी रमना मोक्ष नहीं है, किन्तु बाहर से लौटकर निज चेतनस्वरूप में एवं आत्मा में रमना ही मोक्ष है। यह ठीक है कि साधक पहले बाहर से बिलकुल नहीं लौट सकता, वह तुरन्त ही अपनी आत्मा में नहीं लीन हो सकता। पहले वह जहां भी अच्छा समझता हो उसे आलम्बन बनाकर

. योगदर्शन, 1/37।

उसमें एकाग्र होना चाहिए; परन्तु अंततः उसे सारे दृश्यों को छोड़ना पड़ेगा चाहे वह अशुभ हो या शुभ। सारे दृश्यों को त्यागकर स्वरूपस्थिति मिलती है। अतएव उपासनीय तत्त्व अवधपति श्रीरामादि व्यक्ति विशेष नहीं, किन्तु स्वात्म शुद्ध चेतन है।

कोई देव तुम्हारा कर्म-बंधन नहीं काट सकता

शब्द-110

आपन कर्म न मेटो जाई 1
कर्म का लिखा मिटै धौं कैसे, जो युग कोटि सिराई 2
गुरु वशिष्ठ मिलि लगन सुधायो, सूर्य मन्त्र एक दीन्हा 3
जो सीता रघुनाथ बिवाही, पल एक संच न कीन्हा 4
तीन लोक के कर्ता कहिये, बालि बधो बरियाई 5
एक समय ऐसी बनि आई, उनहूँ औसर पाई 6
नारद मुनि को बदन छिपायो, कीन्हों कपि को स्वरूपा 7
शिशुपाल की भुजा उपारी, आपु भये हरि ठूठा 8
पार्वती को बाँझ न कहिये, ईश्वर न कहिये भिखारी 9
कहहिं कबीर कर्ता की बातें, कर्म की बात निनारी 10

शब्दार्थ—धौं= भला। सिराई= समाप्त। सुधायो= शोधा गया। संच= सुख। बरियाई= बरिआई, जबर्दस्ती, छलपूर्वक। औसर= अवसर, मौका, बदला। बदन= वदन, चेहरा। कपि= वानर। उपारी= उखाड़ लिया। हरि= कृष्ण। ठूठा= लूला, बिना पंजे का। बांझ= वंध्या। ईश्वर= शिव, महादेव। निनारी= विलक्षण।

भावार्थ—जिनकी आराधना कर तुम अपने किए हुए कर्मों के फलों से छुटकारा चाहते हो उनको अपने ही द्वारा किये गये कर्मों के फलों से छुटकारा नहीं मिला, वे स्वयं अपने कर्म-फल-भोग नहीं मिटा सके 1 चाहे करोड़ों युग बीत जाये, भला कर्मों का लिखा कैसे मिट सकता है? 2 श्रीराम तथा सीता के विवाह का लग्न गुरु वसिष्ठ ने विश्वामित्र तथा शतानंद से मिलकर शोधा था और गुरु वसिष्ठ ने श्रीराम को सूर्य-मन्त्र की दीक्षा दी थी। परन्तु जो सीता रघुनाथ से व्याही गयीं, उन्होंने अपने जीवन में एक क्षण सुख न पाया 3-4 लोग कहते हैं कि श्रीराम तीनों लोकों के कर्ता-धर्ता हैं, परन्तु उन्होंने वाली को छलपूर्वक छिपकर मारा; तो एक समय ऐसा बन पड़ा कि वे अपने दूसरे जन्म कृष्ण रूप में जब हुए तब जरा नाम के बधिक से मारे

गये 5-6 विष्णु ने नारद मुनि का असली मुख छिपाकर उन्हें वानर-मुख बना दिया और जिस युवती को नारद चाहते थे विष्णु ने उसे स्वयं ग्रहण कर लिया, इसके फल में विष्णु को श्रीराम बनकर स्त्री-वियोग में वानरों के साथ वन-वन भटकना पड़ा 7 हरि श्री कृष्ण ने शिशुपाल की भुजाएं उखाड़ ली थीं, तो उसके फल में स्वयं जगन्नाथ में लूले होकर बैठे हैं 8 पुराणों में यह विदित है कि पार्वती की कोख से कभी कोई बच्चा नहीं हुआ, तो उन्हें क्या वंध्या न कहा जाये ! महादेव जी भीख मांगकर खाते थे, तो क्या उन्हें भिक्षु न कहा जाये ! विष्णु भी तो वामन बनकर बलि से भीख मांगते हैं 9 कबीर साहेब कहते हैं कि कर्ता और कर्म की बातें बड़ी विलक्षण हैं। हर जीव जैसा करेगा वैसा भरेगा 10

व्याख्या—धार्मिक कहे जाने वाले लोग महापुरुषों की मिथ्या महिमा में जनता को उलझाकर उन्हें भूलभूलैया में रखते हैं। यदि अपने भोलापन में जनता को सांत्वना देने के लक्ष्य से ऐसा किया जाता है तो भी जनता के लिए धोखा ही है, और यदि यह सब जानबूझकर जनता के बौद्धिक तथा आर्थिक शोषण के लिए किया जाता है तो घोर अनर्थ है। प्रायः सभी मजहबों एवं संप्रदायों के पुरोहितों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि तुम्हारे चाहे जैसे पाप-कर्म हों, परन्तु अमुक प्रकार के पूजा-पाठ से, अमुक देवी-देवता की आराधना से तथा ईश्वर की कृपा से वे सब नष्ट हो जायेंगे और तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। भारतीय परम्परा में कर्म तथा कर्म-फल-भोग के विषय में उदार चिन्तन पहले से ही रहा है। धर्मशास्त्र, पुराण तथा महाकाव्य के लेखक पंडितों ने कर्म-फल-भोग के संबंध में किसी को क्षमा नहीं किया है चाहे वे देवी-देवता के नाम से जाने जाते हों या ईश्वर-ईश्वरी के नाम से। परन्तु बीच-बीच में ऐसे भी पुरोहित-पंडित हुए हैं जिन्होंने सुविधावादी दृष्टि अपनाकर कर्म-फल-भोग में काफी माफी की गुंजाइश की है। कबीर साहेब धार्मिक क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले युगपुरुष थे। उन्होंने देखा कि कर्म-फल-भोग का सिद्धान्त ही मनुष्य को अपने सदाचार में बनाये रख सकता है और सदाचार से ही जीवन, परिवार, समाज, देश तथा विश्व में शांति-व्यवस्था रह सकती है। यदि यह मान लिया जाये कि हम चाहे जैसे पाप-कर्म करें, परन्तु अमुक देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी की पूजा-आराधना करने से वे कट जायेंगे तो इस धारणा से समाज के लोग उच्छृङ्खल होंगे और वे बुरे कर्मों से नहीं डरेंगे। वे बराबर बुरे कर्म करते हुए अमुक देवी-देवतादि की पूजा के बल पर अपने आप को पापों से मुक्त हुआ मानने का धोखा करते रहेंगे। अतएव इस शब्द में सद्गुरु ने

पंडितों की लिखी पौराणिक कथाओं के आधार पर ही सिद्ध किया है कि सबको अपने कर्म-फल-भोग भोगने पड़ते हैं।

कुछ महिमापरक पौराणिक वाणियों के आधार पर लोग यह मान लेते हैं कि राम, कृष्ण, विष्णु, महादेव, सीता, पार्वती आदि की आराधना करने से, उनके नाम जपने तथा उनकी पूजा करने से मनुष्यों के सारे पाप भस्म हो जाते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि यह मान्यता न तो विवेकसम्मत है और न धर्मशास्त्रों तथा पुराणों के मूल विचारों के अनुसार ही है, यह सहज समझा जा सकता है। 'यः कर्ता स एव भोक्ता' अर्थात जो कर्ता है वही भोक्ता है। उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—"यह जीव जैसी इच्छा करता है, वैसा प्रयत्न करता है, जैसा प्रयत्न करता है वैसा कर्म करता है, और जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है।" पुराण भी बताते हैं कि देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी कहे जाने वाले लोग भी अपने कर्म-फल-भोग भोगे हैं। साहेब कहते हैं कि जिन तथाकथित देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी की पूजा के बल पर तुम अपने पाप-कर्मों के कट जाने का धोखा पालते हो उनके ही अपने पाप नहीं कटे हैं। जो कर्म के संस्कार जीव के मन में पड़ गये हैं वे करोड़ों युग बीत जाने पर भी नहीं मिटते। उनके परिणाम एवं फल भोग लेने के बाद ही उनका अंत होता है। यह बहुत प्रसिद्ध श्लोक है—"अपने किये गये शुभ या अशुभ कर्म अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। बिना भोग के कर्म नहीं मिटते चाहे करोड़ों कल्प बीत जायें "

"गुरु वशिष्ठ मिलि लगन सुधायो, सूर्य मन्त्र एक दीन्हा। जो सीता रघुनाथ बिवाही, पल एक संच न कीन्हा।" रामायण से यह विदित है कि श्रीराम तथा सीता का विवाह हुआ था। उनके विवाह का लग्न श्रेष्ठ विद्वान गुरु वसिष्ठ ने शोधा था परन्तु आप जानते ही हैं कि विश्वामित्र के साथ ही राम थे और शतानंद जनक के पुरोहित थे। अतएव विश्वामित्र एवं शतानंद ने भी वसिष्ठ जी को लग्न शोधने में सहयोग किया। वसिष्ठ ने सूर्यवंश का वर्णन किया तथा श्रीराम को सूर्य-मंत्र भी दिया। इतनी सर्तकता और सावधानी के साथ श्रीराम के साथ सीता का विवाह हुआ। परन्तु सीता को श्रीराम के साथ में एक क्षण भी सुख न मिला।

. यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते॥
(बृहदारण्यक उपनिषद्, अध्याय 4, ब्राह्मण 4, मन्त्र 5)

. अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥

विवाह के बाद अयोध्या-यात्रा में ही परशुराम ने मिलकर श्रीराम को चुनौती दी थी। यह सीता के लिए पहली दुर्घटना थी। अयोध्या पहुंचते ही भरत अपने ननिहाल जाते हैं क्योंकि उनके मामा युधाजित उन्हें बुलाने पहले ही आ गये थे और उन सबके विवाह की बात सुनकर अयोध्या से जनकपुर पहुंचकर दशरथ को अपने पिता का संदेश दे दिये थे कि पिता जी अपने नाती भरत को देखना चाहते हैं। अतएव विवाह के बाद अयोध्या पहुंचते ही भरत शत्रुघ्न को लेकर केकयदेश चले जाते हैं, और इसी के बाद दशरथ राम को राजगद्दी देना चाहते हैं, परन्तु कैकेई के विरोध से उनका चौदह वर्ष के लिए वनवास होता है और वे सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन चले जाते हैं। वन में उन्हें नाना कष्ट होते हैं। इसी बीच जयंत अपनी चोंच से सीता को नोचता है। फिर पथ चलते समय विराध राक्षस सीता का अपहरण कर लेता है। पश्चात वे रावण द्वारा हर ली जाती है। लंका की अशोक वनिका में सतायी जाती हैं। रावण के मारे जाने के बाद श्रीराम के पास आने पर राम द्वारा कटु वचनों से आहत की जाती हैं। उन्हें अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। अयोध्या आने पर पुरवासियों द्वारा निंदित की जाती हैं। फिर राम द्वारा वन में निकाल दी जाती हैं। अंततः नैमिषारण्य में श्रीराम के यज्ञस्थल में जब वाल्मीकि द्वारा सीता वहां ले जायी जाती हैं, तब श्रीराम द्वारा पुनः उनसे चरित्र की प्रामाणिकता मांगे जाने पर पृथ्वी में समा जाती हैं। इस प्रकार रामायण देखा जाये तो सीता के जीवन में पदे-पदे दुख है। उनके अनेक दुखों में से केवल एक दुखद घटना का संक्षिप्त उल्लेख काफी होगा। जब श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण ने सीता को गंगापार वन में छोड़कर उन्हें राम का आदेश बताया कि राम ने लोकापवाद के डर से आप को त्याग दिया है, तब यह कठोर वचन सुनकर सीता मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ीं। जब वे चेत में आयीं तब लक्ष्मण से इस प्रकार कहने लगीं—

"लक्ष्मण ! विधाता ने मेरी देह को केवल दुख भोगने के लिए ही बनाया है। आज सारे दुख मूर्तरूप होकर मुझे दिखाई दे रहे हैं 3 पूर्व जन्म में मैंने कौन-सा पाप किया था, किस पुरुष का स्त्री से वियोग कराया था, जो मेरे पवित्र आचरण होने पर भी मुझ सती-साध्वी को राजा राम ने त्याग दिया 4 मैं पहले वनवास के समय दुख उठाकर भी श्रीराम की सेवा करती हुई आश्रम में रही और प्रसन्नता से उनकी अनुगामिनी बनी रही 5 सौम्य ! अब परिवार से अलग पड़कर अकेली आश्रम में कैसे रहूंगी और दुख पड़ने पर उसे किसको बताऊंगी? 6 प्रभो ! जब मुनि लोग मुझसे पूछेंगे कि महात्मा राम ने तुम्हें किस कारण से त्याग दिया है, तब मैं उनसे अपना कौन-सा अपराध बताऊंगी? 7 मैं अभी गंगा में कूदकर अपना जीवन खो देती, परन्तु

ऐसा नहीं करूंगी, क्योंकि मैं गर्भवती हूं। जीवन खोने से मेरे पति का राजवंश ही नष्ट हो जायेगा 8 "

जब लक्ष्मण रथ पर बैठकर लौट चले, तब कवि कहता है—"रथ दूर होता गया। सीता लक्ष्मण की ओर पुनः-पुनः देखकर व्याकुल हो गयीं। जब लक्ष्मण का रथ सीता की आंखों से ओझल हो गया, तब वे शोक-सागर में डूब गयीं 25 यश को धारण करने वाली यशस्विनी सीता दुख के बोझ से दब गयीं, क्योंकि उन सीता को कोई अपना रक्षक नहीं दिखता था। मयूरों के नाद से गूंजते हुए उस वन में सती सीता दुख में डूबी हुई फूट-फूटकर रोने लगीं 26 "

केवल सीता ही दुखी रहीं, ऐसी बात नहीं है, स्वयं श्रीराम भी जीवनभर दुखों से घिरे रहे। इसलिए बहुत दिनों से 'राम-कहानी' एक मुहावरा बन गया, जिसका अर्थ है दुख भरी कहानी।

"तीन लोक के कर्ता कहिये, बालि बधो बरियाई। एक समय ऐसी बनि आई, उनहूँ औसर पाई।" लोग कहते हैं कि अयोध्याधीश श्रीराम विश्व के कर्ता-धर्ता हैं; परन्तु वालीवध में इस कर्तापने की ऐसी मिट्टी पलीद हुई है कि साधारण आदमी भी इसके कालापन को समझ सकता है। जब एक बार वाली की मार खाकर सुग्रीव भाग गया था, तब श्रीराम ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला पहनाकर भेजा क्योंकि दोनों एक समान चेहरे वाले होने से दूर से यह

. मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽद्य दुःखमूर्तिः प्रदृश्यते॥ 3॥
किं नु पापं कृतं पूर्वं को वा दारैर्वियोजितः।
याहं शुद्धसमाचारा त्यक्ता नृपतिना सती॥ 4॥
पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी।
अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी॥ 5॥
सा कथं ह्याश्रमे सौम्य वत्स्यामि विजनीकृता।
आख्यास्यामि च कस्याहं दुःखं दुःखपरायणा॥ 6॥
किं नु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो।
कस्मिन वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना॥ 7॥
न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते॥ 8॥

(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकांड, सर्ग 48)

. दूरस्थं रथमालोक्य लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः।
निरीक्ष्यमाणां तूद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत्॥ 25॥
सा दुःखभारावनता यशस्विनी यशोधरा नाथमपश्ती सती॥
रुरोद सा बर्हिणनादिते वने महास्वनं दुःखपरायणा सती॥ 26॥ (वही, 7/48)

नहीं समझ में आता था कि कौन वाली है और कौन सुग्रीव। जब सुग्रीव ने दुबारा आकर वाली को ललकारा, तब तारा ने वाली को समझाया कि मैंने अंगद द्वारा सुना है कि अयोध्या के दो वीर राजपुत्र सुग्रीव के मित्र हो गये हैं। उन्हीं के बल पर सुग्रीव गरज रहा है। वाली ने तारा से कहा—"श्रीरामचन्द्र के विषय में सोचकर तुम्हें मेरे लिए विषाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि श्रीराम धर्म और कर्तव्य को समझते हैं। वे अकारण मुझे मारने का पाप कैसे करेंगे।" परन्तु श्रीराम ने वही पाप किया। सुग्रीव तथा वाली लड़ रहे थे और श्रीराम ने पेड़ की आड़ से छिपकर वाली के सीने में बाण मार दिया। वाली गिर पड़ा। उसने कहा कि मुझे किसने छिपकर मारा है वह सामने आये। श्रीराम सामने आये। वाली ने जब श्रीराम को देखा तो उसे बड़ा दुख हुआ। उसने श्रीराम को बहुत जोर से फटकारा। पूरा विवरण नहीं, केवल चार श्लोक लें। वाली ने कहा—"जब तक मैंने आपको नहीं देखा था तब तक मुझे यही विश्वास था कि आप मुझे धोखा देकर मारने नहीं आयेंगे 21 परन्तु अब समझ में आया कि आप विवेकहीन, धर्म का ढकोसला करने वाले, वास्तव में अधर्मी, पापपूर्ण विचार वाले तथा घास-फूस से ढके हुए कुएं के समान धोखेबाज हैं 2 आप मुनिवेष में उसी प्रकार पापाचारी हैं जैसे राख से ढकी हुई आग हो। मैं नहीं जानता था कि आपने लोगों को धोखा देने के लिए धर्म का वेष धारण कर रखा है 23 न तो मैंने आपके नगर में कोई उपद्रव किया है, न आपका किसी प्रकार से तिरस्कार किया, फिर आपने मुझ निरपराध को क्यों मारा? 24 "

कहा जाता है कि वही श्रीराम पीछे श्रीकृष्ण हुए। श्रीकृष्ण महाराज का पूरा जीवन युद्धमय था। महाभारत युद्ध के छत्तीस वर्ष बाद यादवों में घोर उन्माद छा गया। वे सब शराब पीकर उन्मादी हो जाते थे। द्वारकाधीश की तरफ से आज्ञा निकली कि आज से न कोई शराब बनाये और न पीये। यदि कोई शराब बनायेगा या पीयेगा तो अपने भाई-बंधुओं सहित शूली पर चढ़ा दिया जायेगा—

. न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति॥ (वाल्मीकीय रामायण 4/16/5)

. न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि।
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव॥ 21॥
स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम्॥ 2॥
सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम्।
नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम्॥ 23॥
विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम्।
न च त्वामवजानेऽहं कस्मात् तं हंस्यकिल्बिषम्॥ 24॥ (वाल्मीकीय रामायण, 4/17)

"जीवन् स शूलमारोहेत् स्वयं कृत्वा सबान्धवः।" परन्तु शराब बनाना-पीना बंद न हुआ। पूरा यादववंश शराबी बनकर आपस में कट मरा। श्रीकृष्ण ने वसुदेव से कहा—"मैंने आज यादवों का विनाश देखा और पहले कौरव-वंश का विनाश देख चुका हूं। अब उन यादव-वीरों के बिना मैं उनकी इस नगरी को देखने में भी असमर्थ हूं।" इतने में स्त्रियों तथा बच्चों का घोर रुदन सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि अभी कुछ ही दिनों में अर्जुन हस्तिनापुर से आकर तुम लोगों को वहीं ले जायेंगे। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण वन में चले गये। वे वहां योग-समाधि लगाये हुए लेटे थे कि एक जरा नाम के व्याध ने उन्हें हिरन समझकर बाण मार दिया और उनके पैर के तलवे में घाव हो गया। जब ब्याध निकट आया तो उसने देखा कि श्रीकृष्ण घायल पड़े हैं। उसने उनके दोनों पैर पकड़ लिये। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन दिया, और अपना शरीर छोड़ दिया। कहा जाता है कि यह जरा नाम का व्याध पहले जन्म का वाली था और यहां उसने बदला लिया। अथवा जरा नाम का व्याध कोई रहा हो, श्रीराम को कृष्ण रूप में अंत में अपना कर्म-फल भोगना पड़ा। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में अनेक युद्ध किये। महाभारत युद्ध के तो वे स्वयं सूत्रधार होकर अठारह दिनों में भयंकर नरसंहार करवाये और उसके बाद स्त्रियों तथा बच्चों का करुण रुदन हुआ। तो उनके इसी जीवन में पूरे यादव-वंश का आपस में कटकर विध्वंस हुआ। और उनकी भी स्त्रियां तथा बच्चे करुण रुदनकर दुख में समय बिताये। कर्मों के फल अकाट्य होते हैं यह सर्वथा सच है।

"नारद मुनि को बदन छिपायो, कीन्हों कपि को स्वरूपा।" विष्णु ने नारद का असली मुख छिपाकर वानर का बना दिया और उनको इच्छित युवती नहीं लेने दी, बल्कि उसे स्वयं ले ली। इसके फल में नारद के शाप से विष्णु श्रीराम नाम के मनुष्य हुए और उन्हें पत्नी-वियोगजनित पीड़ा भोगनी पड़ी तथा वानरों के साथ वन-वन भटकना पड़ा।

नारद का किसी युवती के मोह में फंसकर वानर-मुंह हो जाना, इसका उल्लेख महाभारत के शांतिपर्व के तीसवें अध्याय में आया है और शायद यह इस विषय का पहला उल्लेख हो। नारद अपने भांजे पर्वत के साथ सृञ्जय राजा के यहां जाते हैं। उस राजा की युवती कन्या को देखकर नारद

. महाभारत, मौसल पर्व, अध्याय 1, श्लोक 31।

. वही, मौसल पर्व, अध्याय 3।

. दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां राज्ञा च पूर्वं कुरुपुङ्गवानाम्।
नाहं विना यदुभिर्यादवानां पुरीमिमामशकं द्रष्टुमद्य॥ (मौसल, 4/9)

. मौसल पर्व 4/22-24।

मोह जाते हैं। इसे देखकर उनका भांजा पर्वत नारद को शाप देते हैं कि आपका मुंह वानर-सा दिखेगा। फिर नारद पर्वत को शाप देते हैं कि तुम स्वर्ग में प्रवेश नहीं पाओगे। अंततः मामा-भांजे नारद-पर्वत आपस में सुलहकर दोनों परस्पर के शाप का निवारण कर देते हैं, और वह राजकन्या नारद की पत्नी बन जाती है। नारद उसके घर रहने लगते हैं। इस कथा में विष्णु का संबंध नहीं है। लगता है कि यहीं से यह कथा विकसित होकर महाभागवत पुराण, शिवपुराण आदि में आ गयी है और शिवपुराण से रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने लिया है।

महाभागवत पुराण (11/107-112) में नारद के शाप से विष्णु का सूर्यवंश में जन्म लेने की बात आयी है। विष्णु पुराण में यह कथा विकसित है "श्रीमती को प्राप्त करने के लिए नारद ने विष्णु के पास जाकर हरि रूप मांगा। विष्णु ने उसे हरि अर्थात वानर का मुख दिया और स्वयं श्रीमती के स्वयंवर में जाकर उसे प्राप्त किया। उस स्वयंवर में दो शिवगणों ने नारद का उपहास किया और नारद के शाप के कारण वे रावण और कुंभकर्ण बन गये। नारद ने विष्णु को यह शाप दिया—तुम मनुष्य बनकर वानरों के साथ विरह का दुख भोगो। (रुद्र संहिता, सृष्टि खंड, अध्याय 3-4)।" लगता है यहीं से लेकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस के बालकांड में शीलनिधि राजा की पुत्री विश्वमोहिनी की कथा लिखी है जिसके प्रति नारद मोहित हुए थे। कबीर साहेब गोस्वामी जी के पहले हुए हैं। अतएव कबीर साहेब ने शिव पुराण से लेकर यहां उद्धृत किया होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि विष्णु भी अपने कर्मफल भोगने के लिए विवश हुए।

"शिशुपाल की भुजा उपारी, आपु भये हरि ठूठा।" महाभारत के सभापर्व के 43वें अध्याय में कथा आती है कि चेदि नरेश दमघोष की पत्नी श्रुतश्रवा से एक बच्चा पैदा हुआ जिसके मस्तक में एक तीसरा नेत्र था तथा दो स्वाभाविक हाथों के अलावा दो अतिरिक्त हाथ थे। यही शिशुपाल था। राजा-रानी घबरा गये। आकाशवाणी हुई कि तुम लोग घबराओ मत। यह बच्चा वीर तथा प्रतापी होगा। इसको मारने वाला अन्यत्र पैदा हो गया है, परन्तु यह अभी नहीं मरेगा। जिसकी गोद में जाने से इस बालक का तीसरा नेत्र लुप्त हो जायेगा तथा दोनों अतिरिक्त हाथ गिर जायेंगे, वही एक दिन इसको मारने वाला होगा। अब जो उसे देखने आता उसी की गोद में बालक रखा जाता। हजारों राजे-महाराजे की

. फादर कामिल बुल्के, राम कथा, अनुच्छेद 373।

. वही, अनुच्छेद 373।

. यमुना-नर्मदा नदियों के बीच का क्षेत्र चेदि राज्य में पड़ता था।

गोद में रखा गया, कुछ न हुआ। श्रीकृष्ण तथा बलराम ने द्वारका में यह समाचार सुनकर कि हमारी बुआ श्रुतश्रवा को बच्चा पैदा हुआ है, उसे देखने चेदिदेश आये। बुआ ने शिशु को श्रीकृष्ण की गोद में डाला तो उसका अतिरिक्त नेत्र तुरन्त मस्तक में ही लुप्त हो गया तथा अतिरिक्त दोनों हाथ गिर गये। बुआ जी बहुत घबरायीं और श्रीकृष्ण से बच्चे द्वारा भविष्य में होने वाले अपराधों के प्रति क्षमा करने की याचना कीं। श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं इसके ऐसे सौ अपराध क्षमा कर दूंगा जिनको लेकर इसका वध किया जा सकता हो। यही शिशुपाल युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर श्रीकृष्ण की अग्रपूजा होती देखकर जल-भुन उठा था और श्रीकृष्ण को इसने गालियां दी थीं। जब वह सौ से अधिक गाली पर पहुंचा; तब कृष्ण ने चक्र से उसे मार दिया। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण की गोद में आने से शिशुपाल की अतिरिक्त भुजाएं उखड़ी थीं इसलिए श्रीकृष्ण ने जब जगन्नाथ अवतार ग्रहण किया तब उनके हाथो में पंजे नहीं रहे 'आपु भये हरि ठूठा।'

"पार्वती को बाँझ न कहिये" यहां साहेब प्रश्नवाचक स्वर में कहते हैं कि क्या पार्वती को वंध्या न कहा जाये! अवश्य कहा जायेगा। जीवन में कभी उनकी कोख खुली ही नहीं। पार्वती चाहती थीं कि मुझे पुत्र हो, परन्तु उन्हें कोई संतान नहीं हुई। एक बार शिव जी का वीर्य जमीन पर गिर पड़ा तो उससे स्वामी कार्तिकेय पैदा हो गये, और श्रीकृष्ण स्वयं आकर शिव-पार्वती के पास गणेश बन गये। गणेश के मुख को शनिश्चर ने देखा तो गणेश का सिर जलकर समाप्त हो गया, क्योंकि उनकी दृष्टि जहां भी पड़ती है, वह वस्तु जल जाती है। इतने में विष्णु ने आकर एक हाथी का सिर काटकर गणेश के धड़ पर लगा दिया। यह कथा ब्रह्मवैवर्त पुराण के गणपत खंड में लिखी है। महाभारत के वनपर्व के अनुसार गणेश पार्वती के शरीर के उबटन से पैदा हुए और स्वामिकार्तिकेय अग्नि द्वारा स्वाहा के गर्भ से पैदा किये गये। अन्य पुराणों में

. एतदेव तु संश्रुत्य द्वारवत्यां महाबलौ। (सभापर्व, 43/14)
श्रीकृष्ण द्वारा कंस-वध होने के बाद ही जरासंध ने शिशुपाल, कालयवन तथा तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्ण एवं मथुरा पर सत्तरह बार चढ़ाई की थी। उसके बाद श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका बसाते हैं और द्वारका से ही कृष्ण बलराम सहित शिशुपाल का जन्म देखने जाते हैं, यह सब कितना भ्रामक तथा अविश्वसनीय है, सहज समझा जा सकता है। जब द्वारका बसाने के बाद शिशुपाल का जन्म होता है तब उसके पहले उसने जरासंध के साथ सत्तरह बार मथुरा पर चढ़ाई कैसे की? चतुरंगिणी सेना का एक परिमाण या विभाग अक्षौहिणी कहलाता है जिसमें 1,09,350 पैदल, 65,610 घोड़े, 21,870 रथ और 21,870 हाथी होते हैं। सत्तरहों बार की हर चढ़ाई में तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना थी। यह भी अतिशयोक्ति ही है।

. इस कथा को विवरणपूर्वक समझने के लिए बीजक शिक्षा में "आपन कर्म न मेटो जाई" शब्द की व्याख्या देखें।

अन्य-अन्य ढंग से लिखा गया, परन्तु इन सब कथाओं से सिद्ध होता है कि स्वामिकार्तिकेय तथा गणेश पार्वती के पेट से पैदा हुए बच्चे नहीं हैं। अतएव पार्वती जीवनपर्यन्त वंध्या ही रहीं।

"ईश्वर न कहिये भिखारी" यहां भी साहेब ने प्रश्नवाचक स्वर में कहा है कि क्या ईश्वर को अर्थात महादेव को भिक्षु न कहा जाये? पुराणों में प्रसिद्ध है कि शिव जी भीख मांगकर खाते थे। कबीर साहेब के पीछे के कवियों ने भी यह बात लिखी है। गोस्वामी जी ने शिव को लिखा "भीख मांगि भव खाहिं"[1] अर्थात महादेव संसार में भीख मांगकर खाते हैं। वामन-विष्णु भी बलि से भीख मांगते हैं। कर्म की गति पर तो यह किसी पंडित की पुरानी उक्ति है—"जो होनी है, वह अवश्य होकर ही रहती है। देखो नीलकंठ शिव नंगे रहते हैं और विष्णु सांप पर सोते हैं।"[2] न महादेव को कपड़ा जुरता है और न विष्णु को पलंग-गद्दा।

"कहहिं कबीर कर्ता की बातें, कर्म की बात निनारी।" साहेब कहते हैं कि कर्ता और कर्म की बातें बड़ी विलक्षण होती हैं। यह मनुष्य कर्म करने में तो स्वतन्त्र है परन्तु उनके फल भोगने में वह उन्हीं कर्मों के अधीन है। इस शाश्वत नियम में संसार के सारे जीव बंधे हैं, उन्हें चाहे देवी-देवता कहा जाये, चाहे भगवान-भगवती तथा चाहे ईश्वर-ईश्वरी। इसमें किसी के लिए क्षमा की गुंजाइश है ही नहीं।

वैज्ञानिक तर्क के आधार पर देखा जाये तो यह कोई नहीं जानता कि विष्णु ही राम हुए हैं तथा राम ही कृष्ण हुए हैं। इसी प्रकार गणेश, स्वामिकार्तिकेय आदि की उत्पत्ति की बात भी काल्पनिक ढंग से है। सद्गुरु कबीर ने उक्त सारे उदाहरण इसलिए पेश किये हैं कि उन्हें जिनको कर्म-फल-भोग समझाना था, वे इन सब कथाओं के प्रति मान्यता रखते हैं। अतएव सद्गुरु कबीर ने उन्हीं के मान्यतानुसार उन्हें यह समझाने का प्रयत्न किया है कि देवी-देवता तथा ईश्वर-ईश्वरी कहलाने वाले भी अपने कर्म-फल-भोगों को भोगे बिना छुट्टी नहीं पाये हैं, तो इतर जीव उनके नाम जपकर तथा उनकी आराधना कर कर्म-फलों से कैसे बच सकते हैं? अतएव हमें इस भूलभूलैया को छोड़ देना चाहिए कि किसी की कृपा से हमारे कर्म-बंधन मिट जायेंगे। हमें कर्म-बंधनों से छूटने के लिए सदाचार, नैतिकता, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि का सहारा लेना चाहिए।

. रामचरितमानस, बालकांड, दोहा 79।

. अवश्यं भाविनोभावा भवन्ति महतामति।
नग्नत्वं नीलकंठस्य महा अहि शयनं हरे॥

एक वाक्य में कहें तो कर्मों की पवित्रता ही हर जीव के सुख का सुरक्षित पथ है।

ज्ञान-वैराग्य द्वारा समस्त कर्मों का नाश होता है। 205वीं साखी में सद्गुरु ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। उन्होंने कहा है "तो लौं तारा जगमगै, जौ लौं उगे न सूर। तौ लौं जीव कर्म वश डोलै, जौ लौं ज्ञान न पूर।" जैसे सूर्य उगते ही तारों के प्रकाश तिरोहित हो जाते हैं, वैसे पूर्ण ज्ञानोदय होने पर सारे कर्म-संस्कार नष्ट हो जाते हैं।

दैवासुर संपदा

शब्द-111

है कोई गुरु ज्ञानी, जगत उलटि बेद बूझै 1
पानी में पावक बरै, अन्धहि आँखि न सूझै 2
गाई तो नाहर खायो, हरिन खायो चीता 3
काग लंगर फाँदि के, बटेर बाज जीता 4
मूस तो मंजारि खायो, स्यार खायो श्वाना 5
आदि को उदेश जाने, तासु बेस बाना 6
एकहि दादुर खायो, पाँचहिं भुवंगा 7
कहहिं कबीर पुकारि के, हैं दोऊ एकै संगा 8

शब्दार्थ—गुरु ज्ञानी= श्रेष्ठ ज्ञानी। उलटि= घूमकर। बेद= वेद, ज्ञान, निजात्मतत्त्व। गाई= गाय। नाहर= सिंह। काग= कौआ। लंगर= एक तेज हिंसक जानवर। फाँदि के= कूद कर। बटेर= एक साधारण पक्षी। बाज= प्रसिद्ध शिकारी बक्षी। मंजारि= बिल्ली। आदि= मूल। उदेश= उद्देश्य, लक्ष्य, इष्ट, प्रयोजन। बेस बाना= धार्मिक पोशाक, भक्ति-साधुत्व के चिह्न। दादुर= मेढक। भुवंगा= सांप।

भावार्थ—है कोई श्रेष्ठ ज्ञानी, जो संसार से लौटकर ज्ञानतत्त्व एवं निजस्वरूप को समझे! 1 पानी में आग जल रही है, परन्तु आंख फूटी होने से वह नहीं दिखाई देती। अर्थात स्वभावतः शीतल आत्मा में कामादि की आग जल रही है, परन्तु इसे विवेकहीन नहीं समझता 2 यहां तो सब कुछ उलटा हो गया है, गाय ने सिंह को खा लिया है, हिरन ने चीते को खा लिया है, कौए ने कूदकर लंगर को धर दबोचा है, बटेर ने बाज पक्षी पर विजय पायी है, चूहे ने तो बिल्ली को खा लिया और गीदड़ ने कुत्ते को खा डाला है 3-5 उसी के धार्मिक वेष-बाना शोभा देते हैं जो अपने मूल उद्देश्य को समझता है तथा उस दिशा में प्रयत्नरत है 6 एक मेढक ने पांच सांप खा लिये 7 कबीर

साहेब लोगों को हांक देकर और बुलाकर कहते हैं कि ये दोनों पक्ष एक साथ रहते हैं 8

व्याख्या—मानो कोई भीड़ हो। कबीर साहेब वहां पहुंच गये हों और उन्होंने अचानक भीड़ से पूछ लिया हो—इसमें है कोई श्रेष्ठ ज्ञानी, जो जगत से उलटकर, सांसारिकता से लौटकर वेद को समझता हो? ज्ञानतत्त्व एवं निजस्वरूप का विवेक करता हो? वस्तुतः श्रेष्ठ ज्ञानी वही है जो जगत से लौटकर वेद को समझता हो। सद्गुरु कबीर वेद का आदर करते हैं। वेद कहते हैं ज्ञान को। जीव का स्वरूप ही ज्ञान है। संसार में दो ही तत्त्व हैं एक जगत तथा दूसरा वेद। जगत जड़ है और वेद चेतन है। जब तक जगत से नहीं लौटा जायेगा तब तक वेद नहीं समझा जा सकता। जो व्यक्ति जगत में डूबा है वह वेद को नहीं समझ सकता। संसारी बुद्धि वाले जिस राग-रंग में आनंद मानते हैं, उससे विमुख होकर ही वेद को, ज्ञान को, निजस्वरूप को समझा जा सकता है। आप समुद्र पर चले जाइये। उसके तट पर खड़े हो जाइये। थल की तरफ पीठ देकर जल की तरफ मुख कीजिए, आपको केवल जल दिखाई देगा। परन्तु जब आप जल की तरफ पीठ करके थल की तरफ देखेंगे तो केवल थल दिखाई देगा। हमारी यही दशा है। यदि हम सांसारिकता की तरफ देखते हैं तो वेद ओझल हो जाता है। सांसारिकता में मन रखने वाला अपनी चेतना में नहीं लौट सकता। जिसका मन अपनी चेतना में लीन है वह सांसारिकता से निश्चित ही विमुख होगा। एक काल में एक साथ दोनों नहीं होंगे। अतएव सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वही श्रेष्ठ ज्ञानी है जिसने सांसारिकता से, दुनिया के राग-रंग से पीठ दे दी हो और अपने वेदस्वरूप में-चेतनस्वरूप में निरन्तर लीन हो।

"पानी में पावक बरै, अन्धहि आँखि न सूझै।" पानी में आग जल रही है, परन्तु फूटी आंखों से यह दिख नहीं पड़ती। मनुष्य की अपनी चेतना, अपनी आत्मा स्वरूपतः शीतल, शांत एवं निर्द्वंद्व है, परन्तु उसमें काम की आग जल रही है, क्रोध की, लोभ की, मोह की, चिंता की, शोक की और राग-द्वेष की आग जल रही है। यह कितना दुखद है कि जो स्वभाव से ही शीतल है वह अपने स्वरूप के अज्ञान तथा तुच्छ विषयों के प्रलोभन में पड़कर मानसिक आग में जल रहा है। जीव संसार में आकर एक-एक गलत आदत का मैल अपने जीवन में लगाता जाता है और उसकी आग में जलता जाता है। तुम ध्यान दो, यदि तुमने बीड़ी पीने की आदत न बनायी होती तो उसको लेकर तुम्हें परेशानी क्यों होती? यदि तुम काम-कीचड़ में न पड़े होते तो इच्छा का उद्वेग तथा सांसारिकता का बोझ तुम्हारे सिर पर क्यों पड़ता? यदि तुम अमुक से वैर-विरोध न करते तो तुम्हें द्वेष की आग में क्यों जलना पड़ता? हम तो अपने

अविवेक से न हुए दुखों को बनाते हैं। जो दुख हमारे जीवन में नहीं हैं उन्हें हम अपने अज्ञान से पैदा करते हैं। संसार के सारे दुख हमारे पैदा किये हुए हैं। जीव का मौलिक स्वरूप तो निर्मल है, शीतल है, परंतु उसे अपने दिव्य स्वरूप का ज्ञान नहीं है। इसलिए वह साधारण बुद्धि अपनाकर एवं सांसारिकता में लिपटकर अपने जीवन में दुख बनाता है। स्वभावतः शीतल जीव दुखों की आग में जल रहा है, फिर भी हमारी आंखें फूटी हैं और हम देख नहीं पा रहे हैं कि यह हमारे जीवन में क्या हो रहा है। हमें अपनी स्वभावगत शीतलता, स्वच्छता, असंगता एवं निर्लेपता का ज्ञान होना चाहिए और संसार के कूड़े-कचड़े से हटना चाहिए जो हमारे जीवन में न हुए दुख उत्पन्न करते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि अरे अंधे! पानी में आग जल रही है। लोग भले कहें कि यह कबीर की उलटवांसी है, क्योंकि पानी में आग जल ही नहीं सकती। साहेब कहते हैं कि जल तो रही है; परन्तु जब तुम्हारी आंखें ही फूटी हैं, तब तुम इसे देख भी कैसे सकते हो! तुम इसे देख लेते तो आज तक दुखों की आग में जलते ही क्यों! तुम्हारे मूल स्वरूप में तो दुख की गंध भी नहीं है, परन्तु दुनियाभर का लीबड़ लगाकर तुम रात-दिन दुखों में कितना जल रहे हो इसका तुम्हें होश-हवास ही नहीं है।

शीतल पानी में आग जल रही है। जो जीव स्वभावतः शीतल है वह अपने अज्ञान से संसार की तनिक-तनिक-सी बातों को लेकर तथा तुच्छ चीजों में उलझकर क्षण-क्षण पीड़ित हो रहा है। इस विपरीतता को लेकर यहां कबीर साहेब उलटवांसी भरे कई उदाहरण पेश करते हैं। वे कहते हैं कि यह तो मानो ऐसा हुआ कि गाय ने सिंह को खा लिया हो, हिरन ने चीते को, काग ने लंगर को, बटेर ने बाज को, चूहे ने बिल्ली को, गीदड़ ने कुत्ते को तथा एक मेढक ने पांच सांपों को खा लिया हो। इन सारे उदाहरणों में एक ही बात है कि कमजोर पक्ष ने बलवान पक्ष को खा लिया है। गाय, हिरन, कौआ, बटेर, चूहा, गीदड़ तथा मेढक कमजोर पक्ष के हैं तथा इनके विपक्ष में रहे हुए सिंह, चीता, लंगर, बाज, बिल्ली, कुत्ता तथा सांप बलवान पक्ष के हैं। संसार में सिंह, चीता, लंगर, बाज, बिल्ली, कुत्ता तथा सांप क्रमशः गाय, हिरन, कौआ, बटेर, चूहा, गीदड़ तथा मेढक को मारते हैं, परन्तु यहां उलटा हुआ है। यहां गाय आदि के कमजोर पक्ष ने ही सिंह आदि के बलवान पक्ष को धर दबोचा है।

इसका अभिप्राय यह है कि हमारे हृदय में दुर्गुण तथा सद्गुण दोनों के दल रहते हैं। स्वभाव से दुर्गुण दुर्बल पक्ष है और सद्गुण सबल पक्ष। किन्तु दुर्बल पक्ष ने ही सबल पक्ष को धर दबोचा है। दुर्गुण दुर्बल तथा सद्गुण सबल कैसे हैं? यह साफ जाहिर है। काम और विचार को लें। काम अंधकाररूप है और

विचार प्रकाशरूप। काम की दशा में आदमी कुछ क्षण रह सकता है, जीवनभर नहीं। वह जितने क्षण काम में रहता है उतना क्षण भी कितना उत्तेजनापूर्ण, भावुकतापूर्ण, मलिन, घृणित एवं अस्त-व्यस्त होता है यह सर्वविदित है। इसके विपरीत विचार है। विचार में पूरा जीवन रहा जा सकता है। हम विचार की अवस्था में निष्काम, संतुष्ट, स्थिरमति एवं निर्द्वंद्व होते हैं। जब तक विचार रहता है, काम आ ही नहीं सकता। विचार इतना सबल है कि उसके सामने काम टिक नहीं सकता। परन्तु विचार न रहने पर काम ही बलवान हो जाता है। अतः लगता है कि मानो काम ने ही विचार को नष्ट कर दिया है। जब घोर अंधकार रहता है तब लगता है कि इस अन्धकार ने ही प्रकाश का नाश कर दिया है, जबकि प्रकाश का अभाव मात्र अंधकार है। प्रकाश सकारात्मक है और अंधकार नकारात्मक। प्रकाश हो तो अन्धकार रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तो अन्धकार इसलिए रहता है क्योंकि प्रकाश उपस्थित नहीं है। जहां प्रकाश आया कि अन्धकार गायब हुआ। इसी प्रकार काम-वासना इसलिए है कि विचार मन में उपस्थित नहीं है। जहां विचार आया कि काम समाप्त हुआ। इसी प्रकार क्रोध, तृष्णा, राग-द्वेष, मोह आदि इसलिए हैं कि क्षमा, संतोष, समता, विवेकादि मन में नहीं हैं। जहां क्षमा, संतोष, समता, विवेकादि मन में विद्यमान हुए कि क्रोध, तृष्णा, राग-द्वेष, मोह आदि गायब हुए। ये कामादि दुर्गुण जो विचारादि के अभाव मात्र से अपनी सत्ता रखने वाले मूलतः दुर्बल हैं, लगते हैं कि सबल हैं। लगता है कि कामादि ने विचारादि को नष्ट कर दिया है, परन्तु बात ऐसी है नहीं। वस्तुतः हम विचार, क्षमा, संतोष, समता, विवेकादि मन में नहीं जगाते, तो काम, क्रोध, तृष्णा, राग-द्वेष, मोह आदि जगकर मन में छा जाते हैं।

वस्तुतः कामादि दुर्गुण पक्ष तथा विचारादि सद्गुण पक्ष—दोनों एक साथ मनुष्य के हृदय में रहते हैं। इस शब्द की अंतिम पंक्ति में सद्गुरु ने यही कहा है "कहहिं कबीर पुकारि के, है दोऊ एकै संगा।" मनुष्य की स्वतन्त्रता है, वह चाहे तो कामादि विकारों का स्मरण कर उन्हें ही मन में बढ़ाये, अथवा विचारादि को बढ़ाये। ये दैवासुर संपदाएं मनुष्य के मन में रहती हैं। मनुष्य चाहे दैवी-संपदा बढ़ा ले और चाहे आसुरी-संपदा बढ़ा ले। दोनों के फल प्रत्यक्ष हैं। आसुरी-संपदा का फल नरक है और दैवी-संपदा का फल कल्याण है।

इस शब्द में आये हुए गाय, हिरन, कौआ, बटेर, चूहा, गीदड़ तथा मेढक के और इसके विरोधी सिंह, चीता, लंगर, बाज, बिल्ली, कुत्ता तथा सांप के कुछ विशेष अर्थ किये जायें या नहीं, कुछ अन्तर नहीं पड़ता। सहज अर्थ यही है कि गाय आदि दुर्बल पक्ष कामादि आसुरी-संपदा के हैं तथा सिंह आदि

सबल पक्ष दैवी-संपदा के हैं। मनुष्य की बुद्धि विपरीत होने से दुर्बल आसुरी-संपदा ने ही सबल दैवी-संपदा को ढक-जैसा लिया है। परन्तु जो यह समझ जाता है कि आसुरी-संपदा अंधकार मात्र है जो दैवी-संपदारूपी प्रकाश के सामने नहीं टिक सकती, वह शीघ्र ही दुर्गुणों से मुक्त होकर सद्गुणों में विराजता है।

यदि गाय तथा सिंहादि के विशेष अर्थ किये जायें तो इस प्रकार किये जा सकते हैं—

गाय—अविद्या	सिंह—ज्ञान
हिरन—चंचलता	चीता—शांति
काग—वासना	लंगर—विवेक
बटेर—उत्साहहीनता	बाज—उत्साह
मूस—भय	बिल्ली—निर्भयता
गीदड़—अविवेक	श्वान—विवेक
मेढक—विषयासक्ति	सर्प—पांच ज्ञानेन्द्रियां

इन गाय, सिंह आदि के अर्थ दूसरे मनोभावों में भी किये जा सकते हैं, परन्तु इतना साफ है कि गाय आदि दुर्बल पक्ष के प्राणियों के रूपक आसुरी-संपदा के लिए हैं तथा सिंह आदि सबल पक्ष के प्राणियों के रूपक दैवी-संपदा के लिए हैं। सातवीं पंक्ति में है कि एक मेढक ने पांच सांपों को खा लिया। ज्ञानेन्द्रियां मानो सांप हैं। ये विवेकयुक्त रहें तो विषयासक्ति के ध्वंस में सहायक बन सकती हैं, परन्तु ऐसा न होने से विषयासक्ति ही पांचों ज्ञानेन्द्रियों को पतित कर देती है।

इस शब्द की छठीं पंक्ति में सद्गुरु ने एक विशेष महत्त्व की बात कही है "आदि को उदेश जाने, तासु बेस बाना।" जो आदि का उद्देश्य जानता है उसके वेष-बाना सफल हैं। 'आदि' शब्द के मुख्य दो अर्थ हैं। किसी कालखंड के आरम्भ को आदि कहते हैं तथा मूल को आदि कहते हैं। यहां कालखंड का आरम्भ अर्थ नहीं है, किन्तु 'मूल' अर्थ है। "आदि को उदेश" है मूल उद्देश्य। मनुष्य का मूल उद्देश्य है दुखों से अत्यन्त निवृत्ति। अतएव उक्त पंक्ति का अर्थ है कि जो साधक दुखों से अत्यन्त निवृत्तिरूप अपने जीवन के मूल उद्देश्य को समझता और उस दिशा में चलता है, उसी के धार्मिक वेष-बाना सफल हैं।

हर प्राणी दुखों से छूटना चाहता है। मानव-प्राणी विवेक-साधनसंपन्न होने से दुखों से छूटने में समर्थ है। दुख उत्पन्न होते हैं अपने स्वरूप के अज्ञान तथा दोषों से। जब मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और अपने मन, वाणी

तथा शरीर के दोषों को छोड़ने लगता है, तब वह क्रमशः दुखों से मुक्त होने लगता है। दुखों से पूर्ण निवृत्ति तब होती है जब दोषों की पूर्ण निवृत्ति हो जाती है। जो साधक अपने मन में यह सदैव ध्यान रखता है कि मुझे पूर्ण दुखरहित होना है वह अपने जीवन के एक-एक दोष को निकाल-निकालकर फेंकता है। अपने मूल उद्देश्य—दुखनिवृत्ति को समझने वाला कभी दूसरों के दोषों को देखने की चेष्टा नहीं करता। वह तो सदैव यह ध्यान रखता है कि मेरे दोष दूर हों। मेरे बनाये दोषों को छोड़कर मुझे अन्य कोई दुख दे ही नहीं सकता। अतएव जो अपने मूल उद्देश्य को सदैव अपने मन के सामने रखता है, वह इधर-उधर न उलझकर अपने भीतर बने दोषों को निकालता है तथा नये दोषों से सावधान रहता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के ही वेष-बाना एवं धार्मिक चिह्न धारण करना सफल है। अन्यथा वेष का स्वांग कोई भी बना सकता है जिससे कोई लाभ नहीं।

इस प्रकार इस शब्द में सद्गुरु ने सांसारिकता एवं विषयासक्ति से लौटकर वेद को, ज्ञान को एवं निजस्वरूप को समझने की प्रेरणा दी है और बताया है कि तुम स्वभाव से ही शीतल एवं कल्याणमय हो, केवल भूल से तुम्हारे मन में दोषों और दुखों की आग जल रही है। दुर्बल दुर्गुण पक्ष ने सबल सद्गुण पक्ष को दबा-जैसा दिया है। परन्तु यदि तुम अपने मूल उद्देश्य को समझो तथा अपने आप में जग जाओ तो कृतार्थ हो जाओगे। सार यह है कि तुम्हें जगत से लौटकर निजतत्त्व को समझना चाहिए।

मनुष्य सबसे श्रेष्ठ है

शब्द-112

झगरा एक बढ़ो राजाराम, जो निरुवारे सो निर्बान 1
ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया, बेद बड़ा कि जिन्ह उपजाया 2
ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा कि रामहि जाना 3
भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास, तीर्थ बड़ा कि तीर्थ का दास 4

शब्दार्थ—झगरा=झगड़ा, विवाद। राजाराम=श्रेष्ठ चेतन। निरुवारे=निरवारना, तय करना, न्याय करना, फैसला करना। निर्बान=निर्वाण, सुख शांति, मुक्ति। आया=पैदा हुआ, कल्पित हुआ। उपजाया=पैदा किया, रचना की।

भावार्थ—हे श्रेष्ठ चेतन ! एक बहुत बड़ा विवाद है, जो इसका फैसला कर देता है, वह सारे बंधनों से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है 1 ब्रह्म बड़ा है कि जिसकी कल्पना से ब्रह्म का रूप खड़ा हुआ वह मनुष्य बड़ा है? वेद बड़े हैं

कि वेदों के रचयिता बड़े हैं? 2 यह मन बड़ा है कि मन को मानने वाला जीव बड़ा है? ईश्वर बड़ा है कि ईश्वर की अवधारणा करने वाला मनुष्य बड़ा है? 3 संसार के लोग मोक्ष के लिए तीर्थ में मारे-मारे घूमते हैं, परन्तु तीर्थ बड़े हैं कि तीर्थों की स्थापना कर उनका सेवन करने वाले भक्त लोग बड़े हैं? इन विषयों का समाधान करो और कृतार्थ हो जाओ 4

व्याख्या—कबीर साहेब धर्म और अध्यात्म क्षेत्र के वैज्ञानिक पुरुष हैं। धर्म और अध्यात्म के नाम पर चलती हुई प्रकृति-विरुद्ध बातों के वे विरोधी हैं। तर्क, युक्ति और विवेकसंगत बातें, जो मानवमात्र के लिए कल्याणकर हैं, उनकी जिसे पिपासा हो वह कबीर साहेब की वाणियों को पढ़े। उसे उनमें सही दिशा मिलेगी। अतएव विचारप्रधान व्यक्ति तथा विवेकी के लिए कबीर साहेब की वाणियां बहुत बड़ा सहारा है।

यहां सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे राजाराम ! हे चेतन सरकार ! हे ज्ञान-सम्राट मानव ! एक बहुत बड़ा विवाद खड़ा है कि ब्रह्म, ईश्वर, वेद तथा तीर्थ श्रेष्ठ हैं कि इनकी जहां से उपज हुई वह श्रेष्ठ है? संसार के अधिकतम लोग तो ऐसे ही हैं जो यही मानते हैं कि ब्रह्म, ईश्वर, वेद तथा तीर्थ श्रेष्ठ हैं। परन्तु कुछ विवेकी होते हैं, उन्हें इस मान्यता पर संतोष नहीं होता। वे कहते हैं कि इन सबका अवधारण जहां से होता है वह श्रेष्ठ है। कबीर देव कहते हैं कि जो इस विवाद को सुलझाकर विवेकसम्मत पथ पकड़ता है वही कल्याण का अधिकारी है। "झगड़ा एक बढ़ो राजाराम" यहां राजाराम मनुष्य की आत्मा के लिए सम्बोधन समझना चाहिए। क्योंकि राजाराम यही है। जो व्यक्ति अपने मन के विवाद एवं संदेह को मिटा देगा वह निर्वाण का अधिकारी हो जायेगा। निर्वाण का अर्थ है बुझा हुआ। यहां अर्थ है वासनाओं का बुझ जाना। सीधा अर्थ हुआ जीव का कृतार्थ एवं मुक्त हो जाना।

"ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया।" ब्रह्म का अर्थ श्रेष्ठ है। वह मनुष्य की आत्मा ही है। परन्तु लोगों ने ब्रह्म की कल्पना भिन्न ढंग से की है। उनकी कल्पना है कि सत्ता केवल एक ही तत्त्व की है, उसे जड़ कहो या चेतन। वे मानते हैं कि एक ब्रह्म के अलावा न दूसरा चेतन है न जड़ तत्त्व। यह जगत तो है ही नहीं। यह तो भ्रम से ही भासता है। अद्वैत ब्रह्मवाद पर सुन्दरदास जी की कविता में बड़ा रोचक प्रश्नोत्तर है। इसे ध्यान देकर पढ़ें—

शिष्य पूछता है—गुरुदेव !

गुरु कहते हैं—शिष्य ! क्या पूछना है?

शिष्य—मुझे एक शंका है।

गुरु—अभी क्यों नहीं पूछ लेता है।

शिष्य—आप कहते हैं कि एक ही ब्रह्म है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं?

गुरु—मैं अब भी एक ही ब्रह्म कहता हूं।

शिष्य—यदि एक ही है तो अनेक क्यों भासते हैं?

गुरु—यह अनेक का सबको भ्रम है।

शिष्य—जब ब्रह्म के अलावा कोई है ही नहीं, तो यह भ्रम किसको है?

गुरु—भ्रम को ही भ्रम हो गया है।

शिष्य—भ्रम ही को भ्रम कैसे हो गया?

गुरु—इसे जानने की तूने कभी चेष्टा नहीं की।

शिष्य—हे स्वामी ! मैं इसे कैसे जानूं कि भ्रम को ही भ्रम हुआ है?

गुरु—निश्चय कर लो कि भ्रम को ही भ्रम हुआ है।

शिष्य—हे प्रभु ! मैंने इसे निश्चय कर लिया।

गुरु—बस, तब एक ब्रह्म सिद्ध हो गया।

यह है अद्वैत ब्रह्मवाद को जबर्दस्ती सिद्ध करने का प्रयास। भ्रम को ही भ्रम हो गया, यह कोई विवेक की बात हुई? परन्तु इस जबर्दस्ती को छोड़कर अद्वैतवाद सिद्ध करने का कोई साधन भी नहीं है। शिष्यों को श्रद्धा के बल पर मनवाने का प्रयास किया जाता है।

यदि ब्रह्म में ही भ्रम होना कहें तो अपने आप को देखकर अपने आप ही भ्रमित होना अयुक्त है। ब्रह्म के अलावा कोई दूसरा था नहीं जिसे देखकर उसे भ्रम हो। यद्यपि इस असंगति को बैठाने के लिए अद्वैतवादी वाणी का एक बृहत् रूप खड़ा करते हैं, तथापि अद्वैतवाद में सब बातें द्वैत की होती हैं जो उनके सिद्धांत से ही अज्ञानजन्य हैं। अद्वैत प्रतिपादन करना ही अज्ञान है, क्योंकि प्रतिपादक, प्रतिपादन तथा प्रतिपाद्य—त्रिपुटी हो जाती है। अद्वैत रह नहीं जाता। कबीर साहेब कहते हैं कि यह ब्रह्म की कल्पना बड़ी नहीं है, किन्तु कल्पना

. शिष्य पूछे गुरुदेव, गुरु कहे पूछे शिष्य,
मेरे एक शंका अहै, क्यों न पूछे अबहीं।
तुम कहो एक ब्रह्म, अजहूं मैं कहूं एक,
एक तो अनेक कैसे, यह भ्रम सबहीं॥
यह भ्रम काकूं भयो, भ्रम ही को भ्रम भयो,
भ्रम ही को भ्रम कैसे, तू न जाने कबहीं।
कैसे करि जानूं नाथ, गुरु कहैं निश्चय धरु,
निश्चय करि जान्यों प्रभु, एक ब्रह्म तबहीं॥

करने वाला जीव बड़ा है। "ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया" ब्रह्म बड़ा है कि जहां से ब्रह्म की कल्पना खड़ी हुई? वस्तुतः ब्रह्म की कल्पना खड़ी हुई जीव से, इसलिए जीव श्रेष्ठ है, ब्रह्म नहीं। यह मनुष्य की आत्मा ही सर्वोपरि है।

"बेद बड़ा कि जिन्ह उपजाया" वेद बड़े हैं कि वेदों की रचना जिसने की वे मनुष्य बड़े हैं? यह सहज ही समझा जा सकता है कि मनुष्य बड़े हैं। यदि मनुष्य न होते तो वेदों की रचना कौन करता? वेद ही क्या, बाइबिल, कुरान तथा संसार के समस्त धर्मशास्त्र एवं ज्ञान-विज्ञान मनुष्य की देन हैं। धर्मावलंबी लोग धर्मशास्त्रों की इतनी दोहाई देने लगते हैं कि उनके ख्याल से मनुष्य से श्रेष्ठ धर्मशास्त्र ही हो जाते हैं। अधिकतम धार्मिकों को यह सनक सवार है कि हमारे धर्मशास्त्र आकाश से आये हैं। उन्हें कोई अतिमानवीय शक्ति ने भेजा है। वे मूर्तिपूजा की जगह पर धर्मशास्त्रों को ही बैठा देते हैं। यह सब दुर्भाग्यपूर्ण है। वेद हो या कुरान, बाइबिल हो या अन्य धर्मशास्त्र सब मनुष्यों की रचनाएं हैं। मनुष्य से बड़ी कोई चेतनाशक्ति नहीं है जो ज्ञान-विज्ञान दे सके। मनुष्य को किसी वस्तु से तुच्छ कहना अनर्थ है। मनुष्य की आत्मा ही वेदों का वेद है।

"ई मन बड़ा कि जेहि मन माना" यह मन बड़ा है कि इस मन को मानने वाला? उत्तर है कि मन बड़ा नहीं है, किन्तु मन को मानने वाला बड़ा है। हम अपने मन में नाना मान्यताएं बना लेते हैं और उन्हें ही श्रेष्ठ मान लेते हैं, परन्तु श्रेष्ठ मन तथा मन की मान्यताएं नहीं हैं किन्तु जो मन-मान्यताओं को खड़ा करता है वह चेतन मनुष्य ही श्रेष्ठ है। यहां मनुष्य से अभिप्राय है मनुष्य शरीर में रहने वाला जीव, चेतन एवं आत्मा। केन उपनिषद् के ऋषि ने भी कहा है— "जिसका मन से मनन नहीं होता, किन्तु जिससे मन मनन करता है उसे श्रेष्ठ समझ, न कि उसे, जिसे मन से मानकर उपासना करता है।" साहेब कहते हैं कि मन-मान्यता तुम्हारा खेल है, तुम उससे श्रेष्ठ हो। अर्थात मन और मान्यताओं का जनक जीव है। वह उनसे श्रेष्ठ है।

"राम बड़ा कि रामहि जाना" ईश्वर बड़ा है कि ईश्वर की कल्पना करने वाला? यदि राम, ईश्वर, परमात्मा व्यक्ति की आत्मा से अलग है, तो वह क्या है? यदि वह चेतन है तो सजाति है और उससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। वस्तुतः मनुष्य अपने स्वरूप के अज्ञान से अपने से अलग राम-रहीम की कल्पना करता है। साहेब कहते हैं कि यदि राम तुम्हारी आत्मा से अलग है तो वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता, किन्तु उसके मानने, जानने तथा कल्पना करने वाले

. यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ (केन उपनिषद्, 1/5)

तुम्हीं श्रेष्ठ हो। कबीर साहेब ने मनुष्य की आत्मा को ही राम कहा है "हृदया बसै तेहि राम न जाना।" तथा "राम नाम निजु जानि के, छाड़ि देहु बस्तु खोटि।" अर्थात राम ऐसा नाम अपना ही समझकर खोटी बाह्य कल्पनाएं छोड़ दो। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि ईश्वर की कल्पना करने वाला ईश्वर से श्रेष्ठ है। यदि मनुष्य की आत्मा न होती तो ईश्वर की कल्पना न होती। इसलिए मनुष्य की आत्मा ही ईश्वर का ईश्वर तथा परमात्मा का परमात्मा है।

"भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास, तीर्थ बड़ा कि तीर्थ का दास।" संसार के मनुष्य तीर्थों में भटकते हैं। वे दुखी होकर वहां परमात्मा तथा मोक्ष खोजते हैं। तीर्थों की बड़ी महिमा बढ़ायी गयी। यहां तक लिखा गया कि अमुक तीर्थ में जाने से, अमुक नदी में नहाने से तथा अमुक देवता के दर्शन करने से सारे पाप कट जायेंगे, मोक्ष तथा परमात्मा मिलेंगे। साहेब कहते हैं कि यह सब तुम्हारे मन का धोखा है। यदि तुम न होते तो तीर्थ कौन बनाता! ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो ईसा के तीन-चार सौ वर्ष के बाद से अर्थात गुप्त काल से तीर्थों, देवमन्दिरों आदि की स्थापना का जोर बढ़ा है। वैदिक तथा उपनिषद् काल में कहीं भी तीर्थों का पता नहीं चलता। साहेब कहते हैं कि तीर्थ श्रेष्ठ नहीं हैं किन्तु तीर्थ की स्थापना करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं।

इस पूरे शब्द में सद्गुरु ने यही दर्शाया है कि जो ब्रह्म तथा ईश्वर की कल्पना करता है, वेदादि समस्त धर्मशास्त्रों की रचना करता है, जो सारे ज्ञान-विज्ञान का अन्वेषण करता है, जो मन-मान्यताओं का जनक है तथा सारे तीर्थों की स्थापना करता है, वह मनुष्य ही सर्वोपरि सत्ता है। ज्ञान-विज्ञान का परम निधान मनुष्य है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी गरिमा एवं आत्मगौरव को समझने का प्रयास करे।

साथियों की चिन्ता न कर सत्य के उपासक बनो

शब्द-113

झूठेहि जनि पतियाउ हो, सुनु सन्त सुजाना 1
तेरे घट ही में ठग पूर है, मति खोवहु अपाना 2
झूठे की मण्डान है, धरती असमाना 3
दशहुँ दिशा वाकी फन्द है, जीव घेरे आना 4
योग जप तप संयमा, तीरथ ब्रत दाना 5
नौधा बेद कितेब है, झूठे का बाना 6

. रमैनी 41।
. रमैनी 36।

काहू के बचनहिं फुरे, काहू करामाती 7
मान बड़ाई ले रहे, हिन्दू तुरुक जाती 8
बात ब्योंते असमान की, मुद्दति नियरानी 9
बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी 10
कहहिं कबीर कासों कहौं, सकलो जग अन्धा 11
साँचे से भागा फिरै, झूठे का बन्दा 12

शब्दार्थ—पतियाउ=विश्वास करना। सुजाना=सुजान, ज्ञानी। घट=हृदय। ठग=छली मन। पूर=विद्यमान। अपाना=अपनापन, आत्मज्ञान, आत्मगौरव, होशहवास। मण्डान=घेरा, शृंगार। वाकी=मन की। नौधा=नौधा भक्ति—श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दासभाव, सखापन तथा आत्मनिवेदन। कितेब=किताब, कुरान आदि। बाना=वेष, पहनाव, पोशाक, मुलम्मा। बचनहिं फुरे=वाचासिद्धि, वर-शाप देने की शक्ति। करामाती=करामात दिखाने वाला, चमत्कार प्रदर्शित करने वाला। ब्योंते=नापते हैं। मुद्दति=काल, अवधि। खुदी=अहंकार, गर्व। बूड़े बिनु पानी=(मुहावरा) तुच्छ बातों को लेकर पतित होना। अन्धा=विवेकहीन। बन्दा=दास, गुलाम।

भावार्थ—हे ज्ञानी संतो ! सुनो, झूठी बातों पर विश्वास नहीं करना 1 सावधान ! तुम्हारे हृदय ही में मन-ठग बैठा है, उसमें मिलकर आत्मगौरव तथा अपने होशहवास को नहीं खो देना 2 धरती से आकाश तक सारे संसार में झूठे का ही शृंगार है 3 दसों-दिशाओं में मन-काल का जाल फैला है। उसने मानो आक्रमणकारी की भांति आकर जीव को घेर लिया है 4 यहां तक कि मन ने योग, जप, तप, संयम, तीर्थ, व्रत, दान, नौधाभक्ति, वेद, कुरान आदि पर भी झूठे का मुलम्मा चढ़ा रखा है 5-6 कोई तो वाचा-सिद्धि का ढोंग दिखाकर शाप और वर देने की धमकी तथा प्रलोभन दे रहा है और कोई छल-कपटपूर्वक आश्चर्य भरे लगने वाले करतब दिखाकर अपने आप को चमत्कारी सिद्ध कर रहा है 7 उधर हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के लोग अपनी-अपनी मान-बड़ाई की डींगें हांक रहे हैं 8 ये बातें तो आकाश की करते हैं, परन्तु मलिनता भरे राग-द्वेष में जिन्दगी खो देते हैं 9 ये अपने मन में बड़प्पन का बहुत अहंकार रखते हैं और तुच्छ बातों में पड़कर अत्यन्त घिनौने काम करते हैं 10 कबीर साहेब कहते हैं कि यह सब मैं किससे कहूं, सारा संसार तो विवेकहीन बना है। सच्ची राह बताने वालों से दूर भागते हैं और मिथ्या महिमा का मुलम्मा चढ़ाकर झूठी राह में ले जाने वालों की गुलामी करते हैं 11-12

व्याख्या—कबीर साहेब की एक-एक पंक्ति में आग भरी हुई है, जिसका यदि अपने जीवन में प्रयोग किया जाये तो जीवन का सारा कूड़ा-कचड़ा जल जाये। बारह पंक्तियों का यह शब्द कितना मार्मिक, कितना विदग्धात्मक तथा कितना हृदयस्पर्शी है, यह सोचते ही बनता है। सद्गुरु पहली पंक्ति में कहते हैं—"झूठेहि जनि पतियाउ हो, सुनु सन्त सुजाना " हे सुजान संतो ! झूठी बातों पर विश्वास मत करना। धर्म के नाम पर झूठी बातें खूब चलती हैं। एक राजनेता, वकील तथा व्यापारी जितना झूठ नहीं बोलता उतना झूठ एक धर्माधिकारी बोलता है। दूसरे लोग तो लुक-छिपकर झूठ बोलते हैं और यदि पकड़ जायें तो कानूनन दंड भी पा सकते हैं, परन्तु धार्मिक कहलाने वाले लोग धर्म की गद्दी पर बैठकर हजार के बाजार में घोषणापूर्वक झूठ बोलते हैं, और उनके एक-एक बड़े झूठ पर फूल उछालकर तथा जय बोलाकर उनका स्वागत किया जाता है। उनकी पूजा तथा आरती की जाती है। जो विश्व के शाश्वत नियमों, कारण-कार्य-व्यवस्था तथा प्रकृति के गुण-धर्मों के भीतर नहीं है वह कथन मनुष्य के साथ एक छलावा है। साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! ऐसी झूठी बातों पर विश्वास नहीं करना, चाहे उसके पीछे कितना ही आप्तप्रमाण का दावा किया गया हो। विश्व के शाश्वत नियम अपने आप ही प्रमाण हैं। उनके विरुद्ध जो कुछ है अप्रमाण है।

"तेरे घट ही में ठग पूर है, मति खोवहु अपाना।" सद्गुरु कहते हैं कि तुम्हारे हृदय में मन-ठग बैठा है। देखना उसके छल-कपट में पड़कर तुम अपने होशहवास को खो नहीं देना। बाहर के लोग धोखा देकर, झूठ बोलकर तुम्हें छलते हैं। ऐसे धोखेबाज तथा झूठे धार्मिक क्षेत्र में भी हैं तथा व्यावहारिक क्षेत्र में भी। परन्तु सद्गुरु कहते हैं कि सबसे बड़ा झूठा और ठग तो तुम्हारे घट-भीतर बैठा है, वह है मन। मन तुम्हारे भीतर बैठा हर समय तुम्हें छल रहा है। वह गंदे शरीर को तुम्हारे सामने खूबी से रमणीय प्रदर्शित करता है, पतनकारी काम-वासना को आनंदरूप सिद्ध करता है। इसी प्रकार सारी मलिनताओं पर वह पवित्रता का स्वर्णिमवरक लगाकर तुम्हें छलता है। मन तुम्हें कब धोखा दे जाता है, इस पर ध्यान रखो। यह धोखेबाज मन ही तो है जो सारी अनुपस्थित अमंगलकारी चीजों को उपस्थित के समान याद दिला-दिलाकर तुम्हें ठगता है। तुम वस्तुतः साठ वर्ष के हो और मन याद करा रहा है तुम बीस वर्ष के हो, तुम तथ्यतः झोपड़ी में हो और मन याद करा रहा है तुम महल में हो। इसी प्रकार अनेक झूठी बातों से मन तुम्हें क्षण-क्षण ठग रहा है। साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! हे सज्जनो ! इस झूठे मन के जाल में मिलकर "मति खोवहु अपाना" अपनापन को, आपा को, अपने होशहवास को मत

खोओ। मन के भटकाव में पड़कर अपने आप को मलिनता में डाल देना ही अपने आप को खोना है। मन का गलत स्मरण, वाणी का गलत उच्चारण तथा इन्द्रियों का गलत आचरण—यही अपने आप को खोना है, यही अपने आप का पतन है। सद्गुरु कहते हैं कि मन से सावधान रहना तथा अपने आप का पतन नहीं करना।

"झूठे की मण्डान है, धरती असमाना। दशहुँ दिशा वाकी फंद है, जीव घेरे आना।" धरती से आकाश तक जितना शृंगार है, झूठा है। मन के फंदे तो दसों दिशाओं में फैले हैं। उसने तो मानो तुम्हें हमलावर की तरह घेर लिया है। यह जीव अपने स्वरूप को क्षण-क्षण क्यों भूलता रहता है? क्योंकि यह संसार के शृंगार में, चमक-दमक में फंसता रहता है। साहेब कहते हैं कि संसार के सारे शृंगार झूठे हैं। मंडान कहते हैं घेरा को, शृंगार को एवं चमक-दमक को। धरती से आकाश तक जितने फैले हुए दृश्य मन को मोहित करते हैं वे झूठे हैं, क्योंकि वे क्षणिक हैं। जैसे युवती पत्नी, सुन्दर बच्चे, सुन्दर भवन, मित्र, गोष्ठी, शासन, स्वामित्व, प्रतिष्ठा, सजी फुलवारियों तथा मनोहर वनों का विहार, देश-विदेश के चमकते दृश्य, नदी, पर्वतों की मनोरमता, बादलों की श्यामता, वर्षा, शरद, वसंत एवं ग्रीष्म के आकर्षक दृश्य—सब कुछ तो क्षणभंगुर है। हम जिन दृश्यों में मोह कर अपनी स्थिति से दूर रहते तथा समय नष्ट करते हैं वे नित्य एकरस रहने वाले नहीं हैं और शरीर के साथ एक दिन तो सब छूटने वाले ही हैं। मन के जाल दसों दिशाओं में फैले हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, इन चारों के चारों कोने—आग्नेय, नैऋत, वायव्य तथा ईशान और ऊपर तथा नीचे—ये दस दिशाएं मानी गयी हैं। यहां दसों दिशाओं का लक्षणा अर्थ है सर्वत्र। मन के फंदे तो सर्वत्र फैले हैं। इसका अर्थ है कि इस भावुक तथा अविवेकी जीव के फंसने के लिए हर जगह मोहक फंदे हैं। विवेक से देखने पर संसार में कुछ भी मोहक नहीं है; परन्तु इस अविवेकी मन ने जैसी गलत आदतें एवं वासनाएं बना ली हैं उनके कारण यह पदे-पदे उलझता रहता है। जैसे हमलावर शत्रु पर धावा बोलकर उसे घेर लेते हैं, जैसे जल पर फैली हरी काई जल पर छा जाती है, वैसे मन की वासनाएं मनुष्य पर छा जाती हैं। मन ने जीव को चारों तरफ से घेरकर उसे विषयासक्त बना दिया है। वस्तुतः जीव अपने दिव्य स्वरूप को भूलकर मन के जाल में उलझा हुआ दुख पा रहा है।

केवल व्यावहारिक क्षेत्र में मन का जाल फैला है ऐसी बात नहीं है, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में भी मन के जाल का वर्चस्व है। साहेब कहते हैं "योग जप तप संयमा, तीरथ ब्रत दाना। नौधा बेद कितेब है, झूठे का बाना।" योग, जप, तप, संयम, व्रत, दान, नौधा भक्ति, वेद, कुरान आदि सभी को मन ने झूठे का जामा

पहना दिया है। मन धोखेबाज है तो धार्मिक क्षेत्र में भी यह अपना धोखा फैलाता है। वस्तुतः जीव विषयासक्त हो गया है। इसलिए वह अपनी विषय-लोलुपता को पूर्ण करने के लिए धर्म के क्षेत्र को भी धूमिल करता है। योग मन का निग्रह है, जप सावधानी है, तप शारीरिक-मानसिक सहनशीलता है, संयम गलत खान-पान तथा बात-व्यवहार से बचना है, तीर्थ सत्संग है, व्रत सदाचार-पथ पर चलने की प्रतिज्ञा है, दान निष्काम भाव से एवं कर्तव्य दृष्टि से किसी प्रकार किसी की सेवा करना है, भक्ति हृदय की कोमलता है तथा वेद-किताबादि संसार के धर्मशास्त्र हैं जिनमें नीर-क्षीर विवेक कर सदैव क्षीर को एवं सत्य को ही ग्रहण करना चाहिए। इस ढंग से इन्हें ग्रहण करने से मनुष्य का कल्याण है। परन्तु योग, जपादि के नाम पर पाखंड फैल गये हैं। लोग इनका नाम लेकर आत्म-प्रवंचना तथा लोक-प्रवंचना करते हैं। लोग योग के नाम पर ऋद्धि-सिद्धि आदि के झूठे जाल फैलाते हैं; जप के बल पर अनिष्टहरण तथा इष्टसिद्धि का झांसा देते हैं; तप के नाम पर अग्नितापन, जलशयनादि हठधर्मिता का व्यवहार कर समाज को गलत दिशा देते हैं; संयम के नाम पर अनेक कल्पित सिद्धियों का भ्रम फैलाते हैं; तीर्थ के नाम पर गया-प्रयागादि पाप काटने तथा मुक्ति देने के ठेकेदार हो ही गये हैं, व्रत के नाम पर अविवेकपूर्ण लंबे-लंबे उपवास होते हैं जिसके फल में स्वर्ग मिलने का झांसा दिया जाता है। दान में भी दिखावा, अहंकार तथा किसी-न-किसी प्रकार प्रतिलाभ की वासना हो गयी है; नौधा भक्ति के नाम पर लीला, रास, लल्ली-लल्ला का राग-रंग तथा आत्महीनता का प्रदर्शन हो गया है; और वेद-किताब के नाम पर विवेक छोड़कर तथाकथित प्रभुवाणी की दोहाई का प्रपंच फैल गया है। यही सब तो इन पर झूठे का बाना, झूठे का लबादा चढ़ गया है। जो कल्याणकारी पक्ष थे मनुष्यों की मन-मलिनता के नाते वे सब अकल्याणकारी बन गये। "ठांव गुण काजर ठांव गुण कारी" वही आंख में लगने पर काजल कहलाता है तथा गाल में लगने पर कालिख। विवेकपूर्वक जो भी हो वह मनुष्य का कल्याण करता है और वही अविवेकपूर्वक होने से अकल्याणकारी होता है। जो अन्न मनुष्य को जीवनदाता है, उसी का दुरुपयोग करने से वह मृत्युदाता भी होता है। मलिन मन सब कुछ का दुरुपयोग कर देता है। इसलिए हम मन से सावधान रहें।

. किसी एक ध्येय में जब धारणा, ध्यान तथा समाधि हो जाती है तब इस एकाग्रता को संयम कहते हैं। सूर्य में संयम कर लेने पर समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है, प्रकाश में संयम कर लेने पर परदे के भीतर पड़ी देश-विदेश की वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार अनेक संयम से अणिमा, महिमा, लघिमा आदि कल्पित सिद्धियों की प्राप्ति का झूठा प्रचार किया जाता है। देखिये योग दर्शन 3/14-49।

"काहू के बचनहिं फुरे, काहू करामाती।" अजीब संसार है। कोई अपनी वाचासिद्धि का झांसा देकर समाज को बेवकूफ बना रहा है और कोई चमत्कारी बना लोगों को ऋद्धि-सिद्धि देता फिरता है। शाप और वर देने का झांसा पुराकाल में बहुत चलता था। पुराणों को पढ़िए तो उनमें शाप और वर से प्रायः कथाएं व्याप्त हैं। यह धार्मिक कहलाने वाले लोगों का समाज पर दबदबा कायम रखने का हथकंडा था। शाप का भय तथा वर का प्रलोभन देकर वे समाज को अपनी ओर झुकाये रखने की चाल चलते थे। ईश्वर और सिद्धि की कल्पना इस झांसे में सहायक बनती थी। कहा जाता था कि जो लोग ईश्वर और सिद्धि तक पहुंचे हैं वे जो चाहें सो कर दें। ब्राह्मण नामधारी तो स्वतः सिद्ध था। उसका जीवन जैसा भी हो, उसके मुख में अग्नि का वास माना जाता था। वह जो कह दे वही होगा। इसी से मिलते-जुलते करामात दिखाने वाले लोग होते थे। करामत का अर्थ है चमत्कार। करामत का करामात बहुवचन है। करामाती उसे कहते हैं जो करामात दिखाता है अर्थात चमत्कारी। कुछ भोले लोग चमत्कार को आध्यात्मिक शक्ति मानते हैं। किन्तु तथ्य यह है कि सारे चमत्कार केवल छल-कपट के प्रयोग होते हैं। किसी के लिए भी प्रकृति के नियम बदलते नहीं हैं। साधारण-से-साधारण आदमी से लेकर बड़े-से-बड़े महात्मा एवं धार्मिक लोगों के लिए भी प्रकृति के नियम समान हैं। किसी के भी हाथ में चावल है तो वह चावल ही रहेगा और पत्थर है तो वह पत्थर ही रहेगा। यह अलग बात है कि हाथ की सफाई, बात की सफाई, दवाई, वस्तु की बनावट आदि षड्यंत्र अपनाकर छल-कपट से कोई चमत्कार-जैसा दिखा दे, परन्तु वह चमत्कार नहीं है। वाचा-सिद्धि का ढोंग करने वाले तथा चमत्कार का झांसा देने वाले धूर्त हैं और इसमें फंसने वाले मूर्ख हैं।

"मान बड़ाई ले रहे, हिन्दू तुरुक जाती।" हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियां अपनी-अपनी मान-बड़ाई की डीगें हांक रही हैं कि हम बड़ी हम बड़ी। यहां भला दो ढंग से कहां है? हिन्दू-मुसलमान आदि नाम रखकर उसके साथ एक गहरी मनोभावना बना लेते हैं, इसलिए वे एक-दूसरे से अलग तथा अपने आप को श्रेष्ठ और दूसरे को तुच्छ मानने की भूल करने लगते हैं।

"बात ब्योंते असमान की, मुद्दति नियरानी। बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी।" वे बात तो आसमान की ब्योंतते हैं, परन्तु अपने जीवन को नहीं समझ पाते और इसी में जीवन का अंत आ जाता है। लोग अपने आप के प्रति बड़ा अहंकार रखते हैं और बिना पानी बूड़ते हैं। उक्त दोनों पंक्तियों में एक-एक मुहावरा है—'आसमान की बातें ब्योंतना' तथा 'बिना पानी बूड़ना'। कपड़ा नापकर उसको काटना तथा सिलने के लिए तैयार करना 'कपड़ा ब्योंतना' कहा

जाता है। इसमें 'ब्योंतना' का मुख्य अर्थ है 'नाप लेना'। आसमान की बात ब्योंतने का अर्थ है न होने योग्य काम करने की डींग हांकना। आकाश की कोई सीमा नहीं है। इसको कोई क्या नापेगा ! इसी प्रकार कोई असंभव बात को कैसे संभव कर सकेगा ! साहेब कहते हैं कि लोग बातें तो आसमान की करते हैं, परन्तु धरती पर जीना नहीं जानते। इसी असंतुलन में उनके जीवन की अवधि समाप्त हो जाती है। जो अपने मन में बहुत अहंकार रखता है वह बिना पानी के बूड़ता है। 'बूड़े बिनु पानी' यह मुहावरा उन पर व्यंग्य है जो तुच्छ बातों को लेकर घिनौना कर्म कर डालते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें अहंकार तो बहुत बड़ा होता है, परन्तु तुच्छ बातों को लेकर ऐसे कर्म करते हैं जिन्हें देख-सुनकर उन्हें बच्चे भी हंसे। हर अहंकारी की दशा यही होती है। रामायण कथानक के अनुसार रावण-जैसा महाप्रतापवान, विद्वान एवं बलवान अहंकार के कारण एक पर-स्त्री के तुच्छ मोह में पड़कर कुल-परिवार एवं सेना सहित नष्ट हुआ।

"कहहिं कबीर कासों कहौं, सकलो जग अन्धा। साँचे से भागा फिरै, झूठे का बन्दा।" सद्गुरु कहते हैं कि सच्ची बातें कही भी किससे जायें, क्योंकि संसार में अधिकतम लोग तो आंखें मूंदकर रहने वाले हैं। उनकी परंपरा में जो मान्य है उसी की पूंछ पकड़कर वे चलते हैं। उन्हें सत्य से कोई मतलब नहीं है। गलत-सही जो कुछ उन्होंने अपना मान रखा है वे उसी को छाती-पेटे लगाये रखना चाहते हैं। बल्कि वे सचाई से भागे फिरते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि प्रकाश के सामने पड़ते ही हमारा अंधकार समाप्त हो जायेगा। वे अंधकार में आंखें मूंदकर बहुत दिनों से जी आये हैं। अतः उन्हें अंधकार में रहना तथा आंखें बंदकर जीना पसंद है, इसलिए वे प्रकाश से दूर भागते हैं। वे सच्चाई से कतराते और झुठाई की गुलामी करते हैं। जो लोग झूठी बातें करते हैं वे उनको श्रद्धा अर्पित करते हैं, उनकी सेवा करते हैं, किन्तु सत्य निर्णयी से दूर रहते हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि सत्य-इच्छुक ! तुम इसकी चिन्ता न करना कि तुम्हारे साथ कितने लोग हैं। तुम केवल सत्य को लेना और झूठे पर विश्वास कदापि नहीं करना। अपने मन के भीतर की असत्यता तथा बाहर की असत्यता कहीं की भी असत्यता को प्रश्रय नहीं देना। असत्य रखकर करोड़ों साथी मिल जायें तो वे निरर्थक हैं, क्योंकि अंत में कोई साथ नहीं देगा, परंतु केवल एक सत्य यदि साथ में हो तो असंख्य साथियों से वह बलवान है। इसलिए सद्गुरु कबीर ने संतों एवं सज्जनों को इस शब्द में बुलाकर कहा है कि हे संतो, हे सज्जनो ! सुनो, झूठे के पक्ष में नहीं पड़ना ! भीतर मन तथा बाहर मन के वशीभूत लोग

तुम्हें झूठी बातों में फंसाना चाहेंगे, परन्तु तुम कहीं भी नहीं फंसना। सदैव केवल सत्य में रमना। सत्य सर्वोच्च है।

सारशब्द एवं निर्णय वचनों से ही कल्याण है

शब्द-114

सार शब्द से बाँचिहो, मानहु इतबारा हो 1
आदि पुरुष एक वृक्ष है, निरंजन डारा हो 2
तिरदेवा शाखा भये, पत्र संसारा हो 3
ब्रह्मा वेद सही कियो, शिव योग पसारा हो 4
विष्णु माया उत्पति कियो, ई उरले ब्यौहारा हो 5
तीन लोक दशहूँ दिशा, यम रोकिन द्वारा हो 6
कीर भये सब जीयरा, लिये विष का चारा हो 7
ज्योति स्वरूपी हाकिमा, जिन्ह अमल पसारा हो 8
कर्म की बन्शी लाय के, पकरो जग सारा हो 9
अमल मिटावो तासु का, पठवों भव पारा हो 10
कहहिं कबीर तोहि निर्भय करों, परखो टकसारा हो 11

शब्दार्थ—सार शब्द= निर्णय वचन। बाँचिहो= बचोगे, सुरक्षित हो सकोगे, दुखों से छूटोगे, असंग हो सकोगे। इतबारा= विश्वास। आदि पुरुष= मूल पुरुष, चेतन। निरंजन= मन। तिरदेवा= रज, सत तथा तम एवं ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव। शाखा= डालियां। सही कियो= प्रमाणित किया, संपादन किया। माया= भक्ति, उपासना। उरले= उरला, पिछला। यम= वासना। कीर= शुक पक्षी, तोता। विष= विषय। ज्योति स्वरूपी= मन, मन की कल्पित अवधारणा। हाकिमा= हाकिम, राजा, शासक। अमल= अधिकार, लत, आदत। बन्शी= बंशी, मछली फंसाने का कांटा, कंटिया। भव= मन का आयाम, जन्म-मरण। टकसारा= टकसाल, सिक्कों की ढलाई का स्थान, निर्दोष वस्तु, निजस्वरूप चेतन, आत्मा।

भावार्थ—यह विश्वास करो कि निर्णय वचनों के सहारे से ही तुम भवबंधनों एवं दुखों से मुक्त होकर अपनी असंग दशा में स्थित हो सकोगे 1 यह मूल पुरुष चेतन ही मानो एक वृक्ष है, मन उसकी डाली है; रज, सत एवं तम ये त्रिगुण उसकी शाखाएं और संसार उसके पत्ते हैं 2-3 रजोगुण के प्रतिनिधित्व करने वाले ब्रह्मा ने वेदों का संपादन किया और कर्ममार्ग चलाया, तमोगुण के प्रतिनिधित्व करने वाले शिव ने योग-मार्ग का

विस्तार किया और सतोगुण के प्रतिनिधित्व करने वाले विष्णु ने भक्ति एवं उपासना-मार्ग का प्रवर्तन किया, जो पीछे से व्यवहार में आया 4-5 तीनों लोकों और दसों दिशाओं में वासना ने कल्याण का मार्ग रोक दिया 6 जैसे तोते चारे के लोभ से नलिका यन्त्र में फंस जाते हैं वैसे जीव विषयरूपी चारे के प्रलोभन में पड़कर संसार में फंसे हुए हैं 7 यह मन जाज्वल्यमान राजा एवं शासक बन गया है और अपना अधिकार चारों तरफ कायम कर लिया है 8 इसने कर्मजाल की बंसी फेंककर जगत के सारे जीवरूपी मछलियों को फंसा लिया है 9 कबीर साहेब कहते हैं कि हे सज्जनो एवं कल्याण-इच्छुको ! तुम मन-राजा का अधिकार मिटा दो। मैं तुम्हें भव से पार भेजता हूं, और निर्भय करता हूं। तुम निर्दोष ज्ञान तथा निजस्वरूप चेतन की परख करो 10-11

व्याख्या—"सार शब्द से बाँचिहो, मानहु इतबारा हो।" सारशब्द के सहारे से ही बचोगे, यह विश्वास करो। सारशब्द क्या है? वस्तुतः निर्णय वचन को ही सारशब्द कहते हैं। श्री रामरहस साहेब ने अपनी महान रचना पंथग्रन्थी में सारशब्द का कई जगह वर्णन किया है। उन्होंने कहा है कि काल, संधि, झांई और सार चार प्रकार की वाणियां होती हैं। बहुत स्थूल बुद्धि से कही गयी वाणियां 'काल वाणी' हैं, अपने स्वरूप से अलग अपना लक्ष्य खोजने की बात 'संधि' वाणी है, अपनी आत्मा को, अपने चेतनस्वरूप को जगत से अलग न समझकर जड़-चेतन मिला-जुला बताने वाली वाणी "झांईं वाणी" है। ये सारी वाणियां बंधनप्रद हैं। इनसे पृथक चौथी 'सार वाणी' है। जड़-चेतन का भिन्न निर्णय कर अपने चेतनस्वरूप को समस्त जड़ वर्ग से अलग सिद्ध करने वाली वाणी सार वाणी एवं सारशब्द है। वस्तुतः जो जैसा है उसको वैसा ही बताने वाला वचन सारशब्द है। यथार्थ निर्णयवचन को सारशब्द कहते हैं। जो कथन विश्व के नियमों एवं कारण-कार्य-व्यवस्था के अनुकूल तथा प्रकृति-संगत है वह सारशब्द है। सच्चा निर्णयवचन ही सारशब्द है। सार्वभौमिक दृष्टिकोण वाले सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे मानव ! तुम सारशब्द के सहारे ही बचोगे। वेद हों या बाइबिल, कुरान हो या जिंदावेस्ता, गुरु-वाणी में हो या दीवार पर लिखा, संत एवं विद्वान के मुख से निकला हो या घोर संसारी तथा अपढ़ के मुख से, जो निर्णयवचन है, जो निष्पक्ष न्याय देने वाली वाणी है, वही सारशब्द

. सारशब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव को कामा॥ 1॥
सारशब्द कहिये टकसार। त्रिविधि शब्द को परख विचार॥ 2॥
सारशब्द पाये बिना, जीवहिं चैन न होय।
कालफन्द जाते लखि परै, सारशब्द कहिये सोय॥ (पंचग्रन्थी, गुरुबोध, सारशब्द निर्णय)

है। सारशब्द का सिद्धांत यह परवाह नहीं करता कि किसने कहा है तथा किसमें कहा है, वह तो केवल एक बात देखता है कि क्या कहा है ! किसी महापुरुष, परंपरा तथा ग्रंथ के गीत गाने मात्र से मनुष्य का कल्याण नहीं होगा। किन्तु सारशब्द एवं निर्णयवचनों से कल्याण होगा। लोग अपनी मानी गयी परंपरा, गुरु तथा पोथी के इतने पक्षपाती हो जाते हैं कि उन्हें निर्णयवचनों की परवाह ही नहीं होती। वे "अन्धे अन्धा पेलिया, दोऊ कूप पराय।" की कहावत चरितार्थ करते हैं। परन्तु निष्पक्ष व्यक्ति अपने-पराये की परवाह न कर केवल सही निर्णय पर ध्यान रखता है। दो और दो चार, इस सत्य निर्णय को ही सारशब्द कहते हैं।

सद्गुरु कहते हैं कि सारशब्द के सहारे से ही बचोगे। बचना क्या है? बचने के हम तीन अर्थ कर सकते हैं—अलग रहना, शेष रहना तथा दुखों से पृथक सुरक्षित रहना। अतएव सारे भव-बंधनों से अलग रहना, बचना है; मन सहित सारे जड़भावों को छोड़कर शेष चेतन मात्र रह जाना, बचना है तथा मन से अपने आप को अलग कर लेने से सारे दुखों से छूट जाना एवं सुरक्षित हो जाना, बचना है। विचारकर देखें तो बचने के सारे अर्थ केवल एक ही भाव को व्यक्त करते हैं—दुखों से मुक्त हो जाना। जब तक व्यक्ति अपनी आत्मा को, अपनी चेतना को सबसे अलग नहीं कर लेगा तब तक सारे दुखों से मुक्त नहीं हो सकता। परन्तु अपनी आत्मा को सबसे अलग करने के लिए जड़-चेतन-भिन्न निर्णय की सच्ची समझ चाहिए तथा धर्म और अध्यात्म के क्षेत्रों में फैले हुए नाना भ्रमों के निराकरण के लिए सारशब्द एवं निर्णयवचनों का अभ्यास चाहिए। असार वाणियों ने बड़ी भ्रांति फैला रखी हैं। उन्हें काटकर सत्यस्वरूप की स्थिति के लिए सारशब्द एवं निर्णयवचनों के अभ्यास की महती आवश्यकता है। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं कि सारशब्दों के विवेक से ही बचोगे। "मानहु इतबारा हो" इसमें भी विश्वास करने की आवश्यकता पड़ती है। संसार में लोग मिथ्या महिमा में पड़े हैं। वे उसी से अपना कल्याण समझते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि मिथ्या महिमा से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। यह विश्वास करो कि तुम्हारा कल्याण सत्य से होगा और सत्य का बोध तब प्राप्त होगा जब सारशब्द एवं निर्णयवचनों को आदर दोगे। तुम केवल परंपरा को प्रश्रय न दो, किन्तु सत्य निर्णय को प्रश्रय दो। इसी से सबका कल्याण है।

"आदि पुरुष एक वृक्ष है" यह कई बार निवेदित किया गया है कि किसी कालखंड के आरम्भ को आदि कहते हैं तथा मूल को भी आदि कहते हैं। जहां आदि का अर्थ मूल होता है वहां आदि का अर्थ अनादि हो जाता है क्योंकि मूल वस्तु अनादि होती है। सांख्यकार ने कहा है—"मूल में मूल का अभाव होने से

अमूल होता है मूल।" पेड़ की जड़ होती है, किन्तु जड़ की जड़ नहीं होती। इसी प्रकार संसार-प्रपंच के मूल में जड़ और चेतन एवं प्रकृति और पुरुष हैं। परन्तु जड़-चेतन एवं प्रकृति-पुरुष के कोई अन्य मूल नहीं हैं। यहां सद्गुरु कहते हैं—"आदि पुरुष एक वृक्ष है" अभिप्राय हुआ कि अनादि चेतन पुरुष ही मानो वृक्ष है। यहां वृक्ष का अभिप्राय भी मूल ही है। अर्थात हर व्यक्ति के संसार-वृक्ष का मूल उसकी अपनी आत्मा ही है। मेरा अपना माना हुआ संसार मेरी चेतना की सत्ता से ही चलता है। यह चेतन जब बाहर प्रवृत्त होता है तभी तो संसार-वृक्ष हरा-भरा होता है। सारी प्रवृत्ति मन द्वारा होती है। इसलिए सद्गुरु ने 'निरंजन' को 'डार' बताया है। यहां 'निरंजन' का अर्थ मन है।

'तिरदेवा शाखा भये, पत्र संसारा हो।" मनरूपी डाली की तीन अन्य शाखाएं हैं—रज, सत और तम। ये त्रिगुण ही मानो त्रिदेव हैं जो मन की छोटी-छोटी शाखाएं हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, राग-द्वेषादि मानो संसार हैं जो उसके पत्ते हैं। मन के इन तीनों गुणों की प्रवृत्तियों से संसार-प्रपंच का विस्तार होता है। यहां संसार का अर्थ चांद, सूरज तथा सितारों से भरा यह अनंत विश्व-ब्रह्मांड न समझकर व्यक्ति के अपने कामादि भव-बंधनों का संसार समझना चाहिए। हमारा व्यक्तिगत संसार ही हमें पीड़ित करता है। अतः हमें अपने माने हुए व्यक्तिगत संसार से ही मोक्ष लेना है। इस प्रकार मन, तीन गुण तथा काम, क्रोधादि मिलकर हमारा संसार-वृक्ष है। इसके मूल में अनादि चेतन पुरुष है जो अपने आप की भूल से इसमें लिपटा है। चेतन पुरुष अपनी सत्ता मन को न दे और अपने आप में स्थित हो जाये तो भव-वृक्ष स्वयं कट जाये।

"ब्रह्मा वेद सही कियो, शिव योग पसारा हो। विष्णु माया उत्पत्ति कियो, ई उरले व्यौहारा हो।" संसार के उद्धार के लिए ब्रह्मा, महादेव तथा विष्णु ने क्रमशः कर्मकांड, योगकांड तथा उपासनाकांड का प्रवर्तन किया। ब्रह्मा ने वेदों का संपादन किया। ब्रह्मा तो एक प्रतीक है। वस्तुतः यज्ञ का बड़ा पुरोहित ब्रह्मा कहलाता है। वेदों में कर्मकांड एवं यज्ञ-हवन आदि का विस्तार है जिनके करने के फल में पुत्र, स्त्री, धन, स्वर्गादि पाने का प्रलोभन दिया गया है। इसमें समाज को लाभ तो कोई खास नहीं मिला, हां, यज्ञ के नाम पर पुराकाल में अधिक धन खर्च होता रहा, पशुओं की हत्या होती रही और पंडितों का पेट-धन्धा चलता रहा। इस धन्धा को चलाने के लिए वे यज्ञ के काल्पनिक लम्बे-चौड़े फलों का व्याख्यान करते रहे।

. मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ 1/68 ॥

नीरस कर्मकांड के प्रपंच से जब जनता ऊब गयी तब शिव-जैसे योगियों का प्रादुर्भाव हुआ जो ज्ञानपूर्वक मनोनिग्रह में तल्लीन हुए। शिव तो एक प्रतीक-जैसा लगता है जिसकी व्याख्या उपनिषद् के ऋषियों तथा कपिल, कणाद, बुद्ध, महावीर-जैसे महाज्ञानियों एवं योगियों में ही हो सकती है। इस प्रकार ज्ञानपूर्वक योगमार्ग चला।

परन्तु सभी मनुष्य इसके अधिकारी नहीं थे। इसलिए विष्णु ने माया उत्पन्न किया। विष्णु भी एक प्रतीक ही है। इसका अर्थ है कि भक्ति-भावना के हृदय वालों ने भक्ति का पथ चलाया। यहां माया का अर्थ भक्ति एवं उपासना है। "विष्णु माया उत्पत्ति कियो" अर्थात भक्ति-हृदय वालों ने उपासना-भक्ति का मार्ग चलाया। साहेब कहते हैं "ई उरले व्यौहारा हो" अर्थात यह व्यवहार, यह भक्ति का प्रचलन 'उरला' का है। 'उरला' कहते हैं पीछे को। उरला का दूसरा अर्थ निराला एवं विलक्षण भी होता है, परन्तु यहां उरला का अर्थ पीछे करना अधिक उपयुक्त है। ऐतिहासिक अध्ययन करने पर भी यही बात सही पायी जाती है कि भारतीय परम्परा में पहले कर्मकांड ही था। जिसका प्रतीकात्मक प्रवर्तक ब्रह्मा माना जा सकता है। ब्रह्मा नाम का व्यक्ति हुआ हो या नहीं, किन्तु यज्ञ के चार प्रमुख पुरोहितों—ब्रह्मा, होता, उद्गाता एवं अध्वर्यु[.] में ब्रह्मा प्रथम है। कर्मकांड के बाद ज्ञान एवं योगकांड का प्रचलन हुआ, और उसके बाद भक्ति एवं उपासनाकांड प्रचार में आया।

हम पीछे 81वें शब्द की व्याख्या में देख आये हैं कि भक्ति की भावना तो किसी-न-किसी प्रकार मनुष्य के जीवन के साथ है, परन्तु शायद भक्ति शब्द का प्रयोग श्वेताश्वतर उपनिषद् (6/23) में पहली बार आया "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ" अर्थात जैसे देव में परम भक्ति होती है वैसे गुरु में होती है। प्रवृत्तिमूलक रागात्मक सगुण भक्ति संभवतः प्रथम यादवों में शुरू हुई। अंशु के पुत्र राजा सत्वत थे। उन्होंने नारायण एवं विष्णु की भक्ति चलायी। इसी परंपरा में पीछे श्रीकृष्ण हुए जो कालांतर में स्वयं विष्णु का पूज्य स्थान ग्रहण कर लिये। इस प्रकार कर्मकांड, ज्ञानकांड तथा योगकांड के बाद भक्तिकांड का प्रचार हुआ। इसलिए भक्ति का व्यवहार 'उरला' है, पीछे का है,

---

. यज्ञ में चार मुख्य पुरोहित होते हैं, ब्रह्मा, होता, उद्गाता एवं अध्वर्यु। ब्रह्मा समस्त यज्ञ के विधि-विधान का निरीक्षक होता है, होता हवन करने वाला, उद्गाता सामगान करने वाला तथा अध्वर्यु वह होता है जो लकड़ी ठीक करे, यज्ञपात्र साफ करे, यज्ञ-पशु का वधकर उसका मेदस् निकाले आदि। इन चारों पुरोहितों के तीन-तीन अन्य सहायक होते हैं। उनके नाम हैं—प्रशास्ता, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता, अच्छावाक, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रतिहर्ता, ग्रावस्तुत, नेता, होता और सुब्रह्मण्य।

यह तथ्य है। साहेब ने यहां "विष्णु माया उत्पत्ति कियो" कहकर भक्ति को माया शब्द से क्यों याद किया है? वस्तुतः सगुण भक्ति माया वर्ग की है ही। यह ठीक है कि भक्ति मन की कोमलता है जिसकी आवश्यकता है; परन्तु भक्ति का जो आलम्बन भक्त लोग लेते हैं वह 'कर कंज पद कंजारुणम्' सब माया ही है। कीट से लेकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सबकी देह जड़ प्रकृति से ही निर्मित हैं, और यदि भक्ति तथा उपासना का आलंबन किसी की देह तक ही है तो यह भक्ति माया से बाहर कहां है? जब भक्ति का आलंबन निज चेतनस्वरूप बनता है तब भक्ति माया से परे पहुंच जाती है। परन्तु विष्णु से जुड़ी भक्ति रागात्मक एवं सगुण है। इसलिए वह माया का शुद्ध रूप ही है।

"तीन लोक दशहूँ दिशा, यम रोकिन द्वारा हो।" तीन लोक तथा दसों दिशाओं का लाक्षणिक अर्थ है पूरा संसार। पूरे संसार में यम ने कल्याण का द्वार रोक दिया है। ध्यान रहे, यम कोई स्वतन्त्र दैत्य नहीं है कि उसने सारे संसार में सबका मोक्ष-द्वार बन्द कर दिया हो। वस्तुतः हर मनुष्य के मन में विषयों की वासनाएं हैं। ये वासनाएं ही यम हैं जिन्होंने मनुष्य के कल्याणमार्ग को रोक रखा है। हमारी बनायी हमारे मन की वासनाएं ही हमें मोक्ष से, शांति से एवं स्वरूपस्थिति से वंचित किये रहती हैं। हमारे कल्याण में न अन्य प्राणी बाधक हैं और न अन्य पदार्थ, केवल हमारे मन की वासनाएं ही बाधक हैं।

"कीर भये सब जीयरा, लिये विष का चारा हो।" कीर का अर्थ तोता है। तोता नलिका-यंत्र (चरखी) में इसलिए फंस जाता है, क्योंकि वह उसमें लगी लाल-मिर्ची को खाने के प्रलोभन से उस पर बैठता है और उसके बैठते ही चरखी घूम जाती है तथा तोता फंस जाता है। यही दशा सब जीवों की है। सब जीव विषय-भोगों के चारे में फंसते हैं। सद्गुरु ने यहां कितना वैराग्योत्तेजक पंक्ति कही है "कीर भये सब जीयरा, लिये विष का चारा हो।" कीर का अर्थ सर्प भी होता है जो अपने मुख में स्वाभाविक विष की पोटली लिये रहता है। यह अर्थ भी उपयुक्त ही है। इस अर्थ में 'विष' का मूल अर्थ विष ही रहता है तथा लक्षणा अर्थ विषय होता है। जैसे सर्प अपने मुख में स्वाभाविक विष की पोटली रखता है, वैसे संसारी जीव मानो स्वाभाविक ही मन में विषय-वासनाएं रखते हैं। ध्यान रहे, जीव का मौलिक स्वरूप विषय-वासनाओं से सर्वथा रहित है, परन्तु अज्ञानवश सदैव विषयों में डूबे रहने से वासनाएं प्रबल हो गयीं हैं। इन्हीं विषय-वासनाओं के कारण जीव भटक रहा है।

"ज्योति स्वरूपी हाकिमा, जिन्ह अमल पसारा हो। कर्म की बन्शी लाय के, पकरो जग सारा हो।" ज्योतिस्वरूपी हाकिम मन है। यह जाज्वल्यमान एवं तेज-तर्रार है, इसलिए सद्गुरु ने व्यंग्य करते हुए कहा है कि इस ज्योतिस्वरूपी

हाकिम मन ने जीवों पर अपना शासन जमा रखा है। इस मन ने कर्म की बंसी लगाकर जगत के सारे जीवों को पकड़ लिया है। बंसी के आंकुड़े में चारा लगाकर पानी में डाल दिया जाता है। मछली चारा खाने के लोभ में उसे मुख में लेती है और मछुआरा बंसी खींच लेता है तथा लोह के आंकुड़े में मछली का मुख फंस जाता है। इस प्रकार मछली मारी जाती है। यह मन मानो मछुआरा है। यह कर्म की बंसी में भोगों का चारा लगाता है और जीव उसमें फंस जाता है। संसार के सारे जीव भोग के मोह से कर्मजाल में फंसे पड़े बंधनों का दुख भोग रहे हैं।

"अमल मिटावो तासु का, पठवों भव पारा हो।" सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे साधको ! ज्योतिस्वरूपी हाकिम-मन का शासन मिटा दो। मैं तुम्हें भव से पार भेज रहा हूं। इस मन से पार हो जाना ही भव से पार हो जाना है। सब जीव मन के शासन में हैं। जो जीव मन पर शासन करता है वही भव से पार है। काम भव है, क्रोध भव है, लोभ भव है। इसी प्रकार समझ लो कि मोह, ईर्ष्या, भय, राग, द्वेष, आशा, तृष्णा, चिंता, विकलता, उद्वेग, परेशानी आदि भव हैं। मन के शासन में ही यह सब भव विद्यमान रहता है। जहां मन का शासन जीव पर से हटा, जहां जीव स्वतन्त्र हुआ कि यह भव समाप्त हो जाता है। इसलिए सद्गुरु कहते हैं कि हे जीव ! अपने ऊपर से मन का शासन मिटा दो। भारत को स्वतन्त्र करने में भारतवासियों को अपनी कितनी कुर्बानी देनी पड़ी है ! तुम्हें भी मन के शासन से मुक्त होने के लिए त्याग करना पड़ेगा। विषयों के त्याग से तुम्हारे ऊपर से मन का शासन हटेगा। जब मन का शासन हट जायेगा तब तुम भव से पार हो जाओगे।

"कहहिं कबीर तोहि निर्भय करों, परखो टकसारा हो।" कबीर साहेब कहते हैं कि हे मनुष्य ! हे साधक ! मैं तुम्हें निर्भय कर रहा हूं, तुम निर्दोष वस्तुओं को परखो। टकसाल कहते हैं जहां सिक्के ढलते हैं। इसका अर्थ हुआ प्रामाणिक वस्तु। टकसाल का दूसरा अर्थ निर्दोष वस्तु भी है। दोनों अर्थों में निकटता है। प्रामाणिक वस्तु एवं निर्दोष वस्तु का अभिप्राय एक ही है। जो वस्तु प्रामाणिक होगी वही निर्दोष होगी और जो निर्दोष होगी वही प्रामाणिक होगी। यहां निर्दोष वस्तु को परखने का अर्थ है सभी दिशाओं में सच्चा ज्ञान ग्रहण करना। कोई ज्ञान तभी निर्दोष माना जाता है जब उसमें अतिव्याप्ति, अव्याप्ति तथा असंभव—ये तीन दोष न हों। जैसे कोई कहता है कि गाय वह है जिसको सींग है, तो यह अतिव्याप्ति दोष है अर्थात यह लक्षण दूसरे पशुओं में भी व्याप्त है। क्योंकि सींग गाय के अतिरिक्त अन्य जानवरों को भी होती है जैसे भैंस, हिरन, बकरी आदि। कोई कहता है कि गाय वह है जिसका रंग लाल है, तो वह

अव्याप्ति दोष है अर्थात यह लक्षण सभी गायों में व्याप्त नहीं है; क्योंकि गायें लाल के अलावा काली, उजली, बगरी आदि भी होती हैं। कोई कहता है कि गाय वह है जिसके खुर फटे न हों, तो यह असंभव दोष है; क्योंकि सभी गायों के खुर फटे होते हैं। इस प्रकार अतिव्याप्ति, अव्याप्ति एवं असंभव—इन तीनों दोषों से सर्वथा मुक्त ज्ञान निर्दोष ज्ञान है। इस शब्द के आरम्भ में ही सद्गुरु ने कहा है "सारशब्द से बाँचिहो" सारशब्द एवं निर्णयवचन से ही निर्दोष ज्ञान होगा। निर्णय शब्दों को छोड़कर धर्म के नाम पर बिना सिर-पैर की हजारों बातें चलती रहती हैं। निर्दोष ज्ञान सहज समझ में आता है।

अन्ततः अपनी आत्मा ही स्वरूपतः निर्दोष है। साहेब कहते हैं बाहरी निर्दोष ज्ञान से तुम्हारी निर्भयता बढ़ेगी, परन्तु पूर्ण निर्भयता तब होगी जब अपने निर्मल निर्दोष चेतन स्वरूप की परख होगी। चेतन से अलग परख-शक्ति नहीं होती। चेतन अपनी ही परख-शक्ति से बाहरी वस्तुओं एवं ज्ञान को परखता है। जीव अपने परख-बल से निजस्वरूप को तथा पर को जितना परखता जाता है उतना निर्भय होता जाता है। जब वह सारशब्द तथा परख-बल से बाहरी ज्ञान को परखता है, तब उसके मन की सारी भ्रांतियां कट जाती हैं और उनका बाह्यज्ञान सच्चा हो जाता है। उसकी दृष्टि में कोई चमत्कार तथा अद्भुत बात रह ही नहीं जाती। वह प्रकृति के शाश्वत नियमों को समझ लेता है और सारे तथाकथित चमत्कार एवं अद्भुत कही जाने वाली बातों के चक्कर तथा अंधविश्वास से मुक्त हो जाता है। वह अपने आप को परख लेने पर पूर्ण निर्भय हो जाता है। जिसे अपने चेतनस्वरूप की परख हो गयी, उसे कहां भय, कहां चिंता और कहां शोक ! अतएव सद्गुरु का यह परम वाक्य अत्यन्त आदरणीय है—"कहहिं कबीर तोहि निर्भय करों, परखो टकसारा हो।"

सभी की भूल-व्याधि की औषध परख है

शब्द-115

सन्तो ऐसी भूल जग माहीं, जाते जीव मिथ्या में जाहीं 1
पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित, झाँई आपुहि मानी 2
झाँई में भूलत इच्छा कीन्हीं, इच्छा ते अभिमानी 3
अभिमानी कर्ता होय बैठे, नाना ग्रन्थ चलाया 4
वोही भूल में सब जग भूला, भूल का मर्म न पाया 5
लख चौरासी भूल ते कहिये, भूलते जग बिटमाया 6
जो है सनातन सोई भूला, अब सो भूलहि खाया 7
भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देहिं लखाई 8
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई 9

शब्दार्थ—भूल=विस्मय, भ्रम, चूक, दोष। मिथ्या=असत्य। पहिले=पहले, शुरू में, पुराकाल में। झाँई-झांईं, परिछाईं, धोखा, माया। कर्ता=जगत का रचयिता, जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण। बिटमाया=भ्रम एवं छल किया, निर्माण किया। सनातन=नित्य, अनादि चेतन जीव। खाया=दुर्बल किया, खोखला किया। पारखी=जड़-चेतन एवं गुण-दोषों का विवेकी। पारख=परख, परीक्षा, जड़-चेतन एवं गुण-दोषों के ज्ञान की शक्ति, ज्ञान।

भावार्थ—हे सन्तो ! संसार में ऐसी भूल है जिससे जीव असत्य एवं भ्रांति की धारा में बह जाता है 1 आध्यात्मिक क्षेत्र में पहली एवं बढ़-चढ़ कर भूल उनकी है जिन्होंने यह माना कि मैं अखण्ड ब्रह्म हूं और यह सारा जगत मेरी परिछाईं है। अर्थात मैं ही जगतरूप में भासता हूं 2 इस प्रकार अपनी मानी हुई परिछाईं-माया में भूलकर यह माना कि मैं ही इच्छा करके एक से अनेक हो गया हूं और संसार बन गया हूं। फिर इस अनेकता की इच्छा को लेकर वह जगत के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण का अहंकारी बन गया 3

इस प्रकार विश्वाभिमानी अपने आप को जगत का कर्ता मान बैठा और इन भ्रामक मान्यताओं से नाना ग्रन्थों की रचना की गयी 4 फिर ऐसे ग्रन्थों को पढ़-सुनकर सारा संसार भूल गया। इस भूल का रहस्य कोई नहीं समझ सका 5 जीव निजस्वरूप की भूल से ही चौरासी लाख योनियों में भटकते हैं, क्योंकि भूल से जगत के लोग छले गये हैं, अथवा भूल से ही जीव ने अपने मनोमय जगत का निर्माण किया है 6 जो अनादि सनातन चेतन जीव है वह स्वयं अपने को भूला है। वही भूल उसे अब खोखला बना रही है 7 यह भूल तभी मिटेगी जब पारखी संत मिलेंगे और वे कृपाकर पारख लखा देंगे 8 कबीर साहेब कहते हैं कि हे भाई ! सबके स्वरूप-भूलरूपी रोग को दूर करने के लिए पारख ही औषध है 9

व्याख्या—बीजक में यह दूसरा 'शब्द' प्रकरण ग्यारहों प्रकरणों में बड़ा है। इसमें 115 शब्द हैं, जिनमें एक-से-एक महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त हुए हैं। इस बृहत् प्रकरण के अन्त में सद्गुरु ने अपने सारे विचारों को नौ पंक्तियों में कह डाला है। इस पूरे शब्द में मुख्य दो बातें हैं—भूल तथा भूल की औषध। सद्गुरु पहली पंक्ति में कहते हैं—"सन्तो ऐसी भूल जग माहीं, जाते जीव मिथ्या में जाहीं।" हे सन्तो ! संसार में ऐसी भूल है जिससे जीव असत्य-पथ में भटक गया है। हर मनुष्य की जिंदगी में सारे दुखों का कारण मात्र एक है—भूल। जो वस्तु जैसी है उसको वैसी न समझकर उसके विपरीत समझना भूल है। सारे दुखों का कारण ठीक से न समझना है। यदि हम तथ्य को समझ जायें तो सारे दुख मिट जायें। यह प्रश्न किया जा सकता है कि कितने लोग ऐसे हैं जो तथ्य को तो ठीक से समझते हैं, परन्तु दुखी हैं। परन्तु यह ध्यान देने की

बात है कि उनका तथ्य का समझना नहीं माना जा सकता। केवल बौद्धिक ढंग से समझ लेना पर्याप्त नहीं है। जो हृदय से तथ्य को समझ लेता है वह कहीं भी विचलित नहीं होता। जो विचलित होता है वह तथ्य को कहां समझता है! अतएव सारे दुखों का कारण भूल है, अज्ञान है।

"पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित, झाँई आपुहि मानी।" अध्यात्म क्षेत्र की यह पहली एवं भारी भूल है कि मैं अखण्ड ब्रह्म हूं और जगत मेरा प्रतिबिम्ब एवं आभास है, यह जगत और मैं जल-तरंग, स्वर्ण-भूषण, घट-मृतिका-न्याय एक हूं। जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण मैं ही हूं, मैं ही कभी 'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेयेति' अर्थात मैं एक बहुत प्रजा के रूप में हो जाऊं, ऐसी इच्छा कर जगत बन गया हूं इत्यादि यह सब धारणा ब्रह्मज्ञान का घोर दुरुपयोग है। मैं अखंड ब्रह्म हूं, इसका अभिप्राय इतना ही है कि मैं अविनाशी चेतन हूं। अखंड उसे कहते हैं जो कभी टूटता न हो और वही अविनाशी है। ब्रह्म का अर्थ होता है बड़ा! यह चेतन ही तो बड़ा है। जड़-तत्त्व एवं जड़-कार्य पदार्थ चाहे कितने बड़े हों परन्तु महत्त्व में चेतन ही बड़ा होता है। अतएव अखंड ब्रह्म का सरल अर्थ है अविनाशी चेतन। ब्रह्मवादी कहे जाने वाले महापुरुषों ने उसके लिए भ्रमवश अनेक अतिशयोक्तिपूर्ण विशेषण लगाये तथा अपने शुद्ध स्वरूप को ठीक से न समझने के कारण उन्होंने उसके विषय में अन्यथा चर्चा की।

ब्रह्म को अद्वैत होना चाहिए, तो इसके लिए लोगों ने सोचा कि यह जगत है ही नहीं; क्योंकि यदि जगत की सत्ता स्वीकारी जायेगी तो ब्रह्म अद्वैत नहीं रह जायेगा, किन्तु एक ब्रह्म तथा दूसरा जगत हो जायेगा; परंतु जगत, जो सत्य और सामने है उसको अद्वैतवाद की फूंक से उड़ाया भी नहीं जा सकता। इसलिए कहा गया कि जगत तो ब्रह्म की परिछाईं है। मैं ब्रह्म हूं और यह जगत मेरी परिछाईं है। जैसे प्रतिबिम्ब बिंब से अलग नहीं होता, उसके अलग अस्तित्व का केवल आभास होता है वैसे जगत ब्रह्म से अलग नहीं है, केवल आभास होता है कि जगत अलग है। ब्रह्म-जगत की एकता का सिद्धांत गढ़ा गया और इसके लिए कई प्रमाण खड़े किये गये। कहा गया कि जैसे जल और उसकी तरंगें एक हैं, जैसे स्वर्ण और उससे बने आभूषण एक हैं तथा जैसे मिट्टी और उससे बने बरतन एक हैं, वैसे ब्रह्म और ब्रह्म से बना जगत एक है। यह भी ध्यान नहीं रखा गया कि जब ब्रह्म को एक तरफ अखंड एवं निर्विकार कहते हैं तब उससे किसी प्रकार का निर्माण कैसे संभव है! अखंड निर्विकार ब्रह्म से परिवर्तनशील विकारी जगत कैसे बन जायेगा! सत-चिद्-आनन्द ब्रह्म से असत-अचिद्-अ-आनंद जगत कैसे निर्मित होगा। यह भी कहा गया कि जगत ब्रह्म का स्वप्न है, परन्तु स्वप्न द्वैत के बिना कभी नहीं हो सकता। जाग्रत जगत को देख, सुन, भोग कर सोते समय अर्धसुषुप्ति में स्वप्न होता है। एक अद्वैत में स्वप्न नहीं हो

सकता। इन सारी बातों पर आप "जो पै बीज रूप भगवान" शब्द 67 की व्याख्या में विस्तारपूर्वक पढ़ आये हैं।

"झाँई में भूलत इच्छा कीन्हीं, इच्छा ते अभिमानी।" ब्रह्मवादी लोगों ने अपने मन की भ्रांतिरूपी झांईं में भूलकर जगत बनने की इच्छा कर डाली और यह अभिमान कर लिया कि जैसे तरंगों का अधिष्ठान समुद्र है वैसे अनंत विश्व-ब्रह्मांड का अधिष्ठान मैं हूं। इसी मिथ्या अभिमान का फल हुआ कि वे जगत के कारण-कर्ता बनकर बैठ गये। एक तरफ कहते हैं कि जगत है ही नहीं, और दूसरी तरफ कहते हैं कि जगत का कारण एवं कर्ता मैं ही हूं। व्यक्ति की अपनी आत्मा की सर्वोच्चता महान है, परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि यह आत्मा ही चांद-सूरज तथा विश्व-ब्रह्मांड है। ब्रह्मवादियों ने भ्रम में पड़कर ब्रह्मज्ञान को तमाशा बना डाला है। कितने ब्रह्मज्ञानी कहलाने वाले लोग भूल के वश होकर एक मानसिक सनक में उतर आये और कहने लगे कि मैं ही चांद हूं, मैं ही सूर्य हूं, मैं ही अनन्त विश्व-ब्रह्मांड हूं। "अभिमानी कर्ता होय बैठे" यह वाक्य उन्हीं पर व्यंग्य है। ब्रह्मज्ञान होने पर जहां सारा अभिमान छोड़ना चाहिए था, वहां वे सारे अभिमान को अपने ऊपर धारण कर लिये। जब जीव अज्ञान में रहता है तब वह मानता है कि मैं देह हूं; परंतु तथाकथित ब्रह्मज्ञान के अनुसार जब जीव ब्रह्मज्ञानी हो जाता है तब मानता है कि मैं अनन्त विश्व-ब्रह्मांड हूं। ऐसे लोगों के लिए सद्गुरु का यह वचन कितना मार्मिक है—"अभिमानी कर्ता होय बैठे" इसमें 'बैठे' शब्द अधिक चुभने वाला है। "पानी कुल्ला भर नहीं, नाम गंगाधर" यह कहावत ऐसे लोगों के प्रति ही सटीक है। निर्माण एक नये बाल का नहीं कर सकते और मान लिये कि मैं समस्त विश्व का कारण एवं कर्ता हूं।

इस भ्रांति को लेकर "नाना ग्रन्थ चलाया" बहुत पुस्तकें बनीं और उन्हें पढ़-पढ़कर लोगों का दिमाग खराब होने लगा। जो अपने पीठ पीछे की बात नहीं जानते वे सारे विश्व के नियंता, सर्वव्यापक और जगत के कारण-कर्ता होने का दंभ करते हुए घूमने लगे। विद्वान कहे जाने वाले लोगों द्वारा कहा जाने लगा कि यह ब्रह्मज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान है। कहना न होगा कि ब्रह्मज्ञान के नाम पर महान भ्रांति खड़ी हो गयी। इसीलिए विवेकवान संतों को ब्रह्म को भ्रम कहना पड़ा। ब्रह्म शब्द अपने आप में बड़ा उच्च, शुद्ध एवं प्यारा है, परंतु ब्रह्मवादियों द्वारा उसकी परिभाषा ऐसी गड्डमड्ड कर दी गयी कि विवेकवानों को उसे भ्रम कहना पड़ा।

साहेब कहते हैं—"वोही भूल में सब जग भूला, भूल का मर्म न पाया।" इस अद्वैतवाद कहे जाने वाले ज्ञान में सारा जगत भूल गया। "सब जग भूला" का लाक्षणिक अर्थ है अध्यात्म के क्षेत्र में अधिक लोगों के मन में यह भ्रांति

खड़ी हो गयी कि सब कुछ एक ही ब्रह्म है—यही सच्चा ज्ञान है। लोग यह नहीं समझ सके कि यह भूल के और गहरे गर्त में चले जाना है।

"लख चौरासी भूल ते कहिये, भूलते जग बिटमाया।" जीव अपने स्वरूप को भूलकर ही चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है। यहां चौरासी लाख भारतीय मान्यतानुसार कहा गया है। हो सकता है सभी खानियां चौरासी लाख हों, उनसे अधिक हों या उनसे कम हों। तात्पर्य इतना ही है कि जीव संसार-सागर में इसलिए भटकता है कि वह अपने असंग एवं निर्विकार स्वरूप को नहीं समझता। यह जीव अपने पूर्णकाम स्वरूप को न समझकर ही जगत में छला जा रहा है। 'बिटमाया' का अर्थ छला जाना भी किया जा सकता है तथा निर्माण करना भी। अर्थात जीव अपनी स्वरूप-भूल से छला गया अथवा स्वरूप-भूल से उसने जगत बनाया। यहां जगत बनाने का तात्पर्य होगा, अपना मनोमय जगत, माना हुआ जगत।

"जो है सनातन सोई भूला, अब सो भूलहि खाया।" जो सनातन जीव है वही भूला है। पीछे उसकी अपनी स्वरूप-भूल ही उसे खोखला कर रही है। जीव जैसा नहीं है वैसा अपने आप को मान रहा है और जैसा है वैसा समझ नहीं रहा है। यही दुखों का कारण है।

बाहर का संसार जो जैसा है उसे वैसा समझने के लिए तथा अपनी आत्मा, अपनी चेतना जैसी है उसे उसी ढंग से समझने के लिए अर्थात जीव के स्वरूप की वास्तविकता समझने के लिए आवश्यक है 'पारख'। सद्गुरु कहते हैं—"भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देहिं लखाई। कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई।" सद्गुरु कबीर कहते हैं कि भूल अवश्य मिटेगी, परंतु जब पारखी गुरु मिलेंगे और पारख लखा देंगे। अर्थात वे वस्तुपरक तथा आत्मपरक बुद्धि देकर विवेक की आंखें खोल देंगे। संसार को समझने के लिए संसार का अध्ययन करना चाहिए तथा अपनी आत्मा को समझने के लिए अपनी आत्मा का ही अध्ययन करना चाहिए। सबकी भूल-व्याधि मिटाने के लिए पारख ही औषध है। पारख एवं परीक्षा जिसे वस्तु-विवेक भी कह सकते हैं। इसके लिए शास्त्र, गुरु, परंपरादि समस्त पक्षपातों का त्याग करना पड़ता है। पक्षपात एवं पूर्वग्रह-विहीन दृष्टि ही पारख ग्रहण कर सकती है।

कबीर साहेब ब्रह्मवाद को जहां कहीं लेते हैं उसकी गहरी आलोचना करते हैं। इसका कारण है उसके प्रति आत्मीय भावना। कबीर साहेब स्वसत्ता को ही सर्वश्रेष्ठ कहते हैं जिसको वे जीव, चेतन, पारख तथा राम शब्दों से ज्यादा याद करते हैं। ब्रह्मवादी भी स्व-सत्ता को ही सर्वोच्च कहते हैं जिसको वे आत्मा एवं ब्रह्म कहते हैं। शब्द तो दोनों के आदरणीय हैं। आत्मा का अर्थ ही है स्वयं तथा

ब्रह्म का अर्थ है श्रेष्ठ, जो जीव एवं चेतन है। उसी को पारख तथा राम कहा जाता है। शब्दों की कोई बात नहीं है, बात है परिभाषा की। ब्रह्मवादी कहे जाने वाले महानुभाव ब्रह्म की परिभाषा अतिशयोक्तिपूर्ण तथा भ्रामक करने लगते हैं, इसलिए कबीर साहेब उनकी उस गलत परिभाषा का खंडन करते हैं।

कहा जाता है कि चेतन व्यापक है; परन्तु यह केवल महिमापरक शब्द है। संसार में गुण-धर्मयुक्त कोई अखंड द्रव्य ऐसा नहीं है जो व्यापक है। एक अखंड द्रव्य सर्वत्र व्यापक हो तो गति, स्फूर्ण एवं संसार रहेगा ही नहीं। इसलिए कोई भी जड़ या चेतन द्रव्य व्यापक नहीं है। अतः व्यापक केवल महिमापरक शब्द है।

चेतन एक है। यह कथन गुणपरक है न कि संख्यापरक। यदि चेतन संख्या में एक ही हो तो भिन्न मत होना तथा संसार का होना ही संभव नहीं है। प्रत्यक्ष है कि चेतन असंख्य हैं। वस्तुतः चेतन व्यक्तित्व में असंख्य हैं तथा गुण में एक। अर्थात सभी चेतन जीव एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं, परन्तु सबका गुण एक ज्ञान है। अतएव गुण में चेतन एक है, संख्या में अनेक हैं। इसलिए चेतन एक नहीं है, अपितु सबका गुण ज्ञान एक है।

चेतन अद्वैत है यह कथन समाधिपरक एवं स्वरूपस्थितिपरक है। परन्तु ज्ञानियों ने इस अद्वैत शब्द का बहुत दुरुपयोग किया है। उन्होंने सारा जड़-चेतन एक में मिलाकर सब कुछ एक सिद्ध करने का मिथ्या प्रयास किया है। यहां तक कहा कि आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और सृष्टि। अब पुनः अद्वैत आत्मा बनने के लिए पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में तथा आकाश को आत्मा में मिला दें, बस एक आत्मा हो जायेगा। आप जानते हैं कि केवल मिट्टी को पानी में मिलाकर देखें तो कालांतर में पानी के भाप बनकर उड़ जाने पर मिट्टी शेष रह जायेगी। सारे जड़-प्रपंच को शुद्ध चेतन आत्मा में से निकलना तथा पुनः उसी में समाना मानना कितना भ्रम है, यह सहज समझा जा सकता है। वस्तुतः जड़ तत्त्व अनेक हैं। एक-एक जड़ तत्त्व में असंख्य परमाणु हैं। इस प्रकार कारण-कार्य जड़ तत्त्व विकारी एवं परिवर्तनशील हैं। आत्माएं उससे सर्वथा भिन्न तथा शुद्ध चेतन हैं। वे निर्विकार एवं पूर्ण हैं। अतएव वासनाओं को छोड़कर निजस्वरूप में स्थित हो जाने पर अकेलापन हो जाता है, यही अद्वैत है। जब तक संकल्प हैं तब तक द्वैत है और जब सारे संकल्प समाप्त हुए तब चेतन स्वयं अकेला रह गया और अद्वैत हो गया। अद्वैत का अर्थ सब कुछ एक में मिलाकर एक हो जाना नहीं है, किन्तु स्व से भिन्न जो कुछ है उन सबको छोड़कर अकेला रह जाना अद्वैत है।

सद्गुरु कबीर हमें राय देते हैं कि सारी भूलों की औषध पारख है। पारख का अर्थ है परीक्षा। पारखी संत निष्पक्ष होते हैं। वे इसलिए किसी बात को मानते या नहीं मानते नहीं कि वह अपने मत की है या पराये की। वे सत्यान्वेषी होते हैं। वे अध्यात्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक होते हैं। पारखी संत कहते हैं कि जीव ही ज्ञान-विज्ञान का मूल है। इसी को चैतन्य होने से चेतन कहते हैं, स्वरूप होने से आत्मा, सर्वोच्च होने से इसी को ब्रह्म कह सकते हैं, हृदय में रमने से राम, स्वरूपतः अकेला होने से तथा वासनाओं को छोड़ देने के बाद असंग हो जाने पर अद्वैत कह सकते हैं, सभी कल्पनाओं का स्वामी होने तथा शुद्ध होने से परमात्मा कह सकते हैं। अर्थात चेतनपरक सारे विशेषण जीव के ही हैं। मूल में जीव ही है। जीव का ही गुण पारख अर्थात ज्ञान है।

सद्गुरु कहते हैं कि पारखी वह है जो सारे संसार को परखकर छोड़ दे और अपने पारखस्वरूप में, चेतनस्वरूप में स्थित हो जाये। जो परखने में आये वह दृश्य विजाति तथा जो परखता है वह पारखी ज्ञान मात्र है। इसीलिए सद्गुरु श्री पूरण साहेब ने कहा कि तू जिस ज्ञान तत्त्व से सबको परखता है वही पारख है और वही तुम्हारा स्वरूप है। उसी में स्थित हो जा, झांईंरूपी भ्रमकूप में नहीं जाना।

जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप।
तहाँ होय रहु स्थीर तू, नहिं झाँईं भ्रम कूप

(बीजक त्रिज्या अंतस्तुति)